स्नेह के बन्धन

(मौलिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास)

हंसदूत, कवि सेनापति (काव्यसमीक्षा), टेहरी जनक्रान्ति
की झाँकी, अलका की विरहिणी आदि पुस्तकों के

रचयिता

साहित्याचार्य जितेन्द्रचन्द्र भारतीय

शास्त्री, एम० ए०, सा० रत्न
साहित्य सुधाकर, काव्यमनीषी

प्राप्ति स्थान

नवयुग ग्रन्थागार

सी० ७४७ महानगर, लखनऊ

प्रकाशिका—

नन्देश्वरीदेवी तिवारी

हिन्दी-साहित्य-भवन

महानगर, लखनऊ

प्रथम बार—

अक्टूबर १९५८ (विजयदशमी)

मूल्य ३ रुपया ५० नये पैसे

मुद्रक—

भार्गव प्रेस, अमीनाबाद पार्क,

लखनऊ

प्रकाशकीय

प्रस्तुत रचना में लेखक ने एक इस प्रकार की घटना का वर्णन किया है, जो जीवन के उन रूपों पर आधृत है जो शाश्वत सत्य का दिग्दर्शन कराते हैं। घटना मनुष्य जीवन के सूक्ष्म विश्लेषण के साथ मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर पूर्ण प्रकाश डालती है।

जीवन में श्वेत एवं श्याम प्रवृत्तियों का अन्तर्द्वन्द्व चलता ही रहता है। भले बुरे सभी प्रकार के चरित्र सृष्टि में उपलब्ध होते हैं। किन्तु कोई भी प्रवृत्ति जो समाज के लिए अहितकर है, या जिस से सामाजिक मर्यादा की प्रतिष्ठा पर आघात पहुँचता है वह सदैव हेय ही समझी जायगी। लेखक ने इस उपन्यास में यह दिखाने की चेष्टा की है कि मर्यादा का पालन, उसकी रक्षा, और उसके उत्तम स्वरूप को जब व्यक्ति जीवन का ध्येय बना लेता है, तब वह किसी भी रूप में समाज के लिए अकल्याणकारी नहीं हो सकता।

त्याग, सहानुभूति और उदारता आदि गुणों के कारण सर्वत्र आत्मीयता का विकास होता है। आत्मीयता के विकास से विरोधी एवं विकारोत्पादक शक्तियाँ प्रबल नहीं होने पातीं, जिस के कारण आनन्द की उपलब्धि होती है।

गुणी व्यक्ति का दृष्टिकोण जब पूतभावनाओं से युक्त होकर व्यावहारिकता का माध्यम बनता है तब समाज में समृद्धि के सबल अंकुर प्रस्फुटित होकर पल्लवित एवं पुष्पित होते हैं।

इस उपन्यास में इसी प्रकार के चरित्रों की समष्टि है जो अपने-अपने स्वाभाविक चरित्रों द्वारा प्रत्येक के प्रति सहानुभूति का विस्तार करते हैं। काकाजी एक सम्पन्न परिवार के व्यक्ति हैं, जो उदार और

परोपकारी वृत्ति के हैं। उनके चरित्र का चित्रण आज के युग के व्यक्तियों के लिए आदर्श चरित्र है। इसी भांति का चरित्र मास्टर साहब का भी है। जो स्नेही, त्यागी वृत्ति के कर्मठ व्यक्ति हैं। वे अपने आपको सदैव कष्टों में डाल कर भी औरों के हित साधन में लगे रहते हैं। उनके सामने भी स्नेह की समस्यायें आती हैं पर वे उन्हें मर्यादा के रूप में ही देखते हैं। संयम और नियम, स्नेह और श्रद्धा, अध्ययन और गुणग्रहण, त्याग और उदारता आदि के हृदयंगम रूप इस उपन्यास में देखने को मिलते हैं।

उपन्यास की कितनी मान्यताओं की कसौटी पर यह कसा जा सकेगा यह कहना तो अनर्गल प्रलाप सा ही होगा, पर यह कहा जा सकता है कि—घटना, घटनाओं के घात प्रतिघात, अन्तर्द्वन्द्व, आशा, निराशा, भाव भाषा और पवित्र लक्ष्य दृष्टिकोण से यह उपन्यास पाठकों के हृदयों को आकृष्ट कर उन्हें कुछ दे सकेगा ऐसी आशा है।

लेखक की विचार-धारा सुन्दर स्वस्थ सामाजिक सत्य के प्रकाश की अभिव्यक्ति की ओर प्रवहणशील होती रही है। वही बात इस उपन्यास में भी मिलती है। सत्य को कल्पना का रूप देकर लेखक ने इस उपन्यास की रचना की है। युग प्रवृत्ति और युग चेतना का प्रतिबिम्ब इस उपन्यास में नवीनता के साथ प्रतिबिम्बित हुआ है। सुमन, काका जी, काकी जी, मास्टर जी, सन्नो की माँ और इन्दिरादेवी इस उपन्यास के ये ऐसे व्यक्तित्व हैं जो सत्य होते हुए भी कल्पित हैं और सभी रूप में समाज में उपलब्ध हैं। इन व्यक्तित्वों की चारित्रिक विश्लेषणजन्य मनोहरता के कारण उपन्यास स्पृहणीय हुआ है ऐसी मेरी धारणा है। पाठक इसका विवेचन स्वयं ही कर लेगें।

अपनी ओर से

मनुष्य के हृदय पक्ष और मस्तिष्क पक्ष की भी अपनी एक प्रकार की क्षुधा होती है। उसकी परितृप्ति के यद्यपि अनेक साधन हैं, फिर भी उपन्यास उस उपयोगिता के अच्छे साधन माने जाते हैं। मस्तिष्क और हृदय एक दूसरे से सम्बद्ध होते हुए भी कुछ भिन्न मार्ग पर चलते हैं। चिन्तनशील दार्शनिक मस्तिष्कों की बात दूसरी है। वहाँ बौद्धिक शक्ति बलवती होती है। और हृदय पक्ष की ओर से वहाँ उदासीनता का प्रतिबिम्ब पड़ जाता है। किन्तु हृदय पक्ष में अनुभूति प्रधान रहती है, अतः उसकी कोमल वृत्तियों के विकास के लिए एवं उसकी कुछ सुनकर कुछ स्पन्दित होने की उत्सुकता को, कुछ कहने और कुछ सुनने की बात ही तृप्त कर सकती है।

मनुष्य का अन्तर्जग और बाह्यजगत कभी-कभी एकाकार हो जाता है और कभी उसके एकात्मक होने में व्यवधान ज्यों के त्यों बने रहते हैं। अन्तर्जगत और बहिर्जगत के समन्वय में एक प्रकार का आनन्द मिलता है। अनुभूति के आधार पर उपलब्ध यह आनन्द यद्यपि कुछ ही क्षण का होता है किन्तु उसमें आत्मविस्मृति या आत्मलीनता की अनुभूति होने लगती है। कथा या उपन्यास में यह अनुभूति सदैव विद्यमान रहती है और पाठक इसी लिए अपनी कुछ क्षण की आनन्दोपलब्धि के लिए ही सही, उसको अपनाते हैं।

अनुभूतियों की तीव्रता जब कभी-कभी अपने ही घेरे में सीमाबद्ध नहीं रहना चाहतीं, तब वे कुछ कहने का रूप धारण कर लेती हैं। कोई उन्हें क्रम-पूर्वक बाँध लेता है, कोई उनके प्रभाव से प्रभावित होकर भी उन्हें बाँधने की चेष्टा नहीं करता। जो चेष्टा करता है वह एक कलाकृति का रूप देकर अन्य लोगों के समक्ष उसे उपस्थित कर देता है।

जीवन की निश्चित, अनिश्चित, भली, बुरी, उदार, अनुदार, श्याम, श्वेत

सभी प्रकार की विचार धारायें मानव के अन्तः या वाह्य जगत को स्पर्श करती रहती है। उनकी अनुभूति भी साधारण, असाधारण सभी को होती है। इस लिए जो कुछ भी व्यक्ति अपनी अनुभूति में लाता है और उसे जो प्रिय एवं कल्याणकारी जान पड़ता है, उसे वह व्यक्त कर देना चाहता है।

अपने उपन्यास "स्नेह के बन्धन" में मैंने भी अपनी अनुभूतियों को व्यक्त मात्र किया है। वह उपन्यास की कोटि में आकर सफल होगा या असफल इसका विचार तो वे ही व्यक्ति कर सकेंगे जो उसको पढ़ेंगे। किन्तु यह भी सत्य है कि कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो सभी को प्रिय लगती हैं, कुछ नहीं भी लगतीं। पर ऐसा नहीं कि किसी का अस्तित्व नितांत विलीन ही हो जाय। यह तो दृष्टि भेद का संस्कार होता है।

मस्तिष्क को और हृदय को क्षण भर रमा देने वाले साधन, प्रियजनों के मधुरालाप, उनके स्नेह भरे सन्देश, उनकी भावनाओं का प्रकाश, अडिग साहस और धैर्य का श्रवण मनन करने वालों की भी सृष्टि में न्यूनता नहीं है। मैंने भी अपनी उन्हीं अनुभूतियों को उपन्यास रूप में आवद्ध किया है जो सत्य होती हुई काल्पनिक हैं और काल्पनिक होती हुई भी सत्य है। उनका उदात्त रूप स्पृहणीय होगा इस पर सहसा विश्वास करना अहम्मन्यता ही है। मेरा उपन्यास मेरी इन्हीं अनुभूतियों का रूप है।

दूसरे के दुखों से सहानुभूति रखना—यह सभी जानते हैं, मानते हैं पर उसका जब व्यावहारिक रूप सामने आता है तब मानव की क्या स्थिति होती है, हमारी भाव भूमि परदुख के लिये कितनी उपयोगी बन जाती है—परदुःख जब हमारे हृदय को स्पर्श करने लगते है तब हम क्या सोचते हैं, या क्या करते हैं—इन सब बातों का कुछ-कुछ समाधान सम्भवतः यह उपन्यास कर सके।

"स्नेह के बन्धन" कितने निर्बल और सबल होते हैं, उनकी शिथिलता या दृढ़ता किस मिलन बिन्दु पर जाकर स्थिर होती है, मानसिक संघर्ष में उन्हें क्या स्थान मिलता है, इस बात को व्यक्त करने में भी "स्नेह के बन्धन" उपन्यास को कुछ सफलता मिली कि नहीं यह विज्ञ अध्येता ही बता सकेंगे। पर इतना कहना अनुचित न होगा कि अन्तर्जगत एवं वाह्यजगत की

यथार्थता को मिलाने का जो कुछ भी प्रयास किया गया है वह अपने रूप में उचित ही है। पृथक् होते हुए भी उनका संगम हुआ है।

"स्नेह के बन्धन" में एक ऐसी घटना का चित्रण किया गया है जो जीवन के आदर्श और यथार्थ को लेकर चलती है। जिसमें मनुष्य के रूप, उसके हृदय की स्थिति, उसकी मूल वृत्तियाँ और उन पर संयम, नियम और मर्यादा का पूर्ण अंकुश रखा गया है। किन्तु मर्यादा के कोरे मोह में पड़कर वास्तविकता का हनन नहीं होने दिया गया है। मनोवैज्ञानिक आधार को लेकर जो कुछ भी चित्रण किया गया है वह यद्यपि पूर्ण स्वानुभूति की वस्तु है, फिर भी उसे आद्योपान्त कल्पना की रंगीन तूलिका से रंगने का प्रयास किया गया है।

व्यक्तिगत रुचि, संस्कार, ज्ञान, ज्ञान के कारणों की सबलता, वातावरण की विशेषता आदि के आधार पर अनुभूतियों के भी आधार भिन्न हो जाते हैं, इसी लिए कभी-कभी मिलन और कभी-कभी वियोग के दृश्य देखने को मिलते हैं, उन दृश्यों के भीतर एक मूक वेदना झाँकती रहती है। उसी मूक वेदना के दर्शन से कोई कुछ पा जाय या कुछ समझ ले तो कला-कृति का ध्येय सफल हो जाता है।

मुझे अपनी कृति के विषय में विशेष कुछ भी नहीं कहना है—फिर भी यत्किञ्चित् जो कुछ भी कहा गया है वह पाठकों की मानस भूमि की भाव सत्ता की ग्राहक शक्ति को ही लक्ष्य में रख कर।

हाँ उद्देश्य इतना अवश्य था कि व्यक्ति को किसी ऐसे कार्य के प्रति अग्रसर होना चाहिए जो आदर्शमय हो और सुखोपलब्ध भी। इसीलिए उपन्यास का रूप इन विचारों को दिया कि सम्भवत: इस रूप में जीवन के सत्य स्पृहणीय बन सकें। "धूप छाँही" वस्त्र की भाँति इस रचना में भी मनुष्य की बाहरी भीतरी दोनों वृत्तियों के रंग को एक रूप में देखने की चेष्टा की गई है और उसके पृथगस्तित्व पर भी आस्था मानी गई है। अस्तु।

अन्त में मैं यही कह कर अपनी ओर से कुछ कहना समाप्त कर दूँगा कि—

वीणा—तुम्बी, तार, एवं काष्ट दण्ड के संयोग से निर्मित एक वाद्ययंत्र

है। ये तीनों वस्तुयें जब एक रूप में उपस्थित होकर समन्वय में आती हैं तो इस प्रकार की मधुर ध्वनि की सृष्टि करने में समर्थ होती हैं, लोगों के कान जिसे सुनने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। उसी प्रकार "स्नेह के बन्धन" के अनेक चरित्रों की समष्टि भी यदि समन्वित रूप से पाठकों को कुछ आकृष्ट कर सकी और वह स्पृहणीय हो सकी तो मैं अपना प्रयास सफल समझूँगा।

"मार्मिक: को मरन्दानामन्तरेण मधुव्रतम्"

लेखक
जितेन्द्रचन्द्र भारतीय

विजयदशमी
२०१५
५०६५ सी० "गोदानिकुञ्ज"
महानगर लखनऊ

मनुष्य ममता का पुतला है, ईश्वर ने उसकी चेतनशीलता में ममता को प्रतिष्ठित करते समय उसके साथ अन्याय किया। इस प्रकार सोचते-सोचते सुमन न जाने कब चुप चाप लेट गई। उसे होश उस समय आया जब उसकी नौकरानी ने उसे दूध पिलाने के लिये उठाया। वह अन्यमनस्क होकर बोली—झुनिया! आज दूध न पियूंगी लेजा मुझे सोने दे। झुनिया मुंह लगी नौकरानी थी तुनक कर बोली—क्या हो गया आज राजा भैया को? ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि आप बिना दूध पिये सो जायँ।

सुमन बोली—हमेशा चित्त की दशा एक सी तो नहीं रहती, कभी किसी वस्तु को जी चाहता ही नहीं और कभी अलभ्य वस्तु को भी चाहने लगता है। तू जा किसी और को पिला दे। न हो तो जा तू ही पीले पर मेरा पिण्ड छोड़।

झुनिया आसानी से मानने वाली न थी। उसने सोचा आज राजाभैया को क्या हो गया। किसी से नाराज तो नहीं है। फिर क्या बात है जो आज ऐसी बातें कर रही हैं। वह बोली—कह दूँ काकी जी से कि आज राजा भैया दूध नहीं पियेंगी?

नहीं-नहीं झुनिया। तू नहीं मानेगी तो धर जा यहाँ पर थोड़ी देर में जी चाहेगा तो पीलूँगी।

झुनिया सहम गई और शान्तिपूर्वक दूध वहीं रखकर चली गई। पर उसके मन में आज सुमन को देखकर आश्चर्य हो रहा था। वह तो बड़ी निश्चिन्त थी। खिलखिलाकर हँसना और खेलना, कभी-कभी क्रोध आया तो नौकरों पर बरस पड़ना बस इतना ही वह जानती थी पर आज उसकी मुद्रा को देखकर झुनिया भी कुछ चिन्तित सी हो गई थी।

पुरानी नौकरानी थी और फिर सुमन से वह बहुत ही घुली-मिली रहती थी। वह एक बार फिर सुमन के कमरे में आकर देख गई दूध वैसे ही रखा हुआ था। वह देखकर चली गई।

सुमन को बाल्यकाल की स्मृतियों ने व्यथित कर रक्खा था। वह जब छोटी सी अबोध बालिका थी तभी से उसकी प्रकृति कुछ क्रोधी थी। वह अपने घर में बैठी रहती थी, उन दिनों उसका परिवार अपने इलाके में सम्मानित था, नौकर थे, दासियां थीं, आनन्द था और वैभव था। वह बड़े प्यार से पली थी। घर के सभी प्राणी उसे चाहते थे। उसने सोचा और उस दिन जब उसके पिताजी ने बन्दूक चलानी सिखाई थी तब निशाना ठीक बैठने पर उसी मृत पक्षी के रक्त का टीका लगा कर उसे विजयनी होने का आशीर्वाद दिया गया था और गाँव भर को दावत दी गई थी।

मृतपक्षी का स्मरण आते ही उसकी आँखें अविरल अश्रुपात करने लगीं। उस दिन तो उस पक्षी के प्रति कुछ भी करुणा नहीं थी पर आज वह सुख दुःख और वेदना की बातें समझने लगी थी। उसे दुःख हुआ कि उस पक्षी के मरने पर उसके परिवार वालों की क्या दशा हुई होगी। उसने फिर अपने समस्त आज तक के जीवन पर दृष्टिपात किया, वह सोचने लगी।

आज सूना-सूना सा लग रहा है, भीतर से जाने कोई कुछ कहने की प्रेरणा दे रहा है। कलेजे को जाने कौन पकड़ रहा है, अब वह सब कुछ समझने लगी है। किसी वस्तु का अभाव सा जान पड़ने लगा है। मानो उसकी आत्मा कुछ ढूँढ रही है। पर ढूँढने पर भी उसे उस वस्तु का ज्ञान नहीं हो रहा है कि चाहिये क्या? वह क्या करे कहाँ जाय। कैसी विचित्र उलझन में पड़ी है वह। वह क्यों एकान्त में बैठकर अपने मन से ही बातें करने लगी है। और अधिक उचाट होने पर कोई किताब उठा कर पढ़ने लगती है। उसने एक उपन्यास पढ़ा 'अन्तिम वेला' उसकी घटना उसे व्याकुल करने लगी, उसमें उसने पढ़ा—प्रेम विद्युत् की वह शक्ति है जो निर्जीव लोहे के टुकड़ों में भी [illegible] डाल देती है। प्रेम जीवन

की सार्थकता है। इसलिये कि बिना प्रेम के मनुष्य जिन्दा नहीं रहता। बन्धु बान्धवों से, माता पिता से, वस्तुओं से और कलाओं से किसी न किसी में मनुष्य का मन लगा रहता है। यही उसका जीवन है और यही सरसता है।

वह आज तक प्रेम का अर्थ भी कुछ और समझती थी। उसे प्रेम में न घृणा थी न ममता, स्वच्छन्द रहना खेलना कूदना यही तो उसने अभी तक जाना था।

कुछ दिन बाद ऐसा भी समय आया जब झुनिया ने उसे प्रेम के अनेक किस्से सुनाये थे पर वह उन्हें ढोंग समझती थी। हाँ इतना वह अवश्य सोचती थी अब पढ़ना अवश्य चाहिये लोग कहते हैं पढ़े लिखे लोग अच्छे होते हैं। उसने अपनी माँ से सुन रखा था विद्या से बढ़कर कोई वस्तु नहीं। उसकी रुचि विद्या पढ़ने की ओर झुकी। इस रुचि ने उसको स्वर्गिम लोक की मधुरिमा का आस्वादन करना प्रारम्भ किया। विचारों का तूफान उठा, वह छटपटाने लगी और उसके मुँह से जोर का शब्द निकला पढ़ूँगी-पढ़ूँगी अवश्य पढ़ूँगी। पास वाले कमरे में झुनिया बैठी थी। उसने आकर देखा बिटिया रानी वैसे ही पलंग पर बैठी है, दूध धरा है और दोनों हाथों से माथा थाम कर अब भी वह बड़बड़ा सी रही थी। अवश्य पढ़ना पड़ेगा। झुनिया ने कहा—राजा भैया कौन पढ़ेगा? किसको पढ़ना चाहिये? यह आप क्या देख रही हैं? क्या हो गया आपको?

सुमन ने झुनिया की बातों को ध्यान से सुना और बोली—झुनिया बैठ जा, उसने बैठते हुए कहा क्या हो गया है? सुमन बोली-झुनिया तू यह बता लोग पढ़ते-लिखते हैं क्यों? इस लिये कि उनका जीवन सुखी रहे? तो क्या मैं नहीं पढ़ सकती? क्या मुझे विद्या नहीं आ सकती? क्या मैं अपनी बुआ की भाँति नहीं बन सकती? झुनिया क्यों नहीं? क्यों नहीं करती रही। सुमन ने झिड़क कर कहा—हर बात में क्यों नहीं क्यों नहीं, यह बता मैं पढ़ सकती हूँ या नहीं? तू माँ से मेरे पढ़ने के बारे में कहेगी न? कोई मुझे घर पर नहीं पढ़ा सकता?

झुनिया ने कहा—राजाभैया कल सब कुछ माँ को बताकर आपके पढ़ने का प्रबन्ध करा दूँगी। अब रात बहुत बीत गई है सो जाइये। अच्छा झुनिया सोती हूँ तू जा, पर कहेगी न माँ से ? झुनिया हाँ कहकर सोने चली गई। सुमन भी अपनी पढ़ाई के स्वप्नलोक का मधुर दृश्य देखने-देखते न जाने कब निद्रा की गोद में चली गई। दूध धरा ही रह गया।

❀ ❀ ❀

प्रभात होते ही दरवाजे पर सहनाई बजाने वालों ने प्रभाती के स्वर छोड़ दिये। वातावरण शान्त था पक्षी चह-चहा रहे थे। प्रमद वन से दासियाँ पूजा के लिये फूल बीन रही थीं। झुनिया चाय बनाने की तैयारी में लगी थी। सुमन अब भी सो रही थी। सुमन की माँ ने उसके कमरे में प्रवेश करके देखा, सुमन सोई है। सूर्य की किरणों को स्पर्श करके उसका मुख और भी रक्तवर्ण हो उठा था। माँ के मन में आया सुमन युवती हो गई है। उसका यौवन निखर आया है अब उसका विवाह करना पड़ेगा। पर यह जैसी बड़ी हो रही है आलसी होती जा रही है। अभी तक सोई है। कितनी निश्चिन्त है यहाँ, ससुराल जाने पर कैसे उसका निर्वाह होगा। सोचते ही माँ ने आवाज दी—सुमन। अरी सुमन उठती नहीं देखती नहीं धूप सर पर चढ़ आई। भला यह कैसा चलन है। बड़ी दीदी कभी से पूजा पर बैठी है। सुनती है कि नहीं! अरे राम भगवान ही पार लगाएगा इन लड़कियों को।

सुमन ने एक अंगड़ाई ली। सुमन उठेगी नहीं ? माँ ने कड़क कर कहा।

सुमन उठ बैठी, नींद से भरी उसकी आँखें, बिखरे हुए बाल, वक्षस्थल से हटी साड़ी के कारण उसके यौवन का निखार स्पष्ट प्रतीत हो रहा था। इतने में झुनिया चाय ले आई। माँ को सामने देख झुनिया सहम कर बोली—काकी सुमन भैय्या पढ़ना चाहती हैं इन्हें पढ़ने दीजिये न। माँ ने बैठते हुए कहा—अरे क्या पढ़ेगी यह आलसी! झुनिया अब इसके हाथ पीले करेंगे या यहाँ बैठाकर पढ़ाते रहेंगे। और करेगी भी क्या

पढ़ कर अच्छा घर मिल जाय तो चिन्ता छूटे। अच्छा तू इसे चाय पिला कर आ मैं जरा पूजा की तैयारी करती हूँ। और सुमन से बोली—सुमन उठ कर जल्दी जल्दी नहा-धोलो आज नन्हके साहब के घर जाना है, वे लोग बाहर जा रहे हैं। जरा मिल लेंगे।

सुमन ने सब सुनी अनसुनी की और चाय पीकर तथा दैनिक कार्यों से निपट कर फिर अपनी पढ़ाई के विषय में सोचने लगी। माँ कहती थी—'हाथ पीले कर दूँ तो छुट्टी मिले। वह सोचने लगी—तो माँ बाप भी अपनी प्यारी पुत्री को कहीं और भेज देंगे? पर मैं तो पढ़ूँगी! पिताजी से स्वयं कहूँगी, जाती हूँ अभी। कैसे नहीं मानेंगे वह मेरी बात। जो कहती हूँ करते हैं, माँ ही उन्हें रोकती है। अच्छा अब चलूँ—'पिता जी मैं पढ़ूँगी' मन में सोचकर वह पिता जी के पास जाने को प्रस्तुत हुई। इसी बीच में भुनिया आगयी और दोनों में कुछ देर बातें होने लगीं।

❀ ❀ ❀

लाल साहब दरबार लगा कर बैठे थे। ताल्लुकेदारी पर बात चीत चल रही थी।

समरबहादुर सिंह ने हुक्का गुड़गुड़ाते हुए कहा—आखिर सरकार को क्या सूझी जो जमीदारों को इतना परेशान कर दिया आखिर जमींदारों से तो उसे भारी आमदनी थी। धुएँ का बादल बनाते हुए ऊपर को मुँह किये वह लाल साहब के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे।

लाल साहब ने खैनी तम्बाकू की पीक पीकदान में उगलते हुए कहा—समर! दुनिया कभी एक सी नहीं रही और फिर राजतन्त्र की तो बात ही न्यारी है। हर नयी सरकार कुछ न कुछ हेर फेर करती ही है। हाँ पर इतना जरूर था कि भारत के राजे महाराजे तालुकेदार बदनाम भी बहुत हो चुके थे। और कांग्रेस तो उनको आते ही सह न सकी। ठीक है हम लोगों को भी समय देखते हुए बदलना पड़ेगा।

लाल साहब इतना कहने भी न पाए थे कि तेजबहादुर सिंह भौंहों को धनुषाकार करके बोला—काका ! तुम लोगों के इन्हीं उल्टे विचारों ने तो यह दुर्दशा कर दी। जरा अकड़े रहते, सभी राजा महाराजा तालुकेदार एक हो कर रहते तो देखते सरकार क्या करती। आज हमारे पास न नौकर रह गए और न वह ऐशओ-आराम के सामान। बच्चों की पढ़ाई लिखाई की चिन्ता भी अब अवश्य करनी होगी नहीं तो क्या था इतनी आमदनी हो जाती थी कि मजे से सात पीढ़ी तक खाते रहते थे।

गंगाधर जो जरा कांग्रेसी विचार का था बोला—चिलम की आँच धीमी होगई जरा नन्हे इसे सुलगा तो लो ! और फिर उसने तेज बहादुर की बात का उत्तर देना भी अपनी शान के अनुकूल न समझा। दबी जबान में बोला—भैय्या सरकार जो कुछ करती है उसमें सभी की भलाई रहती है। यह भी तो ठीक नहीं कि एक ही गाँव में दस भूखों मरें और दस गुलछर्रे उड़ावें।

गुलछर्रे उड़ाते हैं तो अपने भाग्य पर किसी की चोरी करके तो नहीं। जिसने जो कर्म किये हैं भोगेगा ही। सरकार ने तालुकेदारी छीन ली हमारा मन और भाग्य तो नहीं छीन लिया। इतने दिन हमारे भी कोई पाप रहे होंगे इसलिये ऐसा हुआ नहीं तो देख लेना सब लोग, फिर हमारी वही पहिले जैसी शान होगी। इतना कह कर उसने मूछों पर ताव दिया।

लाल साहब मौन होकर सब सुनते रहे। नन्हे इतने में हुक्का ताजा कर लाया था। फिर हुक्का गुड़गुड़ाया जाने लगा और बहस का रंग भी कुछ बदल सा गया।

लाल साहब बोले—अबतो भाई गृहस्थी के धन्धों से छुटकारा नहीं मिलता। जिस शान को बाप दादों ने निभाया उसे तो निभाना ही पड़ेगा इसी लिये मैंने तो थोड़ी सी जमीन में फार्म खोल लिया है, कुछ काम तो चलेगाही। मेरे विचार से तो कुछ न कुछ उद्योग अब सबको करना ही पड़ेगा। नहीं तो पुरखों की रही सही आन भी धूल में मिल जायगी। क्यों न अपने गाँव में एक अन्नसत्र खोला जाय ? लाल साहब की बात पर मानों किसी ने ध्यान ही न दिया और हुक्के

की गुड़गुड़ाहट में उनके विचार मानों धुएं के साथ ही घुल मिल कर विलीन होगए।

❀ ❀ ❀

दोपहर का समय होगया था लोग उठकर अपने-अपने घरों को चले गए। लाल साहब आराम कुरसी पर दोनों पैर रख कर आँखें बन्द किये जाने क्या सोच रहे थे। गोबरधन ने सूचना दी कि कोई सन्यासी आपसे मिलने आए हैं।

"यहीं पर मिललूंगा भेज दो" लाल साहब ने लापरवाही से कहा। "कौन सन्यासी आ टपका इसे भी इसी समय आना था" सहसा सन्यासी ने प्रवेश करके आशीर्वाद दिया।

लाल साहब ने सिर से पैर तक सन्यासी को देखा। दिव्य मूर्ति चाँदी से चमकते केश, वक्षस्थल तक लटकती हुई दाढ़ी, एक हाथ पर रुद्राक्ष की माला और एक हाथ पर कमण्डल। आँखों से ज्ञान और योग की ज्योति सी निकल रही थी। लाल साहब की श्रद्धा ने उन्हें कुरसी छोड़ने को बाध्य कर दिया। वे उठे और स्वामी जी से कुरसी पर बैठने की विनय कर स्वयं समीप वाले चबूतरे पर बैठ गये।

"कहो बच्चा क्या हाल चाल है? तुम्हारे इलाके तो अब छिन गये हैं। पर अब काम कैसे चलता होगा?" हास्य मुद्रा में स्वामी जी ने कहा।

ये शब्द लाल साहब के हृदय पर बाण की भाँति चुभे पर उन्होंने अपनी व्यङ्गमयी प्रवृत्ति के कारण भावको दवाते हुए हँस कर कहा स्वामी जी राम कृष्ण की भी सदा बनी न रही तब हमारी क्या बात है। आप जैसे महापुरुषों की दया चाहिये फिर चिन्ता किस बात की?

स्वामी जी की मुद्रा गम्भीर होती जा रही थी बोले—अच्छा एक दम गाँजा भाँग कुछ पिला बच्चा फिर बातें होंगी "जो आज्ञा स्वामी जी" कह कर लाल साहब ने अपनी पुरानी आदत के अनुसार गोबरधन को बुलाकर गांजे की चिलम भरलाने का आदेश दिया।

स्वामी जी बोले-बच्चा तुम्हारी सन्तान कितनी हैं?

"दो लड़के और चार लड़कियाँ महाराज"

"तो तुम बड़े भाग्यशाली हो। चिन्ता की क्या बात है?"

"हाँ बाबाजी लड़कों की तो कोई चिन्ता नहीं पर कन्यायें पराए घर की धन हैं। दूसरों की धरोहर यदि उन्हें सौंप सकता तो चैन की साँस लेता" कहते हुए लाल साहब का गला भर आया।

इतने में गोबरधन चिलम भर लाया। स्वामी जी ने चिलम लेकर जोर से जमादी। धुयें की लपटें ऊँची-उठने लगीं। लाल साहब ने भी एक दम लगा कर चिलम बाबाजी को लौटा दी, इस बार बाबाजी ने चिलम ऐसे जोर से खींची कि सारा गाँजा चाँदी सा हो गया। चिलम गोबरधन को लौटा कर बाबाजी ने लाल साहब से बातें करनी आरम्भ कर दीं।

"तो बच्चा कुछ दिन यहाँ रहने का विचार है क्या कुछ प्रबन्ध हो सकेगा ?"

"बाबाजी ! चूनी-भूसी जो कुछ भी होगी सेवा में उपस्थित करूंगा रहने की चिन्ता नहीं कहीं भी आसन लग सकता है। पर बाबाजी यह तो बताइये आप कुछ ज्योतिष व हस्तरेखाओं का भी ज्ञान रखते हैं ? जरा यह तो बताइये मेरे भाग्य में आगे क्या लिखा है। यद्यपि मैं इन बातों में विश्वास नहीं करता फिर भी कभी-कभी इन बातों से मनको शान्ति सी मिल जाती है। कुछ कृपा कीजिये बाबाजी ऐसा उपाय बताइये कि जिससे कुछ शान्ति मिले और बेड़ा पार हो सके। तो बाबाजी क्या सोचते हैं आप ?

"अच्छा अच्छा जो जानूँगा बताऊँगा और हम साधुओं के पास सिवा आशीर्वाद के और धरा ही क्या है।"

बाबाजी से लाल साहब की बातें हो ही रही थीं कि सुमन इठलाती हुई वहीं चौपाल में आगई। बाबाजी को देख कर वह ठिठकी क्योंकि उसके घर इतना पर्दा था कि लड़कियाँ किसी के सामने नहीं आसकती थीं। उसे ध्यान आया कि एक दिन जब दीदी बार-बार घर

के बाहर झांक रही थी तो बाबू जी ने बड़ी कड़ी सजा दी थी। जो बेंत दीदी को पड़ा था उसका ध्यान आते ही वह पीछे मुड़ने लगी। लाल-साहब ने उसे देखा वह ठिठकी। लाल साहब बोले—'क्या बात है बेटे ? आओ देखो स्वामी जी आए हैं।'

इतने में ही बड़ी दीदी भी पूजा समाप्त करके उधर ही आ निकलीं। बड़ी दीदी को भी एक धक्का सा लगा पुरानी घटना याद हो आई। पिता जी ने डाँटा था और वह भी वहीं सहम गयी। लाल साहब ने उसे भी बुला लिया। दोनों बहिनें बाबा जी के पास बैठ गईं। बाबा जी बड़ी देर तक उनकी ओर देखते रहे फिर बोले—ईश्वर की मर्जी एक ही गुलाब में दो फूल कितने भिन्न रूप रंग के हो जाते हैं। उनके गुणों में और भाग्य में भी भेद हो जाता है। एक फूल देवताओं के सिर पर चढ़कर फिर रौंद दिया जाता है और एक फूल इत्र बन कर सदैव चित्ताकर्षक बना रहता है। एक धूल में लोटता है और एक गले का हार बन जाता है। "विधाता का विधान" कह कर बाबा जी ने गहरी श्वास छोड़ी।

दोनों बहिनों की तो समझ में कुछ न आया पर लाल साहब कुछ-कुछ इस अटपटी बोली का अर्थ समझने की चेष्टा करने लगे। पर साफ-साफ न समझने के कारण वे फिर बाबा जी से बोले—बाबा जी आपने जो कुछ कहा है उसका रहस्य समझ में न आ सका कुछ ऐसा कहिये जो साफ समझ में आ जाय। आप इन लड़कियों के बारे में सम्भवतः कुछ कहना चाहते हैं मैं भी जानूँ कि इनके भाग्य में क्या है।

बाबा जी बोले—अपने-अपने कर्मों का फल लेकर लोग संसार में पैदा होते हैं। बचा संचित कर्मों का विधान बदलता नहीं है, आरब्ध और क्रियमाण भी कुछ समय बाद अपने प्रभाव तो दिखाते ही हैं। ये लड़कियाँ बेचारी बड़ी अच्छी हैं। यह छोटी लड़की बेचारी बड़ी अच्छी है पर इसका भाग्य कुछ विचित्र है। इसके माथे को देखकर पता चलता है कि यह किसी पवित्र आत्मा की छाया है फिर इसमें क्रोध की मात्रा अधिक होगी। बुरा न मानो तो कुछ और सुनाऊँ? लाल साहब अब कुछ और सुनने के लिये उतने उतावले नहीं रह गये थे। पर फिर भी बोले—

बाबा जी जो कुछ भी है साफ-साफ कह दीजिए क्या है इसके भाग्य में। "बच्चा मैं विधाता तो हूँ नहीं! पर यह भी एक विद्या है उसी के बल पर कुछ कह सकता हूँ पर कभी-कभी कड़वी बात को सुनना लोग पसन्द नहीं करते हैं। अच्छा जो सुनना ही चाहते हो तो सुनो। यह लड़की सुखी जीवन की झांकी मात्र देखा करेगी। यह पढ़ना चाहेगी पर पूर्ण रूप से पढ़ न सकेगी। इसकी वृत्ति साधुओं जैसी होगी। पर यदि इसको घर त्यागना पड़ेगा तो इस का भाग्य बढ़ सकता है। इसको आत्मदर्शन का मार्ग मिल सकता है बस इतना ही समझो। बाबा जी की बात को सुन कर सुमन का चेहरा कुछ तमतमा सा उठा। उसकी पढ़ाई पूर्ण न हो सकेगी सोच कर वह व्याकुल हो उठी। वह अपने मनका भाव न रोक सकी उसने कहा "पिता जी मैं पढूंगी। आप मुझे पढ़ाएँगे न।" लाल साहब ने सुमन के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा 'तू जो कहेगी वही होगा मेरी लाड़ली, कह कर स्वामी जी से बोले "बाबाजी यह बड़ी ही शोख लड़की है इसकी शादी कैसी जगह होगी ?"

"शादी की बात अभी मत पूछो। मेरा विचार है इसकी शादी देर से करना इसी में भलाई है। पर एक बात है इसका नाम आज से सुमन न कह कर कल्याणी कहा जाय।"

कल्याणी नाम तो बड़ा प्यारा है बाबाजी ? अच्छा तो आपका दिया नाम ही इसका कल्याण करेगा यह भी आपका आशीर्वाद है। बाबाजी ? इस बड़ी लड़की का भाग्य क्या बताता है।

बाबाजी ने कहा—इसकी शादी शीघ्र हो जायेगी चिन्ता न करो, यह अपने भाग्य सेठीक रहेगी अब आलस्य आ रहा है जरा नहा धोकर आराम करना चहता हूँ। बाकी कल बता दूंगा। इतना कहकर बाबाजी ने कमण्डल उठाया और उठ खड़े हुए।

लाल साहब ने गोबरधन को पुकारा। गोबरधन हाजिर होगया।

लाल साहब बोले—देखो बाबाजी जो कुछ कहें सब प्रबन्ध कर देना। और भोजन की जो रुचि हो सब ठीक कर देना। इतना कह कर वह दोनों लड़कियों के साथ भीतर चलेगए

भीतर सुमन की माँ भोजन की तैयारी कर चुकी थी। प्रतीक्षा में ही थी कि लाल साहब ने चौके में देख कर कहा—"सुना जी सुमन ! मैं न जाने कितनी बार कह चुका हूँ कि महाराज और महराजिन तो अभी है फिर तुम क्यों कष्ट करती हो।" सुमन की माँ बोली—"बच्चों को अपने हाथ से ही बना कर खिलाने में मुझे सुख मिलता है। क्या करूँ"

'अच्छा जिसमें तुम्हें सन्तोष हो वही काम करो कह कर लाल साहब भी स्नान करने की तैय्यारी करने चले गये।

दोनों लड़कियों ने कौतूहल वश माँ से कहा—माँ आज बाहर चौपाल में एक बाबाजी आए हैं उन्होंने हमारे भाग्य की बातें कही हैं। माँ ओ माँ देखो तो बाबा जी ने सुमन का नाम कल्याणी रख दिया। हाँ माँ कल्याणी नाम तो अच्छा है पिताजी कहते थे इससे सुमन का कल्याण होगा। माँ ने उनकी बातों को सुनकर सोचा यह तो सुमन के पिताजी का पुराना रोग है, वह जहाँ कहीं साधू सन्तों को देखा तो बैठ गए उन्हीं से बातें करने। इन बाबा लोगों से जाने इनकी पटती भी कैसे होगी। फिर बड़ी बिटिया से बोली—आज तुम्हारे बाबू जी बड़े प्रसन्न होंगे अच्छा बताओ तो क्या क्या कहा तुम्हारे भाग्य के बारे में।

बड़ी बोली—बाबाजी ने कहा सुमन की शादी देर से करना इसी में इसकी भलाई है।

सुमन बोली—"दीदी के लिये कहा है कि इसकी शादी शीघ्र हो जायगी। पर माँ यह क्या जरूरी है कि शादी करनी ही चाहिये। माँ मैं तो पढ़ूंगी। पर बाबाजी कहते थे कि तू अधिक न पढ़ सकेगी। क्यों माँ बता न मैं क्यों नहीं पढ़ सकूँगी।

माँ उनकी बातों से झुंझला सी उठी और बोली—उसी बाबा से जाकर पूछ जो सारे संसार का भाग्य विधाता बना फिरता है। अपना भाग्य तो ये बाबा लोग देखते नहीं, चले हैं दूसरों का भाग्य बताने। चलो खाना खाने को देर हो रही है। इतने में लाल साहब भी आगए और सब लोग भोजन करने बैठे।

भोजन करने के पश्चात् दोनों बहिनें अपने कमरे में चली गईं और लाल साहब भी अपने कमरे में विश्राम करने लगे। उनकी स्त्री ने कमरे में प्रवेश करते ही कहा क्या क्या पूछा करते हैं बाबा लोगों से आप ? अनाप सनाप बातें ?

बाबा जी ने तो सत्य सत्य बताया। मुझे न जाने क्यों सुमन की चिन्ता सताती रहती है। इसे पढ़ाना तो शुरू करही देना चाहिये। क्या कहती हो ?

उनकी स्त्री बोली आपके सामने मेरी चलती ही कब है ? जो चाहें करें। देखें क्या पढ़ती है आपकी लाड़ली। लाल साहब—तुम समझती तो हो नहीं बहस करती हो, अब जमाना बदल गया है अब ऐसा जमाना आ गया है कि बिना पढ़े ब्याह होना भी कठिन हो जायगा। दहेज अलग मारे डालता है। पढ़ाई लिखाई से उसमें तो कमी हो जायगी। अच्छा कल एक पण्डित को बुलाना पड़ेगा घर पर पण्डित जी दोनों बहिनों को पढ़ाया करेंगे। "आप की तो बुद्धि सठिया गई है" सुमन की माँ बोली। "भला अब कहीं कोई लड़का ढूंढ़ा जाता तो अच्छा था कि पढ़ाई कराई जाती। आपको भी न जाने क्या होता जाता है।

लाल साहब बोले—कैसे समझाया जाय तुम लोगों कि दुनिया की हालत बदलती जा रही है। और फिर इतना दहेज कहाँ जो कोई दे सके। यदि लड़कियाँ थोड़ी बहुत भी पढ़ी लिखी होंगी तो ब्याह में कुछ सहूलियत हो जायगी और फिर कौन सी भारी शिक्षा उन्हें देनी है। थोड़ा बहुत काम चलाने भर को पढ़ जाँय इतना ही ठीक है। सुमनकी माँ बोली—जैसी आपकी मर्जी। विवाद इतने पर ही समाप्त हो गया।

❀ ❀ ❀

रात के नौ बज चुके थे। बाबा जी भोजन करके विश्राम कर रहे थे। और लाल साहब को झपकियाँ आने लगीं थीं। सुमन और उसकी बड़ी दीदी अपने कमरे में बातें कर रही थीं। बड़ी दीदी बोली—अब तो बाबूजी ने तेरा नाम कल्याणी ही पसन्द कर लिया है। ठीक है अपने बड़े कुछ न कुछ भलाई सोच कर ही काम करते हैं।

सुमन बोली—दीदी बाबाजी ने जो कुछ कहा क्या वह सब सच हो सकता है ? मैं पढ़ नहीं सकूँगी दीदी ? दीदी बाबा कह रहे थे इस लड़की के भाग्य में सुख नहीं है। यह लोग इतनी बातें कैसे जान लेते हैं ?

बड़ी दीदी ने कहा—ज्योतिष से जानते हैं। यह लोग सच बोलते हैं पर अब देखें पिता जी हमारी पढ़ाई का प्रबन्ध करते हैं कि नहीं। न हो तो भैया बाहर से आने वाले हैं उनसे कहा जाय वे बाबू जी को समझा कर हमारी पढ़ाई का प्रबन्ध करा देंगे।

सुमन बोली—दीदी शादी होने पर घर छोड़ना पड़ता है न ? हमलोगों की शादी न हो तो क्या हर्ज है। क्यों पिता जी को शादी की इतनी चिन्ता पड़ी है। हम पढ़कर कुछ काम क्यों न करें ? कोई जरूरी तो नहीं है कि कोई बिना शादी के रह ही न सके।

बड़ी दीदी ने सुमन को गोद में खींचते हुए कहा—सुमन तुम अभी छोटी हो इन बातों को क्या समझो। बिना शादी के लड़कियाँ नहीं रह सकतीं। लोग माँ बाप को बुरा भला कहने लगते हैं। और लड़कियों को भी। इसे खानदानी चलन नहीं कहा जा सकता, ब्याह तो करना ही पड़ता है। ससुराल में फिर सुख मिले या दुःख यह अपने भाग्य की बात रही। अच्छा सुमन अब रात अधिक हो चुकी सो जाना चाहिये। जब दोनों बहिनें सोने की तैयारी करने लगीं तो झुनिया दूध लेकर आई और दोनों को दूध पिला कर स्वयं सोने जाने लगी तो सुमन बोली दीदी तू जाकर सोजा अपने कमरे में, मुझे अभी नींद नहीं आ रही है, मैं झुनिया से बातें करूँगी।

दीदी ने आँखें दिखा कर कहा सोजाओ अधिक जागने से बीमारी हो जाती है। मैं तो सोने जा रही हूँ पर देखना यदि तुम देर तक बातें करती रही तो कल बाबू जी से कहदूंगी तुम्हारी अच्छी खबर ली जाएगी।

अच्छा दीदी सोती हूँ कह कर सुमन ने झुनिया को भी सोने का आदेश दिया और स्वयं भी बत्ती बुझा कर सोने का उपक्रम करने

लगी। रात अधिक हो चुकी थी। कहीं-कहीं दूर से कुत्तों की आवाज नीरवता को भंग कर रही थी। बीच-बीच में कभी उल्लू की बोली भी सुनाई पड़ रही थी। सावन की रात भयानक अंधेरा था, बाहर भीनी-भीनी फुहार भी पड़ रही थी। [illegible] को नींद न आई। उसने फिर बत्ती जला दी, खिड़की खोली, बाहर झांका तो बिजली की चमक को देख कर वह सहसा चौंक गई। सावन की भयानक रात उसे दुखदायी सी लगी। फिर उसने बत्ती बन्द कर करवटें बदलती रही पर उसे नींद न आई। उसके मन में [illegible]ओं का जाल बिछने लगा। उसको ध्यान आया बड़ी दीदी की शादी होगी दूल्हा बारात लेकर आयेगा और फिर दीदी हम लोगों को छोड़कर चली जायेगी। दीदी कहती थी शादी सब की होती है, मेरी भी शादी होगी। तब मैं भी इस घर को छोड़कर जाना पड़ेगा। वहां उनके अनुशासन में रहना पड़ेगा। पर जिस व्यक्ति के साथ मेरी शादी होगी वह तो मेरे लिये बिलकुल ही अपरिचित होगा न जाने उसका स्वभाव कैसा होगा? मैं कैसे वहां रहूँगी वह कैसी ससुराल होगी। पराये को अपना बनाने में न जाने क्या-क्या करना पड़ता होगा। जब दीदी लौट आयेगी तब उससे पूछूँगी कि किस तरह ससुराल में रहना पड़ता है। क्या-क्या वहाँ करना पड़ता है। किस तरह वहाँ के लोगों को अपना बनाया जा सकता है, और फिर उसने सोचा कि शादी न करूँ तो? मेरा जी पढ़ने का चाहता है पर बाबा जी की ज्योतिष तो कहती है कि मैं अधिक पढ़ नहीं सकती। यदि मेरी पढ़ाई का प्रबन्ध हो जायगा तो मैं जी लगाकर पढ़ सकती हूँ। पर यदि जल्दी ही शादी हो गई तो? तो क्या मैं नहीं करूँगी शादी अभी। पर जब बाबू जी जिद करेंगे तो? उसे फिर कुछ बेचैनी सी मालूम हुई और एक उपन्यास के पन्ने उलटने लगी। उसने सोचा पढ़ तो लेती हूँ पर किसी बात का अर्थ ठीक समझ नहीं पाती इसीलिये तो गुरू की आवश्यकता है। जब मैंने अ आ पढ़ना शुरू किया था तब तो बड़ी कठिनाई हुई थी पर धीरे धीरे मैं किताब पढ़ने लगी। इसी तरह यदि कोई मुझे समझायगा तो सब समझने लगूँगी। और जब मैं पटना गई थी तो जहाँ हम लोग ठहरे थे पड़ोस में ही एक लड़की थी जो रोज स्कूल

जाती थी। मेरी उससे कई बार बातें भी हुई थीं। उसने बताया था कि वह बारहवें दर्जे में पढ़ती है। मैंने पूछा था कि तुम पढ़ लिखकर क्या करोगी? उसने कहा था पढ़लिख कर ज्ञान आयेगा और मौका पड़ने पर नौकरी भी कर लूँगी। किसी के भरोसे पर तो जीवन नहीं चलेगा। अपने पैरों पर खड़े होने की आदत भी पड़ जायगी।

तब मैंने उसका मज़ाक उड़ाते हुए कहा था— क्या तुम नौकरी करोगी? माँ बाप क्या तुम्हें प्यार नहीं करते? कैसे करोगी तुम नौकरी।

उसने कहा था अभी तुम क्या समझोगी। उम्र के अनुसार अक्ल भी आएगी। तब अपने आप समझ जाओगी कि पढ़ने से क्या होता है।

मैंने देखा था कि वह अपनी सहेलियों के साथ पढ़ने जाती थी। बड़ी प्रसन्न दीखती थी वह, फिर मैं भी क्यों न उसी की तरह स्कूल जाऊँ? पर घर के पर्दे ने तो पिंजड़े में बन्द कर रखा है। बाबू जी घर के बाहर जाने ही नहीं देते। फिर कैसे पढ़ूँगी? घर पर ही पढ़ाई हो जाती तब भी अच्छा था। पर मेरे भाग्य में शायद यह भी नहीं है। जब मैं छोटी थी तब तो सब जगह घूम लेती थी। पर अब बड़े होने से क्यों घूमना भी बन्द कर दिया। कड़ा पर्दा किया जाने लगा। उस दिन पड़ोसी लड़का हमारे बीच में आकर मुझसे अमरूद मांगने के बहाने बातें कर रहा था तो बड़ी दीदी ने भी तो डांटा था कि तू सयानी हो गई है। यों जवान लड़कों से बातें नहीं करते। कोई देख या सुन लेगा तो क्या होगा। मैं चुप हो गई पर लोग ऐसा क्यों कहते हैं। लड़के क्या भूत-प्रेत होते हैं या उनके पास कोई जादू होता है जो लड़कियों को उनसे बात करने के लिये रोका जाता है, क्या दीदी को मालूम नहीं कि पटना में मैंने कैसे छकाया था लड़कों को? अभी कल की ही तो बात है बूँदी बांदी हो रही थी सड़क में फिसलन थी बाबूजी और दीदी के साथ मैं बाजार गई थी मैं आगे बढ़गई थी, तो कुछ पड़ोसी लड़के दोनों ओर साइकिलों पर खड़े हो गए थे वह रास्ता रोक कर बात करना चाहते थे। कुछ ही देर बाद दीदी भी आगई थीं। दीदी इनको देखकर झेंप गई थी और मैंने क्या-क्या सुनाई थी उनको कि याद करते होंगे। क्यों उन्हों

ने मेरा रास्ता रोका था ? क्या बिगाड़ा था मैंने उनका ? मैं उनसे क्यों डरती ? पर तब भी तो दीदी ने मुझे ही डाटा था कि उन लोगों के मुंह नहीं लगने। ऐसा क्यों होता है ? अच्छा मैं कल अपनी सहेली से पूछूंगी कि आखिर मर्दों से बात करने के लिये क्यों प्रतिबन्ध लगाया जाता है। इतना सोचते-सोचते उसे झपकी आगई। रात कब बीत गई उसे इसका ध्यान भी न रहा।

❀ ❀ ❀

"अरे उठती नहीं, देख सवेरा हो गया है" कह कर कनक ने उसके कन्धे को झकझोर कर जगाया। उदास मन से उठ कर सुमन ने अंगड़ाई ली और बोली—"दीदी रात भर नींद नहीं आई। जरा और सोलूँ !" "नहीं सुमन बाबूजी तुझे बुला रहे हैं।"

"क्या बात है दीदी जो आज सुबह-सुबह बाबूजी बुला रहे हैं ? क्या पढ़ाई की बात तय होगई ? दीदी आज मैं सुलोचना के घर जाऊँगी चलोगी न ? कहकर सुमन उठने लगी !"

"जा पहिले नहा धोकर कुछ नाश्ता करले बाबूजी के पास चलना है। सुलोचना के घर शाम को चलेंगे।"

तैयार होकर ज्यों ही सुमन बाबूजी के समीप जाने लगी, उसकी धानी रंग की साड़ी को देख कर धीरे से उसके कान में झुनिया बोली—अहो बलि जाऊँ अपनी बिट्टो पर। कितनी अच्छी लग रही हो तुम इस समय कहीं दूल्हा देख लेता तो क्या होता ? क्या होता यह तो तूही जानती होगी चल हट मुझे बाबूजी के पास जाना है। जा दीदी से कह दे मैं तैयार होगई हूँ।

अच्छा बिट्टो रानी कहे देती हूँ पर—झुनिया ने धीरे से अपनी ओर खींचकर कुछ ममत्व प्रकट किया।

"झुनिया एक बात पूछूँ बताएगी ?" सुमन बोली "क्यों नहीं राजा भैय्या पूछो न। पर देखो दूल्हा के बारे में कुछ पूछोगी तो दक्षिणा लिये बिना कुछ न बताऊंगी कह कर उसने सुमन के हाथों को चूम लिया।"

"झुनिया ! बड़ी लड़कियों को पर्दे के भीतर क्यों रखा जाता है ?" उन्हें लड़कों से क्यों नहीं मिलने दिया जाता है ?" सुमन ने पूछा।

"ओह अब समझी मैं तुम्हारी बात। तो क्या अभी से कुछ होने लगा है हमारी कट्टो को ?"

"क्या होने लगा है झुनिया ! तू न जाने क्या-क्या बका करती है। मैं तेरी एक बात भी नहीं समझ पाती।"

"अरे होगा क्या वही बीमारी जो इस उम्र में हर एक लड़की को हुआ करती है ? मीठा-मीठा दर्द, घबराहट, बेचैनी, कलपना, तड़पना और कुछ न होतो पलंग पर लेट कर मुंह छिपा कर रोना," झुनिया ने मुस्कराते और भौंहे मटाकाते हुए कहा। यह क्या रोग है ? सुमन नें पूछा।

झुनिया बोली—इसी को लोग चाह कहते हैं। जब किसी की याद मन में अपना घर बना लेती है तब यही कुछ होने लगता है। तुम्हें अभी कुछ मालूम नहीं क्या ? बनती हो मुझसे ही ?

झुनिया सच बता तेरा दिमाग तो नहीं फिर गया है ? जब देखो तब ऐसी ही बातें करती रहती है तू। तुझे क्या और कुछ कहना नहीं आता ? यही सीखा है तूने ? कौन है तेरा गुरु जो तुझे ऐसी बातें सिखाता रहता है ? तुनक कर सुमन बोली।

"राजा भैय्या इन बातों की पढ़ाई के लिये पाठशाला कहीं भी नहीं लगती और न कोई गुरु ही बनाना पड़ता है। ये सब बातें उम्र अपने आप सिखा लेती है। अच्छा जाती हूँ बड़ी दीदी से कहे देती हूँ कि राजा भैय्या तैयार हैं। झुनिया ने जाकर बड़ी दीदी को खबर दी और दोनों बहिनें बाबू जी के बैठक वाले कमरे में पहुँचीं। बाबू बैठे हुक्का गुड़-गुड़ा रहे थे। बड़ी दीदी और सुमन ने जब कमरे में प्रवेश किया तब बाबू जी की ध्यान मुद्रा टूटी। दोनों, लड़कियों को देखकर उनको क्षण भर के लिये उनके विवाह की चिन्ता ने विवर्ण कर दिया। मन की वेदना को दबाकर बोले—सुमन तुम लोगों की पढ़ाई का प्रबन्ध हो गया है। कल से

मास्टर जी पढ़ाने आएँगे। समय से पढ़ना प्रारम्भ कर देना और कुसुम तुम भी पढ़ना। कोई परीक्षा नहीं तो रामायण पढ़ने का तो कम से कम अभ्यास हो ही जायगा। यही हिन्दू लड़कियों के लिये बहुत है। और भाई समय ठीक रहा तो छोटी मोटी परीक्षा भी दिला देंगे। अब जैसा मास्टर जी कहें वैसा करना। मैं आज शाम को लखनऊ जा रहा हूँ। दो चार दिन रह कर फिर लौट आऊँगा। और देखो अपनी माँ से कहना मेरे लखनऊ जाने का सामान ठीक कर दें।

बड़ी दीदी बोली—बाबू जी क्या काम आ पड़ा लखनऊ जाने का ? वहाँ काका जी, काकी जी तो कुशल से हैं न ?

हाँ बेटा कुशल से तो हैं; पर उन्होंने किसी खास काम से मुझे बुलाया है। मैं सफर करने से घबड़ाता तो हूँ पर अबकी बार काम ही ऐसा आ पड़ा है कि जाना ही पड़ेगा। तुम्हारे भैया भी लखनऊ पहुँच गए हैं।

सुमन ने कहा—बाबूजी हम लोग भी कभी लखनऊ चलेंगे ?

लाल साहब ने लम्बी साँस खींची, मानो किसी अज्ञात शंका का आभास मिला हो। वे बोले—बेटी ! कभी न कभी तुम लोगों को भी लखनऊ ले चलूँगा। तुम्हारे काका काकी भी तुम्हें देखना चाहते हैं। अबकी मैं जल्दी लौट आऊँगा। फिर माघ फागुन में तुम्हें भी ले चलूँगा। अच्छा जाओ और देखो ध्यान से पढ़ना दोनों बहिनें मास्टर जी से।

"अच्छा बाबू जी" कह कर जैसे ही दोनों बहिनें कमरे से निकलीं डाकिये ने एक लिफाफा लाल साहब के हाथ में दे दिया। लाल साहब ने लिफाफा खोला और पढ़ने लगे।

प्रिय लाल साहब,

कई पत्र भेज चुका हूँ। पर आप तो सब पत्रों को पढ़ते भी होंगे अथवा नहीं। अबकी बार इस पत्र के पूर्व भी मैंने आपको लिखा था तुरन्त लखनऊ चले आओ। प्रतीक्षा करते ही रह गये, पर आपका

कोई उत्तर ही नहीं आता। लड़कियाँ सयानी हो गई हैं। उनकी चिन्ता भी शायद तुम्हें विचलित नहीं करती। जिस जरूरी काम के लिये लिखा था वह बड़ी बिटिया के सम्बन्ध में है। लड़का हमने देख लिया है। तुम्हारी स्वीकृति की आवश्यकता है, भैया को भी सम्बन्ध पसन्द है, लड़का पुलिस की सर्विस पर है। होनहार है और अच्छे स्वभाव का है। यहीं उसे भी बुला लिया है, तुम भी आ जाते तो सम्बन्ध तय हो जाता और जल्दी ही भार से मुक्त हो जाते। तुम्हारी काकी जी और बड़े काका जी भी यही कह रहे हैं। बिलम्ब न कर के शीघ्र आना। विशेष मिलने पर।

पत्र पढ़कर लाल साहब की आँखें डब-डबा आईं कितनी चिन्ता है काका जी को। मैं बाप होते हुए भी इतना चिन्तित नहीं हूँ। ओह ! संझले काका मनुष्य नहीं देवता हैं। मुझे कितना मानते हैं। यह भी क्या कोई कहने की बात है। भगवान न करे, यदि मुझे कुछ हो गया तो मेरे बच्चों को काका जी दुखी न होने देंगे। कितने लोग दुनिया में ऐसे हैं जो अपने पराए के लिये इस भाँति चिन्ता में घुलते रहते हैं। बार बार पत्र को पढ़ कर आखिर में वे अच्छी तरह रोही गए। कमरे से उठकर उन्होंने रसोई में जाकर अपनी स्त्री को पुकारा। उनकी स्त्री ने उनके नेत्रों में लालिमा देखकर सशंक होकर पूछा—खैरियत तो है ? आपकी आँखें लाल कैसे हो रही हैं। लाल साहब बोले—लखनऊ से काका जी का पत्र आया है कितनी चिन्ता है उनको कुसुम की ! लिखा है लड़का देख लिया, पसन्द आ गया तुम भी आकर सम्बन्ध तय कर जाओ। बड़े भाग्य हैं हमारे, कोई हमें अपना समझने वाला तो है। लाल साहब की स्त्री ने कहा—आज तो आप जा ही रहे हैं न लखनऊ ?

"हाँ जाऊँगा अवश्य। शाम की गाड़ी से ही जाना ठीक रहेगा। मेरा सामान ठीक कर देना, मैं जरा बिक्रम के घर हो आऊँ।" कह कर वे चले गए।

बात बहुत ही धीरे से हुई थी फिर भी बड़ी दीदी ने सुन ली थी। ना[illegible] हर्ष और चिन्ता से उस प्रकार काँप उठी जैसे छिपकर किसी मन्दिर

में प्रवेश करने पर कोई अछूत। उसके मन में ज्ञाताज्ञात कितने तर्क उठने लगे पर वह गम्भीर स्वभाव की थी, बात वहीं तक सीमित रह गई।

❀ ❀ ❀

शाम को लाल साहब ने लखनऊ प्रस्थान किया और उधर माँ की आज्ञा पाकर पड़ोस में ही सुमन अपनी सखी के यहाँ चली गई। सुलोचना अपने कमरे में बैठी अपने पति के दो दिन पूर्व आए हुए पत्र को पढ़ रही थी। उसने चुपके से जाकर उसकी दोनों आँखें बन्द कर दीं। सुलोचना हाथ से उसके दोनों हाथों को टटोलते हुए बोली अरे लो जानो मैं पहचानती ही नहीं हूँ रेणु है। हट रेणु। सुमन ने, हूँ किया। तो सुलोचना को शंका हुई। अरे अबकी पहचान गई अच्छा महारानी आँख तो छोड़ दो। यह तो उन्हीं के साथ करना जिन्होंने तुझे सिर चढ़ी बना रखा है छोटकी भाभी ? छोड़ो न—ऊँ हूँ हूँ—फिर वही आवाज ! अबकी बार उसने सिर के बालों पर हाथ फेरा। ओहो तो आप हैं ? कैसे रास्ता भूल गई मेरी बिल्लो ? चलरी अधिक न सता सुमन है न ! ऊँ हूँ ऊँ हूँ क्या कर रही है अब की झूठ थोड़े ही बोल रही हूँ।

सुमन ! आँख दर्द करने लगी—अरी छोड़ेगी नहीं ! आँखों पर से हाथ हटाते हुए सुमन ने पूछा इस शान्त एकान्त में क्या पढ़ रही थी तुम ? किसकी चिट्ठी है तुम्हारे हाथ में ?

सुलोचना बोली—होगी किसी की तुम्हारी बला से। अच्छा यह तो बताओ इतने दिनों से तुम आई क्यों नहीं ?

पहले बता पत्र किसका है तब तेरे प्रश्न का उत्तर दूंगी। सुमन हँस कर बोली।

"तुम्हारे जीजा का" उत्तर मिला।

"ओह ! तो क्या है उसमें ऐसी बात जो इतने ध्यान से पढ़ रही हो? यही तो होगा कि सब राजी खुशी है। तुम कब आओगी" सुमन बोली। "ओह ! यही होता तो कब का फाड़ कर फेंक देती।" सुलोचना ने एक अजीब भाव से मुस्करा कर कहा जो सुमन को बहुत भाया। उसे सुलोच-

की बातों में अद्‌भुत आनन्द आ रहा था। वह बोली सुलोचना! क्या मुझे नहीं बताएगी क्या लिखा है जीजा जी ने ? सुलोचना ने हंसते हुए पत्र उसके सामने कर दिया।

"अरी तू ही सुना दे न जो कुछ लिखा है जीजाजी ने" सुमन बोली। सुलोचना उसके आग्रह को न टाल सकी। फिर अपने अन्तःकरण की प्रसन्नता को भी वह व्यक्त करना चाहती थी। बहुत दिनों बाद उसे उसकी प्रिय सखी भी मिली थी। अतः उसने भी मजे मजे के साथ बातें बनानी शुरू कर दीं। पीढ़ा पास खिसका कर सुमन की ओर मुँह करके बैठ गई। वक्ता और श्रोता की तद्‌गत अवस्था थी। सुलोचना बोली—सुमन! जब मैं वहाँ से चली थी तो वे मुझे पहुँचाने चार मील दूर स्टेशन तक आए थे। बैलगाड़ी में बैठ कर जब उन्होंने मेरा हाथ अपने पास बिठाने के लिये खींचा था, तब शर्म से मेरा मुँह अपनी स्वाभाविक स्वरूपता छोड़ चुका था। वे बोले जम कर बैठ जाओ दूर तक चलना है।

मैं खिसक कर उनके पास बैठ गई, गाड़ीवान ने गाड़ी हाँक दी। छोटे देवर भी आकर बैठ गए थे। हम कभी कभी एक दूसरे को देख भर लेते थे और हमें एक अनिर्वचनीय आनन्द मिलता था। न बोलती हुई भी हमारी आँखें आपस में सब कुछ कह सुन लेतीं थीं। उतना आनन्द सम्भवतः बातचीत करने पर भी न मिलता। जब छोटे देवर की नजर हमारी ओर घूमती तो हम नजर नीची कर लेते और बैलों की ओर देखने लगते। गाड़ी चली जा रही थी और मेरा दिल उन्हीं की ओर खिंचा जा रहा था। डेढ़ घन्टे बाद हम स्टेशन पहुँचे। गाड़ीवान को बिदा करके उन्होंने कुली को सामान दिया। अभी गाड़ी आने में आधे घंटे की देर थी हम स्टेशन के प्लेटफार्म पर बैठ गए। उन्होंने देवरजी को अलग लेजाकर जाने क्या कहा और फिर मेरे पास आकर बोले "वहाँ पहुँच कर पत्र देने में विलम्ब न करना। हफ्ते में एक पत्र अवश्य डालना। और किसी बात की आवश्यकता हो तो अवश्य लिखना।" उन्होंने कहा था, सुलोचना! तुम्हारे जाने से घर सूना सूना सा लगेगा। मैं सोच रही

थी यों ही बोलते होंगे क्योंकि मैं अभी उनके स्वभाव को अच्छी तरह जान भी न पाई थी। पर इतना जानने लगी थी कि वह मुझे बहुत चाहते हैं। वे बोले—तुमने मेरे जीवन में परिवर्तन कर दिया। कभी कभी जब तुम मौन रहती हो तो मैं सोचता हूँ क्या हो गया तुम्हें आज।

सुलोचना बोली—आज उन्हों ने पत्र में भी यही लिखा है कि तुम्हारे बिना घर पर रहा नहीं जाता। कुछ बोलने को जी चाहता है पर किस से बोलूँ। हंसने का जी चाहता है किससे हँसू। घर में सब हैं पर कोई भी नहीं है ऐसा जान पड़ता है तुम्हारे बिना। तुम्हारा चित्र जो एल्बम में लगा है, बार बार उसी को देखा करता हूँ। तुम्हारी लजीली और शर्माई हुई हंसी को देखकर जी उधर ही खिंच जाता है। प्रफुल्ल कमल का मकरन्द पान कर जो दशा मधुकर की होती है वही मेरी दशा है। भेद इतना ही है कि वह अपने मन का स्वतन्त्र है और मैं परतन्त्र। "सुमन कहाँ तक कहूँ उनकी सारी बातों का सार यही है कि वे मुझे जितना प्यार करते हैं मैं उन्हें उतना नहीं दे पाती हूँ। क्योंकि निगोड़ी लाज आजाती है हम लोगों के बीच में। पर तेरे जीजा जी हैं बड़े ही साहित्यिक प्रवृत्ति के।

सुमन उसकी बातों को सुनती रही और कुछ सोचती रही। अपने भावों को दबाती हुई बोली—सुलोचना! आज मैं भी तुझसे एक बात पूछने ही आई हूँ। बात यह है कि जब से तू चली गई थी सिवा झुनिया के मैं न किसी से कुछ कह सकती थी और न समझ सकती थी पर यह बता कि बड़ी होने पर लड़कियों को पर्दे में क्यों जकड़ा जाता है। उनकी चलने फिरने और बोलने की स्वतन्त्रता भी क्यों छीन ली जाती है? लड़कों में क्या बात है जो उनसे बचने की बात समझाई जाती है। निश्छल भाव से सुमन कह रही थी और उसके भोलेपन पर सुलोचना मन ही मन हँस रही थी।

सुलोचना ने कहा—सुमन अब तू इतनी बच्ची तो नहीं है जो कुछ समझे ही नहीं। जब लड़के या लड़कियाँ बड़े हो जाते हैं तब उन्हें संसार का ज्ञान होने लगता है। कभी-कभी मन के भाव विचित्र रूप से उमड़

पड़ते हैं दोनों ओर से एक प्रकार का खिंचाव सा होने लगता है। एक दूसरे को अपना समझने की भावना उनके मन में उठने लगती है। यही भावना बढ़ते-बढ़ते इतनी बढ़ जाती है कि वे कुछ समझ ही नहीं पाते और उसे प्रेम समझ कर एक दूसरे को अपना सब कुछ मान बैठते हैं। यह प्रेम नहीं उनकी एक बुरी भावना ही होती है। और इसी के कारण बहुतों का जीवन नष्ट हो जाता है। उनका जीवन नष्ट न हो, वे बुरे मार्ग पर चल कर दुःखी न हों सदा सुखी रहें इसी लिये उन्हें रोका जाता है। और कोई बात नहीं है।

तो क्या एक दूसरे को अपना बनाने की भावना बुरी होती है? सुमन ने पूछा।

हाँ कभी-कभी मनुष्य सच्चाई की ओर न जाकर ऊपरी विचारों में फंसा रह जाता है और धोखा खा जाता है।

आज कल ऐसा ही होता है। लडके अपनी चिकनी चुपड़ी बातों से बहला कर शादी करने का वादा करते हैं और जब लड़कियाँ उनकी बातों में फँस कर उनको अपना सर्वस्व समर्पण कर देती हैं तब वह उन्हें धोखा दे देते हैं। सुमन यह दुनियाँ बहुत बुरी है और चतुर भी। चारों ओर स्वार्थ पूर्ति के हेतु छल और प्रपञ्च का जाल सा बिछा है। सखी यह दुनिया बड़ी विचित्र भी है। यहाँ उसकी दृष्टि में कभी वही काम अच्छा माना जाता है जो कुछ दिन पूर्व बुरा रहता है। सुमन की समझ में सुलोचना की बातें कुछ आ रही थीं और कुछ नहीं। वह अनमनी सी होकर बोली—सुलोचना क्या प्रेम करना बुरी बात है? प्रेम कैसे किया जाता है? उसकी बात पर सुलोचना को हँसी आगई। वह खिलखिला कर हँस उठी और बोली करोगी प्रेम किसी से?

पर प्रेम किया कैसे जाता है?

सुलोचना ने मुस्कराते हुए उसे अपनी छाती से लगा लिया और दो तीन बार उसके स्वच्छ कपोलों को चूम लिया और बोली "बस यही है उसकी शुरूआत।" सुमन ने उसे हटाते हुए कहा—धत् तेरे प्रेम का यह भी कोई प्रेम हुआ क्या हुआ ऐसा करने से?

क्या तेरे हृदय में गुदगुदी नहीं हुई ?

ना भाई—हँसती हुई सुमन बोली।

तो तुम बड़ी नीरस हो अच्छा देखो सुमन यदि कोई लड़का इस प्रकार तुम्हें चूमलेता तो।

कैसे चूमता दो झापड़ न रख देती ?

अच्छा-अच्छा ! ये सब शेखियाँ तब देखूँगी जब शादी हो जायगी। अच्छा चल माँ के पास चलें। चाय तो पीती है न ? 'हाँ हाँ क्यों नहीं' सुमन बोली।

दोनों माँ के पास पहुँची। माँ ने पहले ही चाय व नाश्ता तैयार कर रखा था। वहाँ पहुँचने पर सुमन ने बड़ी नम्रता पूर्वक ताई को प्रणाम् किया।

खुश रहो बेटी ! भगवान तुम्हें अच्छा घर बर दे। बहुत दिन बाद आई। सुमन घर में सब चैन से हैं ? तुम्हारे बाबू जी की तबियत अब कैसी रहती है ? लो चाय पियो कहते हुए सुलोचना की माँ ने एक-एक प्याला चाय और गर्म-गर्म कचौरियों की तश्तरी सुमन और सुलोचना के सामने रख दी।

चाय की प्याली उठाते हुए सुमन बोली—ताई जी बाबू जी तो आज कल ठीक हैं। आज वे लखनऊ गए हैं।

"लखनऊ गए हैं ? क्या बात है ?"

"यह तो मैं नहीं जानती पर कुछ जरूरी काम आ पड़ा था।"

"बड़की की शादी की फिकर में गए होंगे ? बेचारे रात दिन लड़कियों की शादी की चिन्ता में घुले जाते हैं। ममत्व जताते हुए सुलोचना की माँ ने कहा और उसकी आँखों में दयापूर्ण अश्रु छलक पड़े। वह सुलोचना से बोली—तू भी कल सुमन की माँ से मिल आना। बेचारी तुम लोगों को कितना चाहती है। तुम्हारे ससुराल चले जाने पर भी हाल चाल पूछती रहती थी क्या हाल है सुलोचना के ? सुखी तो

हैं ? ससुराल वाले उसे मानते तो हैं। जब भी मैं मिलती थी तुम्हारी चाची चर्चा अवश्य करती थीं।

"अच्छा तो ताई जी अब चलूँगी आज्ञा दीजिए।"

जा रही हो बेटी ! अब कब आओगी ?

ताई जी मैं तो रोज ही आसकती हूं पर अब कल से तो मास्टर जी पढ़ाने आएँगे तो समय मिलेगा न ! कभी-कभी सवेरे-सवेरे आ जाया करूँगी। अच्छा ताई जी अब जाना चाहती हूँ अंधेरा होने लगा है।

अच्छा बेटी जाओ। सुलोचना ! थोड़ी दूर तक पहुँचा दो सुमन को !

पहुँचा तो दूँगी माँ पर इससे पहले वादा तो करालूं कि फिर कल आएगी ? अरे हाँ कल से तो मास्टर जी से पढ़ेगी। सुलोचना की माँ बोली बड़े लाल को भी न जाने क्या सनक सवार होती है। अब कहीं इन लोगों की शादी का प्रबन्ध करते तो भला था। पढ़कर करेंगी क्या ये लड़कियाँ। पराए घर की धन हैं ये तो। फिर आज कल के जमाने में पढ़ लिख कर लड़कियाँ बिगड़ भी तो जाती हैं।

सुमन को इस बात में कुछ उसी तरह की कड़वाहट प्रतीत हुई जैसे मधु मिश्रित कुनेन में, पर वह कुछ बोली नहीं। अच्छा ताई जी चलूँ, "चल सुलोचना थोड़ी दूर तक तो पहुँचा दे" कह कर वह सुलोचना के साथ चल पड़ी। थोड़ी दूर चलकर अपने घर के मोड़ पर वह खड़ी होगई। वह सुलोचना को ओर सुलोचना उसे देख कर हँसपड़ी इस हँसी में क्या भाव था वे ही जानें !- फिर एक दूसरी का अभिवादन कर अपने घर चल पड़ीं।

लाल साहब स्टेशन पहुँच चुके थे सामान स्टेशन ले चलने का आदेश देकर वे टिकट लेकर गाड़ी के डिब्बे में बैठ ही रहे थे कि किसी ने उनके कन्धे पर हाथ रख कर कहा—अजी श्रीमान् कहाँ की तैयारी करदी ?"

लाल साहब ने चौंक करदेखा-ओह आप ! यहाँ कहाँ ? क्या लखनऊ चल रहे हैं ?

"हाँ हाँ भाई मैं भी लखनऊ चल रहा हूँ" कह कर वे कुली से बोले—

रख दो सामान इनका भी उसी डिब्बे में। चलिये लाल साहब वहीं चल कर बैठिये, अच्छा साथ रहेगा, समय अच्छा कटेगा, गप्पें लड़ाएँगे सफर अच्छा बीतेगा, रात कट जायगी।

अच्छा कह कर कुली पर सामान लदवा कर लाल साहब उन्हीं सज्जन के डिब्बे में पहुँच गए जहाँ वह पहले से बैठे थे।

कुली को विदा करके दोनों सज्जन आराम से बैठगए।

"कहो भाई कैसे जा रहे हो लखनऊ," लाल साहब ने पूछा।

'योंही—आप कैसे जारहे हैं?' वह व्यक्ति बोला।

"मेरे एक रिश्तेदार हैं मैं वहीं जा रहा हूँ, उन्होंने कुछ जरूरी काम से मुझे बुलाया है" कह कर सहसा लड़की के विवाह का ध्यान आने से वह कुछ उदासीन भाव से मौन होगए।

उनके साथी सज्जन बोले—मैं भी कुछ ऐसे ही काम से लखनऊ ही जारहा हूँ, लाल साहब! क्या बताऊँ आज बहुत दिनों बाद आपसे भेंट हुई है मैं भी कुछ घरेलू झंझटों के जाल में इस तरह फंस गया हूँ कि किसी तरह से छुटकारा नहीं मिल रहा है।" अरे आप तो बड़े चिन्तित नजर आ रहे हैं क्या बात हो गई? अच्छा यह तो बताइये आप, अपनी लड़कियों के विवाह से तो छुटकारा पागए न?

लाल साहब उनकी बातों को ध्यान से सुन रहे थे; सोचने लगे इनको इसकी क्या आवश्यकता पड़ गई। क्षण भर सोच कर बोले—अभी कहाँ भाई अभी तो तीन लड़कियाँ हैं जिनके हाथ पीले करने बाकी हैं।

"यही मुसीबत तो मेरे ऊपर भी है लालसाहब।"

"गजेन्द्र, तुम्हारी कै लड़कियाँ हैं विवाह करने को?"

"क्या बताऊँ" गहरी सांस लेकर गजेन्द्र बोले अभी तो एक ही से निबट पाया हूँ। आप तो जानते ही हैं बड़ी बिटिया मधू का ब्याह जैसे तैसे निबटाया है उसी में दिवाला पिट गया। अभी मीरा और शीला का कहीं भी प्रबन्ध नहीं हो सका है। लाल साहब आजकल तो लड़की का

ब्याह करना वैतरणी पार करने के सामान हो रहा है।

हाँ भाई बात तो कुछ ऐसी ही ज्ञात होती है।

क्या बताऊँ आज कल के लड़के और उनके माँ बाप के दिमाग भी तो सातवें आस्मान से बातें करते हैं। आपको बताऊँ आज से दो मास पूर्व सीतापुर के एक रईस सज्जन हैं नाम नहीं बताना चाहता उनके लड़के से मीरा की शादी की बात तय हो रही थी। साढ़े सात हज़ार पर तय हुआ था। तिलक का एक हज़ार माँगते थे। दो चार भले आदमियों के बीच में पड़ने से किसी प्रकार तिलक भी उसी साढ़े सात हजार में शामिल किया गया। तिलक का एक हजार चढ़ा कर मैं निश्चिन्त हो कर चला आया। जब विवाह की तिथि निश्चित करने का समय आया और पत्र भेजा तो वहाँ से उत्तर आया कि लड़के को लड़की पसन्द नहीं है हमें आपके यहाँ का सम्बन्ध स्वीकार नहीं। आप हमारे भरोसे पर न रहें। अपनी लड़की का कहीं और सम्बन्ध करलें।

कहते-कहते गजेन्द्र सिंह का चेहरा तमतमा उठा। यदि सामने की बात होती तो शायद उनको वे न जाने क्या-क्या बक जाते पर उन्हों ने जेब से पत्र निकाल कर लाल साहब के सामने रख दिया और शून्य दृष्टि से दाँत पीसते हुए से खिड़की के बाहर झाँकने लगे। लाल साहब आखें गड़ा कर पत्र के एक-एक शब्द के अर्थ पर विचार कर रहे थे और ठाकुर साहब चलती हुई गाड़ी की रफ्तार का अध्ययन सा कर रहे थे। उनके मस्तिष्क में विचार भी उसी तीव्र गति से चल रहे थे और उसी गति से उनका हृदय भी धड़क रहा था। कुछ देर बाद वह बोले--देखिये न वह मेरा एक हजार रुपया भी हड़प करना चाहते हैं, मैं वहीं जारहा हूँ जरा आमने सामने बात चीत हो जाए देखें क्या कहते हैं ?

लाल साहब बोले—जरा शान्ति से ही जहाँ तक हो सके काम लीजियेगा। झगड़ा बढ़ाना ठीक न होगा।

ठाकुर गजेन्द्र सिंह अपनी बड़ी-बड़ी मूछों को ऐंठते हुए बोले—लाल साहब आखिर हम भी तो क्षत्रिय वंश के हैं। इतनी बड़ी बेइज्जती कैसे सहलें आखिर उनके लड़के पर ही क्या सुर्खाब के पर लगे हैं। शादी

करनी हो तो करें वर्ना मेरा रुपया लौटादें। मजा चखा दूंगा बेईमानों को। मानों इनके बाप का कर्जा देना था। और लपनी अड़की भी तो कोई कम पढ़ी लिखी नहीं। रूप रंग और स्वभाव में तो उनके लड़के से कहीं अच्छी है। जी तो ऐसा चाहता है आज ही उनपर मान हानि का दावा करदूँ—क्या करूँ लाल साहब बड़ी परेशानी है।

लाल साहब अपने ही विषय में सोच रहे थे कि उनके ऊपर तो अभी बहुत भार है। पर फिरभी बोले—भाई जहाँ तक हो सके पञ्चायत करके ही मामला तय कर लेना। सहसा गाड़ी रूकी। सिगरेट का धुआँ उड़ाते हुए लाल साहब बोले—भाई गजेन्द्र मैं भी लड़की की शादी के ही सिलसिले में लखनऊ जा रहा हूँ। मेरी दूसरी बिटिया की शादी तय हो रही है। हमारे एक रिश्तेदार लखनऊ में हैं। वे ही बेचारे सब कुछ कर रहें हैं। पर भाई मैं तो अधिक दहेज दे न सकूंगा। देखें कैसे शादी तय होती है।

"लड़की आपकी कहाँ तक पढ़ी है?"

"साधारण चिट्ठी पत्री लिख पढ़ लेती है।"

"किसी स्कूल में नहीं पढ़ाया?"

"अपने यहाँ का यह चलन ही न था।"

पर अब तो समय बदल गया है लाल साहब! पुरानी लकीरों पर कहाँ तक चलेंगे?

ऐसा ही कुछ मैं भी सोचता हूँ। इसी लिये अब छोटी लड़की को पढ़ाने की बात सोच रहा हूँ। पर इस लड़की का तो सम्बन्ध ठीक हो जाता तो कुछ दम लेने की फुरसत मिलती।

हाँ लाल साहब अब तो पढ़ाई लिखाई से ही कुछ बन पड़ेगा। जमाने को देखते हुए लड़कियों का पढ़ाना जरूरी हो गया है।

आप ठीक कहते हैं। कहते हुए लाल साहब ने अधजली सिगरेट को बड़ी जोर से खिड़की के बाहर फेंक दिया मानों किसी झंझट से उन्हें फ़ुरसत मिली हो।

गाड़ी चलदी और दोनों कुछ देर के लिये शान्त होकर अपने विचारों में उसी भाँति लीन जान पड़े जैसे कोई योगी ध्यानावस्था में लीन हो। धीरे धीरे उन्हें नींद की झपकियाँ आने लगीं और लखनऊ का स्टेशन आने तक उनकी बातचीत का सिलसिला बन्द ही रहा।

लखनऊ स्टेशन आने पर गाड़ी रुकी। प्रभात का धुन्धला कुहरा चारों ओर छाया था, सूर्य रश्मियां शीत से भयभीत होकर धीरे धीरे आगे बढ़ रही थीं। गाड़ी के रुकते ही "कुली चाहिए की आवाज" ने दोनों की तंद्रा तोड़दी। कुली को सामान देकर दोनों व्यक्ति मुसाफिरखाने पर जाकर एक दूसरे से विदा होने लगे। ठा० गजेन्द्र सिंह बोले-लालसाहब ! कितने दिन तक लखनऊ ठहरने का विचार है ?

बस जितनी ही जल्दी काम हो जाय—आप कब लौटेंगे ? लाल साहब ने पूछा। बस काल भर उन बेईमानों को खोटीखरी सुना कर जो कुछ भी हाल होगा सुन सुना कर चला आऊंगा। कह कर वे एक दूसरे से विदा हुए।

तांगे पर बैठ कर कुछ ही देर में लाल साहब अपने रिश्तेदारों की कोठी पर पहुँच गये। बाहर एक ओर फाटक के पास ही मोटर खड़ी थी, पास में ही एक छोटे भद्दे रूप का स्कूटर रखा था जो अपनी जीवन यात्रा मानो समाप्त कर चुका था। आंगन में बेञ्च पर २-४ आगन्तुक बैठे थे। समीप में ही टेलीफून के पास बैठा चपरासी ऊंघ रहा था। छोटे छोटे दो कुत्ते बीच-बीच में भूंक कर उसका ध्यान नवागन्तुकों की ओर खींच लेते थे। तांगे से उतरते ही चपरासी की दृष्टि लाल साहब पर पड़ी। कुत्ते तेजी से भूंकने लगे। चपरासी ने आगे बढ़कर सलाम किया। सामान भीतर लेजाता हुआ वह बोला—हजूर आप बैठें, सरकार किसी से बातें कर रहे हैं, अभी सूचना पहुंचाता हूँ।

महादेव ! यहाँ सब खैरियत तो है ? लाल साहब ने पूछा।

हां सरकार ! आपतो अच्छे हैं ? चपरासी बोला।

हां भाई सब ठीक है। संझले सरकार कितनी देर में फुरसत पायेंगे ? कौन बैठा है उनके पास !

सरकार कोई अफसर आये हैं जंगलात के। अभी अभी आये हैं, इन्हीं से बातें हो रही हैं। हजूर बैठें अभी खबर कर देता हूँ। इतने में फोन की घंटी की टनटनाहट हुई, लाल साहब ने फोन उठाकर "हलो कहां से बोल रहे हैं आप" पूछा, उत्तर मिला "तुम कौन बोल रहे हो? संझले सरकार घर पर हैं?"

आप कहां से बोल रहे हैं?

तुम बड़े बत्तमीज हो—मैं कौन हूँ, तुमसे मतलब—कहदो न्यूहैद्राबाद से बोल रहा हूँ।

कौन है सरकार मैं लाल बोल रहा हूँ पहिचाना?

ओह! आप हैं लाल साहब! क्षमा करना मुझे क्या मालूम था कि आप यहां आए हैं? कब आए आप।

अभी अभी आया हूँ।

तो शाम को मेरे यहाँ आयेंगे न? अवश्य आइएगा।

आऊंगा कहकर लाल साहब ने फोन का चोगा रखदिया।

भीतर से घंटी की आवाज सुनकर जी सरकार कहकर चपरासी इस भांति भाग कर गया मानों किसी ने पीछे से धक्का दिया हो। भीतर जाकर संझले सरकार का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए हजूर! इतनी जोर से कहा कि चौंक कर पास में बैठे हुए सज्जन गिरही पड़ते यदि उनकी पीठ का भार दिवाल न संभाले होती।

मोहन को भेजो—जी सरकार! बाहर लाल साहब आए हैं। कौन लाल साहब! संझले सरकार ने ऐसे आश्चर्य से कहा मानो किसी लाल साहब को वे जानते ही नहीं। चपरासी बोला—सरकार अपने ही लाल साहब हैं।

अच्छा-अच्छा लाल साहब को भीतर ले चलो मैं अभी आ रहा हूँ। खानसामा से चाय तैयार करने को कह दो।

लाल साहब चपरासी के साथ भीतर चले गये। थोड़ी ही देर में काका जी ने भीतर प्रवेश किया।

सुडौल तथा गठीले बदन पर गौर वर्ण की दिव्याकृति, माथे तक लटकते हुए घुंघराले बाल ऐसे लग रहे थे मानो श्वेत कमल पर मधुकर पंक्ति बैठी हो। शतदल के समान कर्ण पर्यन्त विस्तृत लोचन, उभरा हुआ प्रशस्त ललाट, मुख पर हास्य मुद्रा की झलक, इन सबके मिश्रण से बना हुआ काका जी का व्यक्तित्व आकर्षक बना हुआ था। विशाल वक्षस्थल पर लापरवाही के साथ पड़ी हुई मटमैले रंग की ऊनी चादर ऐसी लग रही थी मानों किसी शिलापट्ट पर धूमिल वर्ण के मेघ विराजमान हों। हाथी की सूँड की भाँति सुसंश्लिष्ठ बाहु और केहरी कटि का भी अपना निजी प्रभाव था। तीन कुत्तों को साथ लेकर जब वे भीतर आए तो उस समय लाल साहब ने उन्हें इस प्रकार देखा मानों भगवान् दत्तात्रेय स्वयं जनकल्याण के लिए आविर्भूत हुए हों।

आयु में बड़े होने पर भी रिश्ते के अनुसार लाल साहब ने पहले उठकर प्रणाम किया। बैठिए-बैठिए क्यों इतना कष्ट कर रहे हैं कहकर संझले सरकार ने उनके उठे हुए हाथों को अपने हाथों में लेकर उन्हें बैठने को वाध्य किया। दोनों की आँखें डब-डबा आईं। मौन वाता वरण को भंग करते हुए काका जी बोले—आखिर आप आही गये न ? पत्र पढ़कर उत्तर न देना तो आप का स्वभाव धर्म है। पर चलो बड़ी कृपा की आपने दर्शन तो मिलगये।

सरकार ! ऐसी बात तो नहीं। पर आप जानते ही हैं कि मैं प्राय: बीमार ही रहता हूँ। और फिर इधर-उधर की यात्रा तो मेरे लिए बड़ी व्यथा जनक हो जाती है।

पड़े-पड़े सिगरेट फूँकने की आदत जिन्हें पड़ जाती है, उन्हें कहीं जाना ऐसे ही लगने लगता है। हाँ तो घर में सब आनन्द तो है। लड़कियाँ क्यों नहीं आईं साथ में ?

सरकार उनकी माँ की तबियत कुछ ठीक नहीं थी इसलिए.........

रहने दीजिए लाल साहब आपकी टालू आदत जायेगी नहीं, "खैर चालिए जहाँ काकी साहिबा बैठी हैं वहीं चल कर बातें की जायँ," कहकर दोनों वहीं चले गये।

प्रणाम का उत्तर देती हुई काकी साहिबा बोलीं—मैं समझती हूँ आप अधिक आलसी होते चले जा रहे हैं, अरे और तो और रहा आपको तो लड़कियों की भी चिन्ता नहीं रही, आखिर उनकी उम्र भी तो बीती जा रही है।

सरकार! लड़कियाँ तो हजूर की ही हैं। आपके होते हुए मुझे कौन चिन्ता। कृतज्ञता का भाव प्रकट करते हुए लाल साहब बोले। संझले साहब ने उनके स्वच्छ हृदय और निश्छल भाव को परखते हुए कहा—इसीलिए तो मैं आपसे कई बार कह चुका हूं कि लड़कियों को हमारे पास रहने दो। शहर में रहकर कुछ पढ़लिख भी जाएँगी और कुछ व्यवहार पटु भी हो जाएँगी। पर आप हैं कि सुनते ही नहीं। मानो हमारा उन पर कोई अधिकार ही नहीं। काका जी के शब्दों में ममत्व था।

काकी साहिबा बोलीं—यदि बड़ी बिटिया की शादी कर देती तो बाकी लड़कियों को लाकर अपने ही पास रख लेती, आज कल तबियत भी ठीक नहीं रहती, पास में रहेंगी तो जी लगा रहेगा।

लाल साहब हम सब एक ही स्थान पर एक साथ रहते तो कितना अच्छा होता। हाँ लाल साहब प्रसंग वश एक बात याद आ गई, आज शाम को जिस काम के लिए आपको बुलाया है उसे भी पूरा करना है। लड़का देखकर बड़ी बिटिया का सम्बन्ध तय कर डालना है। मेरा विचार है लड़के के चाचा से मिलकर दहेज की अधिक अड़चन न पड़ेगी। लाल साहब बोले—काकी जी आपने तो लड़का देख ही लिया होगा। स्वभाव का अच्छा चाहिए फिर और क्या देखना है।

लड़का बड़ा ही योग्य, सुशील और नई विचारधारा का है। काकी साहबा बोल ही रही थीं कि काका जी बोले—ऐसा लड़का मिलना कठिन है। लड़का अपने ही अधिकार में है। उसके चाचा को हम भली

भाँति जानते हैं। बेचारों ने पिता के मर जाने पर उसे सगे पुत्र की भाँति पाला है।

पर लड़की क्या उसे पसन्द आ जायगी ?

क्यों नहीं, पटना में जो चित्र खींचा गया था वह हमारे पास था, उसे दिखा दिया। लड़के को लड़की पसन्द आ गई। कहता था गृहस्थी के भार को संभाल ले बस। काका जी ने विश्वास भरी मुद्रा में कहा और उठकर वे अपने आफिस में आकर कुछ आवश्यक पत्र लिखने लगे। काकी साहिबा से आज्ञा पाकर लाल साहब भी स्नानादि कार्य करने गये।

दिन ढल गया था। सूर्य अपनी बिखरी किरणों को समेट कर दिन भर का थका हुआ धीरे-धीरे पश्चिम को ओर बढ़ रहा था, आसमान पर लाली छाई हुई थी, शनैः शनैः संसार एक काली चादर ओढ़ कर विश्राम की तैयारी करने लगा। कोठी के प्रत्येक प्रकोष्ठ के अन्धकारपूर्ण हृदय को आलोक ने आलोकित कर दिया था। नौकर कुत्तों को घुमा के लाकर उनके शयन के प्रबन्ध में व्यस्त था। लाल साहब बाहर विस्तृत हरे-भरे लान में बैठकर आसमान के तारे गिन रहे थे। सहसा मोटर के आने का शब्द हुआ। लाल साहब सतर्क हो गये। मोटर से उतरते ही काका जी बोले—क्षमा चाहता हूँ। कुछ कार्यवश बाहर चला गया था। आने में देर हो गई। क्या करूँ कभी-कभी ऐसे झंझट के काम आ जाते हैं कि जी ऊब जाता है। चलिए भीतर चलें—

घूमते ही उनकी दृष्टि दालान में बैठे हुए शंकर शरण सिंह पर पड़ी। "हलो ! शंकर तुम आगये ! ठीक हुआ—चलो भीतर चलो वहीं पर बातें होंगी।" कह कर वे सबको लेकर भीतर चले गये। भीतर पहले से ही परिवार के कुछ व्यक्ति बैठ हुए थे। जिनकी पारिवारिक चर्चा चल रही थी। भीतर पहुंचते ही लाल साहब से शंकर बाबू का परिचय कराते ही काकी साहिबा की ओर से शादी की चर्चा भी चल पड़ी। शंकर बाबू राजी होगये पर व्यवहार के लिए उनके चाचा बाबू

तारकेश्वर सिंह से बात करनी शेष रह गई। काका जी भी जानते थे कि तारकेश्वर सिंह जिद्दी भी बहुत हैं। यदि बात समझ में न बैठी तो उन्हें समझाना उतना ही कठिन हो जाता है जितना बिगड़े हाथी को मनाना। किन्तु उन पर अपने किये गये उपकारों का स्मरण आते ही उन्हें कुछ विश्वास हुआ कि वे इतने रूखे तो नहीं बनेंगे। यह सोचकर उन्हें तार दे दिया गया। वार्ता यहीं पर रुक गई।

लाल साहब को अपना भार हल्का सा प्रतीत हुआ पर अन्तिम निर्णय तारक बाबू पर निर्भर था—कहीं वे राजी न हुए तो ? पर जब दूसरे दिन तारक बाबू के आने पर स्वीकृति मिल गई तो लाल साहब उसी भाँति प्रसन्न हुए जैसे "परम रंक जिमि सम्पति पाये।" माघ में शादी का निश्चय हुआ। शादी लखनऊ से ही होगी यह वचन देकर लाल साहब ने भी दूसरे दिन घर जाने की आज्ञा माँगी। उन्हें अब अपनी स्त्री का भय सताने लगा था। बिना उनसे पूछे ही सब कुछ ठीक कर बैठा, न जाने वे क्या कहेंगी पर काकी जी की बात है वे निपट लेंगी सोचकर वे शान्त रहे।

सम्बन्धियों से विदा लेकर जब वे चले तो गाड़ी पर बैठे-बैठे सोचने लगे। काका जी बचपन से ही कितने दयालु और परोपकारी हैं। जब छोटे थे, पढ़ने जाते थे तो अपने वस्त्र तक निर्धनों को दे दिया करते थे। जमींदारी से उन्हें दिलचस्प ईं। कसरत करने, घोड़े पर चढ़ने, तैरने का शौक क्या कम है इनको ? अब तो दान देने का और कुत्ते पालने का शौक इनका अधिक बढ़ता जा रहा है। द्रव्य की शोभा दान में ही है। न जाने कितने व्यक्ति इनसे परवरिश पा रहे हैं। भगवान् ने कितना सुन्दर स्वभाव दिया है इनको ! भाइयों के प्रेम का तो कहना ही क्या है। आज के युग में ऐसे आदर्श भाई का होना बड़ा कठिन है। परिवार और नातेदारों के लिए तो प्राण तक देने में भी नहीं हिचकते। हमी से कितना प्रेम निभ े जा रहे हैं। मेरे बच्चों को तो कभी इन्होंने पराया समझा ह. .हीं। काका जी आदमी के रूप में देवता हैं। किसी योग-भ्रष्ट की आत्मा जान पड़ते हैं। कितने उदार

और सुलझे हुए विचार के हैं काका जी ! लोग कहते हैं पूर्व जन्म की विद्या, धन और स्त्री ये बड़े भाग्य से इस जन्म में भी उसी रूप में मिल जाते हैं। काकी जी भी कोई देवी ही मनुष्य जन्म लेकर आई हैं। क्या जोड़ी मिलाई है भगवान् ने ! ऐसा सुन्दर समागम कम देखने क मिलता है। इन पर भी यह बात घटित होती है कि यथा तन तथा मन। यथा आकृति तथा बुद्धि और यथा बुद्धि तथा कार्य।

यही शब्द जब मैंने काकी जी के सामने कहे थे तो वे बोलीं—

आप तो खानदानी चापलूस हैं न। उनके इन शब्दों में कितना वात्सल्य और ममता भरी थी। बाहर से रौद्ररूप पर अन्तर जननी का है उनका। जब बिटिया के ब्याह की चर्चा चली थी तब उन्होंने निर्व्याज भाव से कहा था - भला हम हैं किस योग्य, जो कुछ प्रभु ने दिया है उसका भी समुचित प्रयोग नहीं कर सकते। जी तो बहुत कुछ चाहता है पर जमाना बुरा आगया है। अपने पराये का दुःख देखा नहीं जाता। खैर हाँ, लाल साहब अब के आप के गाँव अवश्य चलूंगी। बड़ा अच्छा लगता है मुझे आपका गाँव। और मैं ? मैंने झूठे मुंहभी उनसे नहीं कहा कि क्या आप गाँव चलेंगी। अहा ! उनका मातृ स्नेह तो बड़ा धैर्य देता है, सोचते-सोचते लाल साहब की आँखें डब-डबा आईं और वे विचारों में लीन रहे। शाम होते-होते वे अपने घर पहुँच गये।

❀ ❀ ❀

रात्रि का वैभव उसी भाँति विलीन होता जा रहा था जैसे अन्याय से उपार्जित करने वाले धनी का धन। तारिकावली उसी प्रकार कान्ति-हीन होती जा रही थी जैसे स्वार्थ वश किया हुआ किसी प्रपञ्ची रमणी का स्नेह। निशाको विदाई देकर धरती निश्चेत पड़ी थी, उसकी धूमिल आवृति के कुहासे को हटाने के लिये सूर्य अपने करों को आगे बढ़ा रहा था। लता वल्लरियों से लिपटे पादप भी निशा वियोग पर आँसू बहा रहे थे। खगकुल का कलरव रुदन ध्वनि का काम कर रहा था। प्रकाश की विजयवाहिनी जय भेरी बजाने को उद्यत थी, समीरण इस समाचार की सूचना देने के लिये मानो तीव्रगति से चलने लगा था। गाँव के लोग

अपने-अपने दैनिक कार्य की तैय्यारी में संलग्न होने को उद्यत थे, सुमन अब भी दीपक के धुंधले प्रकाश में मास्टर साहब के कल दिये हुए पाठ पर आँखें गड़ाए थी। सहसा खुली हुई खिड़की से आकर वायु ने दीपक की जीवन लीला समाप्त करदी। वह उद्विग्न होकर खिड़की की ओर मुँह करके सूर्य-प्रकाश की प्रतीक्षा करने लगी। उसके खुले हुए बालों से वायु खेल रही थी। आँखें मल-मल कर वह पाठ की ओर देख रही थी पर दिखाई कुछ न देता था। पुस्तक बन्द करके वह तकिये का सहारा लेकर लेट गई। लेटे-लेटे उसे अपनी सहेली सुलोचना की बातें याद आने लगीं। सुलोचना का विवाह हो गया। वह भी तो अधिक पढ़ी-लिखी नहीं है। पर कितने ध्यान से पढ़ रही थी वह अपने पतिदेव का पत्र?

अबतो वह पहिले से अधिक सुखी जान पड़ती है। वह कह रही थी—सुमन! मैं उन्हें उतना प्यार न कर सकी जितना वे करते हैं?

उसके हृदय में एक प्रकार की सिहरन सी हुई। वह उठ कर बैठ गई, सुलोचना से दोपहर में उसके पति की बातें पूछूँगी सोचकर वह फिर पुस्तक खोल कर देखने लगी। निगोड़ा पाठ याद भी तो नहीं होता, मास्टर साहब भी अजीब आदमी हैं। पोथी की पोथी रटने को कहते हैं। कहते हैं कविता याद न हुई तो अर्थ नहीं समझाऊँगा। चलूं फिर की फिर सही। देखूं दीदी क्या कर रही है। पास वाले कमरे में दीदी भी कुछ पढ़ रही थी, सुमन ने उस की किताब उठा कर फेंक दी और खिलखिला कर हंसने लगी।

उसकी हंसी में दीदी की पराजय का भाव निहित था। दीदी बिगड़ पड़ी। सुमन ने दीदी के दोनों कन्धे झकझोर कर उसे बैठा दिया। दीदी बोली इतनी बड़ी होगई है न जाने कब अक्ल आयेगी इसे। कैसे निभेगा इसका जीवन आगे। पढ़ने में जी नहीं लगता और पढ़ना भी चाहती है, तभी तो माँ की फटकार सुनती रहती है। चल यहाँ से हट नहीं तो माँ को बुलाती हूँ। सुमन दीदी की ओर देख कर बोली—दीदी चलोगी आज सुलोचना के यहाँ? तूही जा मैं नहीं जाती कहीं। काम न काज तुम्हें तो घूमने से फुरसत ही नहीं—पढ़ाई का तो एक ढोंग

रच रही हो। दीदी की बात सुनकर सुमन का चेहरा तमतमा उठा और वह बड़बड़ाती हुई चली गई।

सुमन के चले जाने पर दीदी स्वयं सोचने लगी कि सुलोचना मुझसे एक वर्ष की छोटी है। उसकी शादी होगई है, उसके माँ बाप उसके बोझे से छुट्टी पागये, हमारे लिये तो निर्धनता शाप बन गई। कहने को सारी दुनिया कहती है पर बिना रुपये के किसी का भी काम नहीं चलता। आज के युग में वही सब कुछ है जिसके पास धन है। निर्धन की पूछ ही कौन करता है—उसे अपने जीवन पर ग्लानि होने लगी। पैसा-पैसा जहाँ देखो पैसा। व्याह भी तभी हो सकता है जब पैसा हो—धत्तेरे पैसे की! सोचती हुई वह अपने दैनिक कार्य में व्यस्त होगई। कुछ ही क्षण पश्चात् लाल साहब जब अपनी लड़कियों के पास गये तो उनकी स्थिति उस विजयी योधा के समान थी जो युद्ध-स्थल से विजयी हो कर पुरस्कार प्राप्ति का विश्वास लिए हो। दोनों लड़कियों का माथा चूम कर पीठ सहलाते हुए लाल साहब बोले—पढ़ाई ठीक चल रही है न बेटा?

हाँ पिता जी, पर आपने आने में क्यों देर की? लाल साहब बोले—बेटा काम ही ऐसा था जिसमें देर लग गई। लो तुम्हारी माँ भी पूजा समाप्त करके आगईं। जाओ तुम लोग अपने कमरे में बैठो। लाल साहब के समीप में ही बैठती हुई उनकी स्त्री बोली—तो लखनऊ के काम में आप सफल रहे? हाँ भगवान शंकर की दया से काम तो ठीक होगया। लड़का सुन्दर और स्वस्थ है। सर्विस पर लगा है। बात पक्की हो गई। तुम्हारी राय लेने की बात आने पर काकी साहिबा बोलीं उनकी मेरी एक राय है चिन्ता न करें। अब अगले महीने वरीछा करनी बाकी रहगई है। क्या करूँ तुम्हारी राय न ले सका, सोचा फिर लड़का मिले न मिले।

सुमन की माँ बोली ठीक ही तो किया। बड़ों की बात को भी तो रखना ही था। वे हमारे कितने हितैषी हैं क्या हम लोग नहीं जानते?

पर तिलक में क्या देना पड़े गा?

तिलक में पाँच सौ से कम में काम चल जायगा काका जी कहते थे। और उसका प्रबन्ध काकी जी करेंगी उन्हीं ने कहा।

अपनी दशा को देखते हुए और किया भी क्या जा सकता है ? इस समय तो निर्लज्ज होना ही पड़ेगा। गरीबी जो न करवा दे। अपनी हेठी कौन चाहता है। पर निर्धनता जो न करवादे—कहते हुए सुमन की माँ के आँसू आगये। लाल साहब का हृदय भी पिघल आया। वे स्नान करने का बहाना बनाकर चले गये और अपने कमरे में जाकर ही उन्हों ने अपनी बेवशी के दो आँसू सबकी नजर बचाकर चुपके से पोंछ लिए।

माता पिता की जो बातें हुई थीं उन्हें दोनों बहिनें सुन चुकी थीं। तिलक में पांच सौ देने पड़ेंगे तो दहेज कितने का होगा और कहां से दिया जायगा दीदी के मन को इन विचारों ने व्यथित कर दिया। उसने सोचा हम पैदा ही न होतीं या पैदा होते ही मर जातीं तो कौन सी हानि होती भगवान् की। इस दशा से तो मौत ही अच्छी थी। वह रोने लगी। सुमन ने पूछा—दीदी तू रो क्यों रही है ?

वह बोली—सुमन ! पिताजी के पास इतने रुपये कहां से आयेंगे, अभी और बहिनें भी तो हैं। पांच सौ—सुना नहीं—तिलक में ही देने होंगे। दहेज में न जाने कितने मांगे जाते हैं। और खर्चा भी तो करना पड़ेगा। भैय्या की तनख्वाह तो खाने भर को भी नहीं होती? फार्म पर कुछ आमदनी होती वह भी झगड़े में पड़ा है। कर्जा भी लिया त। फिर पिताजी देंगे कहां से ? लोक निन्दा का डर न होता, पिता जी की इज्जत का ध्यान न होता तो मैं तो पढ़लिख कर कोई छोटी मोटी नौकरी करके जीवन बिता देती पर इस प्रकार की शादी कभी न करती। पर दुनिया ऐसे भी तो नहीं सह सकेगी। "सुमन ! जी चहता है कि आत्महत्या कर डालूँ पर ऐसा भी तो नहीं कर पा रही हूँ।" कह कर वह नीचा सिर कर के बैठी रही जैसे दांव हारा हुआ जुवारी। सुमन बोली—दीदी दुनिया की ऐसी की तैसी, हम शादी न करेंगी तो कोई हमसे क्या कहेगा ? कहाँ तक दूसरों के कहने पर अपना जी जलाएँ ?

मधुर शब्दों में उसे समझाती हुई दीदी बोली—जाति बिरादरी में रहकर तो अपनी ही बिरादरी में शादी करनी होगी, और अवश्य ही। तालुकेदारी न जाती तो ये दिन क्यों देखने पड़ते। पर हम भाग्य की भी तो बड़ी भली बनकर आई हैं न। न जाने हमारे जैसी कितनी लड़कियों का जीवन नष्ट हो रहा होगा। दहेज का विरोध हो रहा है पर यह टी० बी० की तरह समाज की नश-नश को विषाक्त कर रहा है। डींगे बहुत मारी जाती हैं पर होता कुछ भी नहीं। सुना नहीं तूने गोबर्धन काका ने अपने लड़के के ब्याह में खुले आम कह दिया था कि मैं एक पैसा भी लड़की वालों से न लूंगा पर गुप्तरूप में दस हजार लिए हैं। बेचारे लड़की वालों का घर भी गिरवी चला गया। और सुलोचना के पिता जी को भी तो खेत बेचने पड़े थे। तू क्या समझेगी इन बातों को, जा खाना खा और माँ से कह देना दीदी की तबियत ठीक नहीं है वह खाना नहीं खायेगी।

सुमन रुआसी सी होकर माँ के पास गई और दीदी के खाना न खाने की बात कहने लगी।

क्या हो गया उसे—जब देखो तब कुछ न कुछ अपनी ही लगाये रहती है। आज बाबू से उसकी शिकायत किये बिना न रहूँगी। जा पूछ तो उससे क्यों नहीं खायेगी।

सुमन ने जब सारी बात बता दी तब माँ भी दीदी के पास जाकर उसे समझाने लगी। मेरी लाडली! तू क्यों चिन्ता करती है? तुम लोगों को सुखी देखने के लिए तो हमें भी बिकना पड़े तो हमें दुख न होगा। अपनी सन्तान के लिए माँ बाप क्या नहीं करते? जा नहा-धो ले, कह कर माँ बेटी को छाती से लगा कर रोने लगी। फिर उसे ले जाकर नाश्ता कराया और बोली—जबतक काकाजी काको जी हमारे सिर पर हैं हमें चिन्ता किस बात की? तुम लोगों की खेलने-खाने की उम्र है कि चिन्ता करने की? माँ का चित्त उसे समझाते हुए अपने आप अधीर हो रहा था। अपनी दशा का घिनौना चित्र देखकर वे भी विचलित सी हो उठीं।

सुमन सुलोचना की प्यार भरी बातों के स्वर्ग लोक में विचरण कर रही थी। उसकी मोहक कल्पना के पंख लगे थे। प्यार-प्रेम-शादी की

उल्लास भरी बातें उसको किसी और लोक में लेगईं थीं, सुलोचना का जीवन कितना सुखी है ! दीदी की भी शादी होने पर ऐसी खुशी तो रहेगी, और झुनिया—उसने मुझे अपना किस्सा सुनाया तो कहती थी—शादी होने पर मैं सुखी थी पर पति की मृत्यु होने से उसे नौकरानी का काम करना पड़ रहा है। घर वाले बोले चुड़ैल ने आते ही अपने मर्द को खा लिया। उसे निकाल दिया उन्हों ने घर से। सुमन विचारों के जाल में उलझी जा रही थी, दिनभर वह इसी उधेड़ बुन में रही। सायं काल मास्टर साहब के आने पर दोनों बहिनें पढ़ने बैठ गईं, दोनों की मुखमुद्रा पर खिन्नता खेल रही थी। मास्टर साहब ने पूछा—क्या कल का पाठ याद हो गया ? दोनों मौन रहीं ; "सुमन ! कल की कविता जो याद करने को दी थी सुनाओ" मास्टर साहब ने कुछ रूखेपन से कहा।

सुमन सुनाने लगी—

> किया शम्भु ने भस्म काम तब रति थी आई,
> आंखों में पावस की सी थी घटा समाई।
> उधर हुई थी भंग सती की दृढ़ अभिलाषा,
> उथल पुथल होगई भाग्य का पलटा पाशा॥

कविता सुनाने के पश्चात् वह बोली—मास्टर साहब ! काम कौन था और शम्भु ने उसे क्यों जलाया ? उसके जलने पर रति क्यों रोई और सती की क्या आशा थी जो भंग हुई।

मास्टर साहब बोले—सुमन ! काम सुन्दरता का राजा है, रति सुन्दरता की देवी। ये आपस में पति पत्नी हैं, काम सब के शरीर में रहता है। सब को तंग करता है, उसने जब शिव को भी तंग करना चाहा तो उन्हों ने उसे जला दिया।

तो क्या मास्टर साहब ! आपको भी काम तंग करता है ? क्या वह लड़कियों को भी सताता है ? तब तो वह देवता नहीं कोई भूत प्रेत होगा। मुझे तो भूत से बहुत डर लगता है। कहीं उस मुझे भी तंग किया तो ?

मास्टर साहब कैसे उसे समझाते ? वे उल्टा सीधा समझा कर कुछ देर इधर-उधर का पाठ पढ़ाकर घर चले गये।

सुमन के मन में काम की भांति भांति की कल्पित मूर्तियाँ बनने लगीं; वह सोते समय झुनिया के पास गई और बोली—झुनिया काम क्या है ? वह क्यों सताता है लोगों को ?

उसके भोलेपन पर हंसते हुए झुनिया ने काम की सारी करामात का कच्चा चिट्ठा उसके सामने खोलना प्रारम्भ कर दिया और अन्त में यह भी बता दिया कि काम को शान्त करने के लिए ही शादी की जाती है। जैसे शंकर पार्वती की।

उसने झुनिया से पूछा—झुनिया तेरी शादी कैसे हुई थी ?

राजा भैया क्या करोगी पूछकर ? मेरा सारा जीवन ही दुखी है। शादी हुए दो साल भी न हो पाये थे कि काल ने अपने क्रूर हाथों से मेरे माथे के सिंदूर को पोंछ डाला। बस अब अपना किस्सा तुम्हें सुनाऊँगी। तुम्हारे सुनने लायक बात भी नहीं, और कुछ पूछो तो बताऊँ।

नहीं झुनिया कुछ भी हो तुम्हें बताना ही पड़ेगा। लेटे-लेटे निगोड़ी रात कटती रहेगी, जाने आज नींद भी क्यों नहीं आ रही है ?

❀ ❀ ❀

सुमन के आग्रह पर झुनिया ने कहना प्रारम्भ किया—

मैं १६ वर्ष की थी, मेरे गाँव से बीस कोस पर मेरा ननिहाल था। मैं एक बार अपनी माँ के साथ वहाँ गई थी। मामा मामी मुझे बहुत चाहते थे। मैं मामा के पास ही रहने लगी। गाँव के समीप ही एक नदी थी। हमारे यहाँ पर्दा तो था नहीं। मैं गांव के अन्य बालक बालिकाओं के साथ नदी नहाने जाती। वहाँ खूब खेलते थे। शाम को महुआ, मौलसरी, कमरख खाने के लिए ठाकुर साहब के बगीचे में जाया करते थे। गाँव में इसी तरह समय बीत जाता था। इसी बीच मेरी जान पहिचान गांव के एक भले आदमी के लड़के से हो गई। उसका नाम था मनोहर। हट्टा-कट्टा सुन्दर शरीर का नौजवान था वह। वह पहिले मुझे

घूर-घूर कर देखता रहा, फिर वह कोई न कोई बहाना बनाकर मामा के घर पर भी आने लगा । उसे देखकर मेरे मन में न जाने क्यों ऐसी धारणा होने लगी कि इससे बोलूँ । उससे बोलने का जी चाहता पर बोलती कैसे कहीं मामा डाट देते तो ? पर सुमन भैय्या जो हाल मेरा था वही हाल उसका भी था ।

एक दिन मैं दोपहर में घड़ा उठा कर पानी भरने चली, मामी बोली साँझ को जाती, इस समय क्यों जा रही है । मैं मामी को राजी कर चली ही गई । मैंने सोचा था वह वहाँ अवश्य आएगा और हुआ भी ऐसा ही । वह अपने घोड़े को नहलाने वहाँ आया था । मैं उसे देखकर खुश हुई पर सहम गई—होनहार की बात—उसने समीप आकर कहा, "तुम्हारा नाम? तुम कब तक यहाँ रहोगी ?" मैं चुप रही ।

न बोलना चाहो तो न बोलूँगा—मन तुमसे बोलने को हुआ इसी लिए बोल रहा हूँ । मुझे उचक्का या बुरा न समझना ।

मैंने आँख उठाकर साहस करके एक बार उसकी आँखों को देखा शरीर में एक प्रकार की सिहरन सी हो उठी । फिर आँख मिलाने की हिम्मत न हुई, घड़ा भरकर मैं चलने का बहाना करने लगी ।

नहीं बोलोगी ?

क्या बोलूँ ? क्यों तुम इस तरह मेरे पीछे पड़े हो ? क्यों देखते हो तुम मुझे घूर घूर कर ?

नाराज हो गई हो ? अच्छा अब कभी तुम मुझे इस तरह न देखोगी कहकर वह अपने घोड़े की लगाम पकड़ कर चलने लगा । मुझ से न रहा गया । जाने कैसे आई मुझ में हिम्मत—घाट बाट पर बातें करते अच्छा नहीं लगता कोई देख लेगा तो ?

कल कमरख खाने नहीं आओगी ?

आऊँगी । तुम्हारी बला से—कह कर मैं अधिक समय न होजाय इस डर से जल्दी जल्दी पैर बढ़ाकर घर चली आई ।

इसी बीच मेरे मन में जाने क्या-क्या विचार उठे। कभी तो ऐसा भय लगा कि मानो पाप का सारा बोझा मेरे ही सर पर रख दिया गया, और कभी न जाने दिल में एक प्रकार की गुदगुदी सी मचने लगी।

सुमन बोली—तो तूने उससे मिलने को हाँ ना कुछ भी क्यों नहीं कहा ?

राजा भैय्या ! जाने मैं कैसे हाँ कह बैठी। पर साथ के बालक बालिकाओं के साथ रहने पर बातें भी तो नहीं हो सकेंगी, और बातें क्या हों ? कहने को जी करता है पर मुँह खुलता ही नहीं, सोचते सोचते वह समय भी आ गया जब मुझे बगीचे में जाना था।

साथ के बच्चों को इधर उधर बहका कर मैं बगीचे के उसी भाग की ओर जा पहुँची जो सघन छायादार था। वहाँ वह पहिले से ही बैठा था, उसने संकेत किया और मैं नट के वशीभूत नागिनी की भाँति बिना संकोच केउसके पास चली गई। मैं जा भी रही थी और काँप भी रही थी। उसने धीरे से कहा—तुम मुझे जाने क्यों अच्छी लगती हो। मैंने कहा "क्यों ?" और हम दोनों की आँखें एक दूसरे की आँखों में समा गई थीं। कुछ क्षण तक हम उसी स्थिति में रहे। फिर उसने मेरे हाथ को अपने हाथमें लेते हुए कहा—कल यहीं पर मिलना, मिलोगी न ? हाँ कह कर मैं दौड़ती हुई साथ के बालकों के साथ हो ली। अब हमारा नित्य का मिलन होने लगा।

धीरे-धीरे समय बीतता गया। एक दिन मेरा भाई घर से मुझे लेने को आ पहुँचा। दो-चार दिन में ही मुझे अपने घर चला जाना था। मैं एक दिन चुपके से उससे मिलने को गई। मेरे जाने की बात सुनकर उसकी और मेरी ऐसी दशा हो गई थी मानो किसी ने हमारा सब कुछ छीन लिया हो। पर कुछ ढाढ़स बांध कर कल मिलने की आशा लगाये रहे। पर राजा भैय्या ! दुर्भाग्य जब किसी का पीछा करता है तो पिण्ड नहीं छोड़ता। जो हमारा मिलने का समय था ठीक उसी समय मामा ने सुनाया—आज अपने गांव में मनोहर को भवानी आ गई है। बेचारा

गाँव का सब से भला लड़का था। बड़ा मिलनसार और सब का हमदर्द; पर बेचारे का सारा शरीर बड़े बड़े दानों से बुरी तरह भर गया है। तिल धरने को भी स्थान नहीं। सुनते ही मुझे तो मूर्छा सी आने लगी पर मन को मजबूत किये रही। शाम को बगीचे में गई। उसे वहाँ पर न पाकर दो आँसू टपका कर चली आई। अब मेरे जाने का एक दिन बाकी था, बेचैनी बढ़ती जा रही थी। सुबह होते ही एक काली बिल्ली ने रो-रो कर सारे गाँव को परेशानकर दिया। सुमन भैय्या! मेरे मन का पाप—मैंने सोचा अब मनोहर न बचेगा उसी के लिए यह अपशकुन हो रहा है। मैं रो पड़ी। भैय्या ने पूछा—क्यों रोती है? "क्या घर जाने का जी नहीं चाहता? लग गई मामा की रोटियाँ?"कहकर मुझे चिढ़ाने लगे। मैं सिर दर्द का बहाना बनाकर वहां से हट गई। जरा ही देर में आवाज आई—नगेसर चाचा! ओ नगेसर चाचा! मनोहर दादा चल बसे! हाय राम! सुनते ही मैं धम से धरती पर गिर पड़ी। भैय्या मुझे उठाकर कब भीतर ले गये यह मुझे नहीं मालूम। पर इतना जानती हूँ कि मामा कह रहे थे इसे फिट आने लगे हैं। जरा-जरा सी देर में बेहोश हो जाती है।

चार घन्टे बाद मुझे होश आया।

इधर मनोहर के जीवन का दिया बुझ चुका था और मैं भी घर जाने को तैयार हो गई। घर आकर भी जब कभी मनोहर का ध्यान आजाता तो मैं मूर्छित हो जाती थी, घरवालों को वहम था मुझे फिट आने की बीमारी हो गई।

एक साल बाद ओह! उस घटना को याद करते ही तो मैं पुरुष जाति से घृणा करने लगी हूँ। अच्छा सुमन भैय्या सोजाइए, रात बहुत हो गई। सुमन को भी झपकियाँ आने लगीं थीं, अतः वह भी सोने को राजी होगई। पर फिर कल पूरी बात सुनूंगी उसने झुनिया से वादा करवा लिया था।

सुमन अब नित्य ही रात्रि में झुनिया की बातें सुना करती थी, उसमें उसे बड़ा आनन्द आने लगा। उसके हृदय में इन बातों के अंकुर पनपने लगे। परन्तु पढ़ाई पर उसका ध्यान बराबर लगा रहता था। वह मास्टर जी से

भांति-भांति के प्रश्न करती। मास्टर जी यथाशक्ति उत्तर देते ; पर उसकी बलवती जिज्ञासा शान्त नहीं होती थी। समय बीतता चला गया। कुछ दिन बाद लाल साहब भी तिलक की रश्म अदा करने को लखनऊ जाने की तैयारी करने लगे।

❀ ❀ ❀

रात को आसमान में हल्के बादल दिखाई दिये। धीरे-धीरे आकाश की छाती पर अनेक काले मेघ चढ़ आये। वायु ने आकाश की सहायता के लिए भरसक चेष्टा की पर मेघों के सामने उसकी एक न चली। कुछ समय तक आँधी तूफान ने बल दिखाया पर वे भी विफल रहे। आकाश मेघों के आक्रमण को न सहकर रोने लगा। उसके रोने में एक प्रकार की विवशता थी, थोड़ी ही देर में धरती पर पानी ही पानी दिखाई देने लगा, धरा वासियों पर इन्द्र का प्रकोप अपनी पराकाष्ठा पर था। सुमन ने धीरे से खिड़की खोलकर बाहर झांका। पानी की एक बौछार ने मानो उसके मुँह पर एक हल्का सा चाँटा जमा दिया। वह खिड़की बन्द करके बैठ गई। झुनिया की बात पर वह सोचने लगी- बाहर से तो वह सुखी जान पड़ती है पर भीतर ही भीतर उसका मन अवश्य रोता रहता होगा। दीदी को सहसा अपने पास आया देखकर वह उठ कर बैठ गई। वह दीदी से बोली—दीदी ! बाबू जी लखनऊ जाने को तैयार हैं पर पानी तो रुकना ही नहीं, ऐसे में कैसे जाना होगा ?

जाना तो पड़ेगा ही सुमन ! तिलक का मुहूर्त टल तो सकता नहीं। हाँ पर बाबू जी को ठंड लगने का डर है। सुमन ! तुमने सुना कल माँ क्या कह रही थी ? तिलक में सोने के कड़े देने का विचार है ; पर जानती है कड़े किसके हैं ?

माँ के ही तो हैं कड़े ?

पर अब तो वे भी घर से बाहर चले जायेंगे, वह झुंझलाकर बोली— "आग लगे ऐसी तकदीर को, न हम होते न माँ बाप को ये दिन देखने को मिलते। जमींदारी भी छिन गई हमारे दुर्भाग्य से" कह कर उसने ऐसी गहरी साँस ली जैसे उसकी छाती पर कोई बोझा रखा हो।

बाहर पानी अपनी भीषणता को धारण किये था और भीतर दीदी की आँखें उसे शादी दुखद जान पड़ रही थी। यद्यपि उनकी परिस्थिति इतनी गिरी नहीं थी जितना वह समझ रही थी; फिर भी उसे अपनी स्थिति का बाहरी ज्ञान तो था ही। वास्तव में स्त्रियों में एक गुण होता है कि वे आपत्ति के लिए कुछ न कुछ बचा कर रख ही लेती हैं, सुमन की माँ ने भी ऐसा ही कुछ कर रखा था। इसका पता किसी को भी न था। वह सुमन से बोली—अभी तो एक की ही शादी का श्रीगणेश हुआ है औरों के लिए न जाने क्या-क्या करना पड़ेगा बाबू जी को ? बातें समाप्त भी न हो पाई थीं कि झुनिया आकर कह गई कि सरकार बुला रहे हैं। दोनों बहिनें तुरन्त ही उठकर बाबू जी के पास चल दीं।

लाल साहब बोले—"सुमन तुम्हे भी मेरे साथ चलना होगा, देखता हूँ पानी बरसना बन्द नहीं होगा पर जाना तो पड़ेगा ही। काम ही ऐसा है। तुम्हें भी साथले जाने का विचार कर रहा हूँ। मुझे यात्रा करने में बड़ा कष्ट होता है इसी लिए तुम्हें साथ ले रहा हूँ। तुम अपनी तैयारी कर लेना। और कुसुम तुम भी सुनलो, यदि मेरे आने में देर हो गई तो घबराना नहीं, जैसा पत्र भेजूँ उसका वैसा ही उत्तर देना," कह कर लाल साहब उठे और शयन कक्ष में चले गये।

दोनों बहिनें भी जाकर सोने की चेष्टा करने लगीं पर नींद किसी को भी न आई। सुमन लखनऊ के दृश्यों में उलझी थी और कुसुम के सामने अपने ही गाँव के दम्पतियों के सुख-दुख के चित्र थे, जो दुख भरी पलकों के धूमिल कुहासे में अस्पष्ट थे।

जैसे तैसे . रात कटी, वर्षा का वेग अणुमात्र भी ढीला न था। घर में प्रस्थान की तैयारी हो रही थी, सुमन भी तैयार हो गई। बैलगाड़ी को गोवरधन पहिले ही तैयार कर चुका था, पानी के बचाव के लिए उसके ऊपर एक त्रिपाल डाला गया था पर पानी उसका अवरोध सहने को तैयार न था। बाप बेटी अपने-अपने छाते संभाल कर गाड़ी पर बैठ गये। बैलगाड़ी पानी में छप-छपाहट करती हुई धचके खाती हुई चल पड़ी। स्टेशन पहुँचने पर सुमन के पिता जी टिकट लेने के लिए

क्यू में खड़े हो गये। सुमन सामान के पास खड़ी रही। वह धानी रंग की साड़ी में बड़ी भली लग रही थी। एक लट घुंघराली कभी-कभी हवा में उड़कर फिर माथे पर आकर लटक जाती थी। भीगे कपड़े बदन से सटे हुए सौंदर्य की वृद्धि कर रहे थे। एक व्यक्ति जो देखने से कॉलेज का छात्र जान पड़ता था सुमन के पास ही खड़े होकर उसे घूरने लगा। सुमन अन्यमनस्क होकर अपने पिता जी की प्रतीक्षा कर रही थी। नवयुवक ने उसे भी कॉलेज की छात्रा समझ कर कुछ पूछने का साहस किया। बोला—आपकहाँ जा रही हैं ?

"लखनऊ तक," सुमन ने अवहेलना से उसके प्रश्न का उत्तर दिया।

क्या आप अकेली ही यात्रा कर रही हैं या साथ में कोई है ? लखनऊ क्या किसी कॉलेज में पढ़ती हैं आप ? नवयुक ने एक ही साथ कई प्रश्न कर डाले।

"अकेली हूँ या दुकेली—आपसे मतलब ? क्यों पूछते हैं आप ? यह आदत ठीक नहीं," कहकर उसने मुँह फेर लिया, उसकी भृकुटियों पर बल पड़ गया।

मैं भी लखनऊ ही जा रहा हूँ। अच्छा है साथ-साथ गाड़ी का सफर—समय आसानी से कट जायगा।

सुमन कुछ न बोली। युवक चले गया। तभी सुमन के पिता जी भी टिकट लेकर आ गये। सुमन की विकृत मुद्रा को देख कर बोले, "क्या है बेटा, ठंड तो नहीं लग रही है ?"

नहीं पिता जी। पर बेहूदे लोगों के कारण यहाँ पर खड़ा होना भी कठिन हो गया। औरतें क्या हो गईं पुरुषों के लिए मानो एक आफत।

किसीने कुछ पूछा होगा—बेटी यह तो स्टेशन है प्रत्येक यात्री दूसरे से कुछ न कुछ पूछ लिया करता है। चलो गाड़ी खड़ी है कह कर वे चल दिये। जब वे बैठ गये तो नवयुवक भी उसी डिब्बे में जाकर बैठ गया। उसे देखते ही सुमन की तेवरियां चढ़ गईं। वह अपने भीगे कपड़े बदल कर पिता जी के पास ही बैठ गई। डिब्बे में उन तीन व्यक्तियों के

और कोई न था पर वे कुछ देर इस प्रकार शान्त रहे मानो गूंगों का समूह हो। युवक की ओर देख कर जरा देर में लाल साहब बोले—श्रीमान् की यात्रा कहाँ तक है ?

लखनऊ जारहा हूँ श्रीमान् ! मुझे वहाँ कल ही पहुँच जाना चाहिए था किन्तु पानी के मारे घर से निकलना ही नहीं हुआ।

आप कहाँ के रहने वाले हैं ? लखनऊ में क्या करते हैं आप ?

रहने वाला तो आजमगढ़ का हूँ। पर बहुत दिनों से लखनऊ में ही रहता हूँ। इस वर्ष एम० ए० कर चुका हूँ, अब लॉ करने का विचार है। आप क्या लखनऊ ही रहते हैं ?

नहीं मैं भी अपने किसी सम्बन्धी के यहाँ किसी विशेष काम से जा रहा हूँ। साथ में यह मेरी छोटी लड़की है।

"क्या नाम है इनका—क्या यह भी कहीं पढ़ती हैं ?" कह कर युवक ने कनखियों से सुमन की ओर देखा।

इसका नाम सुमन है। यह घर पर ही पढ़ती है।

सुमन सोचने लगी—पिता जी क्यों इससे बातें कर रहे हैं। मैं कौन हूँ, क्या करती हूँ, इससे मतलब ? उसने खिड़की की ओर मुँह कर लिया।

गाड़ी अपनी रफ्तार से चल रही थी और उससे भी अधिक तीव्र गति से चल रहा था सुमन का मन। उसने पिता जी की ओर देखा वे झपकियाँ ले रहे थे। सुमन ने ऊपर से कम्बल डाल दिया। डिब्बे में मौन का साम्राज्य था। युवक की दृष्टि का केन्द्र सुमन और सुमन की दृष्टि का केन्द्र बना था बाहर का शून्य। पानी बरस रहा था। बौछार जब भीतर तक आने लगी तो विवश होकर सुमन को खिड़की बन्द कर देनी पड़ी।

इस पानी ने तो कल से नाक में दम कर रखा है। आप हट कर बैठें पानी भीतर भी आ गया है। ठीक किया आपने खिड़की बन्द कर दी। सुमन ने एक बार उसकी ओर देख कर फिर दृष्टि हटा ली।

युवक ने पूछा कहाँ तक पढ़ी हैं आप ?

मैंने कोई परीक्षा नहीं दी ।

तो आप कोई परीक्षा क्यों नहीं देतीं ?

हमारे घर में इसका चलन नहीं है ।

तो क्या आप लोग बिहारी ठाकुर हैं ?

जी हाँ ।

हम भी ठाकुर ही हैं—चौहान । आप कौन ठाकुर हैं ?

सुमन ने बात टालने के लिए कहा—पिताजी कहते हैं हम बघेले हैं ।

आपको पढ़ना अवश्य चाहिए । पढ़-लिख कर आदमी स्वावलम्बी हो जाता है । मैंने तो अपनी बहन को इन्टर तक पढ़ा दिया है । युग ही बदल गया । इसके बिना तो कुछ काम चलता ही नहीं ।

सुमन को इसमें अपनी भलाई जान पड़ी । वह युवक की ओर देख कर बोली—हाँ, सोचती तो हूँ पर जब पढ़सकूं न । और युवक के प्रति घृणा के भाव को उसने संतरे के छिलके की भांति बाहर फेंक दिया ।

क्या मैं आपकी पढ़ाई के विषय में आपके पिता जी से कहूँ ?

"जी नहीं वे अप्रसन्न हो जायेंगे ।," कहकर जब फिर सुमन ने युवक की ओर देखा तो उसे अपने मन की दुर्बला ज्ञात होने लगी । वह सोने का बहाना करके लेट गई । पर बीच-बीच में युवक को देख लिया करती थी ।

मालूम होता है आपको भी नींद सताने लगी ।

कुछ सुस्ती सी मालूम हो रही है—स्टेशन कितनी दूर होगा ?

पंद्रह मिनट में गाड़ी स्टेशन पर पहुँच जाएगी ।

"तब तो अगले स्टेशन पर ही कुछ नाश्ता करें गे," कह कर सुमन ने साड़ी का पल्ला ठीक करते हुए कहा—आप लखनऊ में कहाँ पर रहते हैं ?

उट्रम रोड पर । डा० शान्तनु बिहारी की कोठी पर । और आपके रिश्तेदार ?

वे लोग लाप्लेस में रहते हैं ।

कितने दिन तक आप लोग वहाँ रहेंगे ?

दीदी के तिलक का कार्य समाप्त होने पर हम लोग तुरन्त वापस आजायेंगे।

आप लखनऊ रहकर पढ़ क्यों नहीं लेतीं ? सुमन चुप रही। क्षमा करना आपको कुछ बुरा लगा हो तो—

जी नहीं; बुरा लगने की क्या बात है—पर मेरे भाग्य में पढ़ना ही नहीं—(बाबा जी की बात का उसे ध्यान आया)

आपने ऐसी धारणा क्यों बना ली ?

एक बाबा जी ने हाथ देखकर कहा था।

बाबा लोगों के कहने से क्या होता है। परिश्रम करने से सब कुछ हो सकता है। मेरी बहिन भी ऐसा हो कहती थी, पर जब पढ़ने लगी तो इन्टर पास कर लिया। सुमन सतृष्ण नेत्रों से उसकी ओर देखने लगी। बेचारा मेरी पढ़ाई के विषय में कितनी चिन्ता कर रहा है। कोई रिश्ता नहीं ! जान-पहिचान नहीं, फिर भी यह कितनी ममता दिखा रहा है। स्त्रीसुलभ स्वभाव के कारण अपने हित चाहने वाले के प्रति उसे ममता सी होने लगी। स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही सुमन की तन्द्रा टूटी, पिता जी को सजग कर उसने कुछ नाश्ते के लिए कहा।

मिठाई वाले की आवाज सुनकर सुमन ने उसे बुला कर मिठाई ली और कुछ नमकीन। सुराही से पानी का गिलास भर पिता जी की ओर बढ़ा दिया।

आप भी शौक कीजिए 'लाल साहब युवक से बोले।

जी नहीं ! धन्यवाद। मैं चाय ही पिऊँगा।

चाय के साथ जरा नमकीन तो ले सकते हैं? सुमन ने मृदुस्वर में कहा। युवक आग्रह को टाल न सका। जलपान आरम्भ हुआ और गाड़ी चलदी। लाल साहब ने कहा बेटा अब दो स्टेशन के बाद लखनऊ आने वाला है सामान ठीक कर लेना चाहिए। कम्बल बाहर ही रहने देना मुझे कुछ सर्दी सी लग रही है।

"आप भी दुशाला ओढलें तो अच्छा रहेगा," युवक बोला।

सुमन ने सामान ठीक करने के बाद दुशाला ओढ़ लिया। उसे युवक की इस आज्ञापालन में मानो कुछ शान्ति सी मिली। और कुनिया की कहानी की स्मृति भी ताजी हो उठी।

आप लखनऊ में कहाँ रहते हैं?

उट्रम रोड पर—डा० शान्तनु बिहारी की कोठी पर। और आप ला प्लेस में रहते हैं न? आपकी पुत्री से ज्ञात हुआ।

हाँ, हम वहीं जा रहे हैं—कल आ सको तो २ नं० कोठी पर आना।

"अवश्य आऊंगा। आपलोगों के साथ समय भली भांति कट गया," कह कर उसने सुमन की ओर कुछ सुनने की इच्छा से दृष्टि डाली।

सुमन को स्टेशन आने पर उतरना ही पड़ेगा और फिर इस युवक से पिता जी ने कल आने को तो कह दिया पर नाम तो पूछा ही नहीं—मैं क्यों इस प्रकार सोच रही हूँ? पर इतने में ही लाल साहब बोले भाई तुम्हारा नाम पूछना तो भूल ही गया।

मुझे प्रमोद कहते हैं।

अच्छा भाई कल आना अवश्य। अच्छा बेटी सुमन लो! स्टेशन भी आगया। कुली को सामान देकर वह युवक से बोली—कल आइए गा न?

स्वीकार है—कह कर युवक ने मंद हंसी मुख पर बिखेर दी। विवश से वे अलग-अलग हो गये।

सुमन रास्ते भर सोचती गई यदि लखनऊ रह जाती तो शायद पढ़ाई ठीक से हो सकती। पढ़-लिख कर एक प्रकार से सूझ-बूझ ही कुछ और होती है। सुलोचना पढ़ी है। वह कैसी-कैसी बातें कह रही थी अपने उनके विषय में कि वे मुझे न पूजने वाली प्रतिमा समझते हैं, न चरण दासी ही। वे समझते हैं मनुष्यता के नाते प्रेम का प्रतीक, सहयोगी और जीवन साथी। दोनों पढ़े-लिखे हैं तभी तो आनन्द का जीवन बिता रहे हैं। सुना है दीदी के आदमी भी पढ़े लिखे हैं। और मैं, मैं तो जब पढ़ जाऊँ गी तभी शादी करूँगी। गाड़ी पर मिले हमदर्द युवक की ओर उसका ध्यान गया। तब तक ताँगा भी कोठी के समीप आ चुका था। तांगे वाले ने बताये हुए स्थान पर तांगा रोक दिया। लाल साहब को देख

कर कोठी के नौकरों ने आकर सामान उतारना प्रारम्भ किया। सुमन ! तुम सीताराम के साथ भीतर चलो। अच्छा कहकर वह सीताराम के साथ जाती हुई उससे बोली—किधर है काकी साहिबा का कमरा ? इधर आइये भैया जी कह कर वह सुमन को काकी साहिबा के कमरे में ले गया। वहाँ का वैभव देख कर सुमन स्तब्ध रहगई। काकी जी को देखकर सुमन ने प्रणाम किया।

खुश रहो बेटी। कहाँ हैं तुम्हारे पिता जी ?

सामान उतरवा कर आरहे हैं।

काकी साहिबा ने तीन बार तालियाँ बजाईं। ताली का संकेत समझने वाला सीताराम जब उपस्थित हुआ तो आज्ञा मिली कि लाल साहब का सामान कमरा नं० पाँच में भली भाँति रखवा दो और उन्हें यहाँ भेज दो।

अच्छा हजूर ! कह कर सीताराम गया और लाल साहब के साथ उपस्थित हो गया।

"प्रणाम काकी जी ?" लाल साहब ने कहा।

खुश रहिए—यात्रा तो सानन्द कटी ?

जी सरकार ! सुमन के रहने से कोई कष्ट नहीं हुआ।

अच्छा तो कपड़े बदल लीजिए, चाय आती होगी। कुछ देर बाद काका जी भी आगये और चाय के साथ-साथ कलके कार्य-क्रम की चर्चा भी छिड़ गई।

हाँ लाल साहब ! लड़का, उसका भाई और चाचा यहाँ आ चुके हैं। कल तिलक करने पर पाँच सौ रुपया और एक हीरे की अँगूठी देने का विचार कर रहे हैं। कड़ों का बिचार छोड़ दिया। वे विदाई के समय के लिए रहें गे। सोचता हूँ अगहन में शादी भी कर दी जाय।

"जैसे सरकार की मर्जी, मैं क्या कह सकता हूँ इस में," कह कर विवशता से उन्होंने सिर झुका लिया। पर सरकार कल दहेज का मसला भी हल करदें तो अच्छा रहे—कुछ प्रबन्ध कर दिया जायगा—मैं आप पर इतना भार न डालूँगा, बाप हूँ कुछ तो करूँ।

क्यों इस प्रकार की बातें कहते हैं लाल साहब ! आप और मैं क्या भिन्न हैं ? कल सब कुछ तय कर दिया जायगा। चाय की समाप्ति पर बैठकी समाप्त होगई।

❀ ❀ ❀

पानी पर्याप्त मात्रा में बरस चुका था, धरती का आँचल गीला था और कुसुम का आँचल भी कोरा न रहा। आसमान धरती को लोरी गा-गा कर सुना रहा था। कुसुम उन आकाश के गीतों को सुन रही थी। अपने भाग्य को कोसती हुई वह रूठी हुई नींद को बुलाने का प्रयास करने लगी पर नींद न आई। नींद की खुमारी की मिठास उसकी आँखों में समा रही थी। उसे पिछले जीवन की एक घटना याद आई।

उसकी सहेली का भाई रंजन जो अब कलकत्ते में रहता है, कभी कहता था कुसुम ! शादी करूँगा तो तुम्हीं से, और शर्त यह होगी कि न तिलक और न दहेज। तब उसकी बहन (मेरी सहेली) उसे चिढ़ाती थी—धत् मेरी कुसुम तेरे जैसों के लिए थोड़ी ही है। और एक दिन जब सचमुच सहेली द्वारा ही यह प्रस्ताव उसके सामने आया तो उसने कहा—अरुणा मैं क्या जानूँ पिता जी से क्यों नहीं कहती तेरी माँ। और इसी शर्म के मारे तीन दिन तक अरुणा के घर भी नहीं गई थी।

कुसुम उठ बैठी, हथेली पर मुँह रखकर वह उन्हीं दिनों की बातों पर मनन करती रही—तो फिर क्यों उससे शादी न हो सकी। ओह ! माँ ने कहा था उनकी जात हमसे कुछ कम है। माँ ने अरुणा से कहा था—"अरुणा बुरा न मानना बेटी।" बेचारी अरुणा ने फिर कभी भी यह चर्चा नहीं उठाई। काश ! जाति का इतना कड़ा बन्धन न होता तो……। उसे अपनी शादी का ध्यान आया। शादी तय हो रही है। न जाने कैसा आदमी मिलेगा। कठोर हृदय तथा कड़े स्वभाव का हुआ तो ? उसे मैं कुछ दिन बाद अच्छी न लगी तो ? मेरा रूप रंग—उस ने पास में पड़ा दर्पण उठाकर देखा और स्वयं हीं लज्जित सी हो गई। ऐसी भी क्या बात ? वह गुन-गुना उठी।

पौ फटने को थी। कहीं दूर शहनाई का शब्द सुनाई दे रहा था। प्रकाश की किरणें धरती को गुद-गुदाने लगीं थीं। वायु वृक्षों के आँसू पोंछ रहा था। कुसुम भी अपनी आंखों को पोंछकर अपनी सहेलियों के वैवाहिक जीवन पर विचार करने लगी। विवाह करके उनमें से एक भी तो सुखी नहीं।

लता के ससुराल वालों ने उसका चित्र न जाने कितनी बार देखा पर उसे लड़के का चित्र बदल कर दिखाया गया। बेचारी को शादी तो हो गई पर उस जुआरी और शराबी ने उस की दुर्गति कर दी। सुना है वह एक बाजारू औरत रखे है। बेचारी लता सूखकर काँटा हो रही है।

मोहिनी कहती थी—उसके पति उसे चाहते तो हैं पर उसकी कोख न चलने के कारण वे दूसरी शादी करने को तैयार हैं।

सरला के पति ने तो घुड़दौड़ के पीछे पड़कर उसके गहने तक स्वाहा कर डाले।

मञ्जु धनी घर में गई है। पर पति हमेशा परदेश ही पड़ा रहता है। उसे पूछता तक नहीं। और घर में सास उसके नाकों चने चबवाती है। ठीक कहती थी वीणा—आज के युग में स्त्रियों के कल्याण की योजना से अखबारों का पेट तो भर जाता है पर कल्याण किसी का नहीं होता। भला जो स्त्री से प्रेम करेगा वह दहेज से खरीदा जायगा? पढ़े लिखे होने से ही क्या होता है? मन चाहिए त्याग के लिए। दहेज न देने के कारण लड़कियों को कितनी यातनायें दी जाती हैं; क्या समाज नहीं देखता? पर उसकी आँखें तो रुपये की चमक से चौंधिया गई हैं। कोई लड़की जरा सौंदर्य शालिनी न हो तो सब दुर्गुण उसी में समझ कर उसे कोई अपनाता भी नहीं। शादी क्या हो गई सौदा हो गया। और ये पुरुष चाहे कितने भी दुर्गुणी हों पर अच्छे ही हैं; ये दहेज के खरीदे हुए खिलौने धौंस भी उन्हीं पर जताते हैं जिनका तन मन धन सब कुछ हरण कर लेते हैं। ये भद्र लुटेरे समाज के स्तम्भ माने जाते हैं। शायद ही कोई बड़भागिनी होगी जो शादी के बाद सुखी होगी। फिर

भी शादी-शादी न जाने क्यों लोग चैन से न रहते और न रहने देते हैं पर समाज के फौलादी पंजों में फँसी चिड़िया भले ही तड़पती रह जाय किसी को क्या करना है। इसी लिए मैंने तो पढ़ लिखकर नौकरी कर ली। जो शादी करने को कहता है भाड़ देती हूँ उसको। पर वीणा की बात पर विचार करके उसने सोचा—बिना व्याह के कोई रह भी तो नहीं सकता। बिना सहारे की लता अमुर्यादित रूप में इधर-उधर फैलने लगती है। सबल सहारा पाकर ही उसका समुचित विकाश होता है। और मञ्जु भी तो कहती थी—औरत पुरुष के बिना रह नहीं सकती। समाज में उसका कोई स्थान नहीं ; पर शादी करने न करने की बात हम लोग माँ वाप से कह भी तो नहीं सकते। वीणा कहती थी कॉलजों में पढ़े लिखे लड़के लड़कियाँ शादी करना कम पसन्द करते हैं। उनकी दुनिया ही निराली होती है। पर सुलोचना की माँ उस दिन माँ से कह रही थी—छीः छीः बहन ! क्या जमाना आ गया है। पढ़ाई ने सत्यानाश कर दिया। लड़के लड़कियों को किसी बात का भय ही नहीं, धर्म बेचारा तो लंगड़ा होकर हमारे तुम्हारे घरों में ही रह गया है। राम-राम सुना तुमने ! नानक की बिटिया जाने १३-१४ दर्जे में पढ़ती थी, भाग गई न सुदर्शन के छोकरे के साथ। और किस-किस की सुनाऊँ ? अर्जुन की लड़की का तो चलन ही हमें पसन्द नहीं आता। इसी लिए तो सुलोचना को हमने थोड़ा बहुत पढ़वा कर छुड़वा दिया। कुसुम इन्हीं विचारों में उलझी रही। उसने सोचा बुराई तो सभी में होती है। क्या पढ़े-लिखे और क्या बेपढ़े। समय के अधिक हो जाने पर वह माँ के भय से अपने दैनिक कार्य में उसी भाँति व्यस्त हो गई जैसे कोई कलर्क अरजंट फाइल में।

लखनऊ कोठी नं० २ में चहल-पहल मची थी। शहनाई पर "पिया मिलन को जाना" की धुन छिड़ी थी। ग्रामोफोन का रिकार्ड "जाना है पी की नगरिया" का शोर मचा रहा था। मेहमानों का आना जाना लगा था। सुमन भी आज पूर्ण रूप से सज-धज कर इधर-उधर दौड़ धूप में लगी थी। "जाना है पी की नगरिया" की धुन पर ध्यान जाते ही वह रुक-रुक जाती थी। लखनऊ की चिकन की साड़ी और ब्लाउज में

उसका रूप निखर उठा था। उसे रूप और यौवन दोनों वरदान के रूप में मिले थे। मेहमानों की दृष्टि उसकी ओर जाकर ठहर जाती थी। सीता राम ने तो कपड़े पहनते ही कहा था—भैया आज कितनी सुन्दर लग रही हैं, उसकी इस भावना में रूप के पारखी की अनुभूति भले ही नहीं थी पर इनाम पाने की चाटुता अवश्य थी। सुमन प्रशंसायुक्त शब्दों को सुनकर हृदय से प्रसन्न हुई पर सीता राम से बोली—चल-चल अपना काम कर इनाम अभी देर से मिलेगा। मेहमानों में ठाकुर दिलीप सिंह की स्त्री और बेटी भी आई हुई थीं। ठाकुर धनञ्जय सिंह, उनकी स्त्री और पुत्री भी विशेष भाग उस आयोजन में ले रहीं थीं। ठाकुर दिलीप सिंह की पुत्री सन्नो रूप सौंदर्य और कार्यकुशलता में अपने पर गर्व करती थी। वह अपने सामने दूसरों को कुछ समझती ही न थी। सुमन को देखते ही उसका माथा ठनका। ऊँह यह भी कोई ढंग है ?

चली है साड़ी पहनने पर पल्ला भी ठीक तरह संभालना नहीं आता धीरे से अपनी माँ से बोली—माँ देखा तुमने इस गंवारिन को ! शहर वालों की नकल करने चली। कैसे उचक-उचक कर चल रही है। पाउडर की लीपा पोती से साफ मालूम हो रहा है कि इसके पहले इसने कभी पाउडर लगाया ही नहीं । सन्नो की माँ बोली—

चुप रह सन्नो—किसी की बातों से तुझे क्या लेना है। कितनी बार कहा कि तू औरों की नुकताचीनी न किया कर, जमाना ही ऐसा है। बड़े छोटों की पहचान अब रही ही नहीं, नकली कपड़े, नकली गहने और नकल करना—यही तो इस युग की खूबियां हैं। असलियत का नाम ही नहीं, इन बेचारों का क्या दोष है। धन्नों की बेटी को नहीं देखा तूने। वह क्या कम मचक रही है ? तेरी ही जैसी साड़ी पहन कर बराबरी का दम भरती है हमेशा नकली पालिश पर। उस छोकरी का पारा तो हमेशा १०६ डिग्री रहता है। हम से पूछे कोई तो बतायें रईसी क्या होती है। आज कुछ भी न सही पर पुरानों की आन बान तो निभा रहे हैं। उनकी बातों के प्रसंग के बीच में ही ठा० धनञ्जय सिंह की लड़की रूपो ने आते ही पूछा—क्या बातें हो रही हैं मामी ? कुछ नहीं

बिटिया—सन्नो की मां ने बात कुछ इस ढंग से कही कि रूपो की फिर पूछने की उत्सुकता बढ़ी। "छिपाने की बात हो तो न कहना मामी, कहीं हम लोग उससे लाभ न उठालें," कह कर वह व्यङ्ग भरी हंसी बिखेर कर चुप हो गई। सन्नों की मां का दुष्प्रभाव मलेरिया बुखार की भांति उखड़ आया। बोली—रूपो मैं तुमसे कई बार कह चुकी हूँ कि छोटे मुंह बड़ी बात न किया करो। अपनी औकात से बाहर जाने की आदत तुम्हारी जायेगी नहीं? कौआ हंस के पंख लगाने से हंस तो नहीं हो जाता। भली रही! हम मां बेटी कुछ भी बातें कर रही हों तुम्हारी बला से। क्यों बतायें तुमसे कि हम क्या बातें कर रहीं थीं। कर रहीं थीं तुम्हारे ओछेपने की बातें सुना तुमने? छटांक भर की छोकरी सेर भर का गर्व! यहां दूसरे के घर पर मेहमान बन कर न आये होते तो दिखाती मुंहझौसी को कि क्या मजा आता है दूसरे की बातों के बीच पड़ने का। बातें कुछ तेजी से हुई थीं। रूपो की माँ भी उधर आ निकली, रूपो को मानों काठ मार गया हो। उसकी आँखों में प्रतिशोध की आग भरी थी। माँ को देखकर वह भभक पड़ी। बोली—जरा सी बात का मामी तुमने तिल का ताड़ बना दिया। क्या कहा था मैंने जो तुमने हमारी सात पीढ़ी की भी पूजा कर डाली, औकात के बाहर हम नहीं तुम जाती हो।

"रूपो की माँ! देखा तुमने अपनी बेटी का चलन—"सन्नों की माँ ने भौंहें चलाते हुए कहा।

"रूपो चुप क्यों नहीं रहती, बात क्या हुई?" रूपो की माँ ने पूछा।

बात क्या है मां! ये हमेशा झूठी खानदान की ऐंठ से मरी जाती हैं। मरे कोई हमारे ठिंगेसे। पर हमें बुरा भला काकहने इन्हें क्या अधिकार है। न किसी के बसाये बसते है न किसी का दिया खाते हैं—फिर जलन कहे की?

चुप रह बेटी। बड़ों के सामने अदब से बोला करते हैं। रूपो की माँ ने रूपो को शान्त करते हुए कहा।

यहां पर पराया घर है। अपना घर होता तो ये क्याकर लेतीं? रूपो ने कड़क कर कहा। देखूँगी कभी न कभी मामी तुम्हें भी। रूपों के साथ

झगड़ा मोल लेना मजाक नहीं है, वह बड़बड़ाती हुई अपने कमरे की ओर जा ही रही थी कि सुमन उसे रोक कर पूछने लगी—मुंह क्यों फूला है तुम्हारा ? क्या कर रही थी तुम ?

फूल चढ़ा रही थी सन्नो की माँ की कब्र पर।

यह क्या क्या कह रही हो दीदी, मामी से उलझ गई क्या ? दीदी मैं जानती हूँ कि तुम बेकार के चक्कर में आ गई। उन्हें अपनी लाडली के सामने कोई अच्छा ही नहीं लगता। शक्ल चुड़ैल की, मिजाज परी के। पटना में इनकी मेरी इसी पर एक बार झड़प हो चुकी थी। पर दीदी आज तो अपना काम है, तुम्हें मेरी सौगन्द चुप रहना। इनकी शेखी किसी और समय देखी जायगी। रूपो मान गई, और विवाद इतने पर ही कुछ देर के लिए शान्त हुआ।

दोपहर के भोजन का समय हो चुका था, भोजन पर सन्नो की मां ने सब के साथ खाने से इन्कार कर दिया। कारण सुमन, रूपो, सन्नो और उसकी मां के अतिरिक्त किसी को ज्ञात न था। मेहमानों का भोजन उनके कमरों में ही भेज दिया जाय इस पर किसी ने आपत्ति न की।

भोजन के पश्चात् एक बजे दिन में तिलक का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। तिलक में ५०१ रु० नकद सोने की दो मोहरें एवं विविध प्रकार के आभूषण दिये गये। वस्त्रों की संख्या भी पर्याप्त थी। देखते ही सन्नो की मां का ध्यान गया कि यह सब तैयारी काका जी की ओर से ही होगी। उसके भीतर की ईर्ष्या मुद्रा आकृति पर भी अंकित होने लगी, पर सिर दर्द का बहाना बनाकर वह आराम करने भीतर चली गई। स्वभाव के-अनुसार सुमन भाँप गई की तिलक की वस्तुओं को देखकर ही इनका सिर दर्द करने लगा। काको जी से वह बोली—जरा देख आऊँ मौसी को क्या हो गया ?

भीतर आकर अस्तव्यस्त रूप में पड़ी हुई मौसी को देखकर वह बोली—कैसी तबियत है मौसी जी ?

सिर दुख रहा है बिटिया।

दवा दूं आपका सिर ?

ना बेटी अपने आप ही ठीक हो जायगा।

कुछ दवा मंगवा दूं आपके लिए ?

नहीं सुमन जरा देर में ठीक हो जायगा। कभी-कभी न जाने क्यों ऐसा हो जाता है। जब क्रोध आ जाता है तो तबियत बिगड़ सी जाती है।

आज क्रोध की क्या बात थी मौसी ?

फिर क्या था ? सन्तो की माँ ने रूपो को सारा किस्सा छेड़कर कहा—तुम्हारे काम की बात थी बेटी मैं विघ्न बनना नहीं चाहती। नहीं तो तुम छोकरी को मजा चखा देती।

जाने दीजिये मौसी इन बातों को। चलिए न बाहर वहाँ मेहमान बैठे हैं। आपके बिना शोभा नहीं लगती।

सुमन का आग्रह वह न टाल सकी। बाहर आने को तैयार हो गई। देखना यह था कि रूपो क्या कर रही है।

पार्टी के समाप्त होने पर मेहमानों को विदाकर काका जी आराम करने के लिए अपने कमरे में चले गये। घर में आये हुए कुछ अतिथियों ने सिनेमा जाने का विचार किया। सन्नों की माँ सिरदर्द को लेकर अपने ही कमरे में रही। सुमन प्रमोद को पिता जी वाले कमरे में लेजाकर बातें करने लगी।

आप पार्टी में आ गये अच्छा हुआ।

आता क्यों नहीं, लाल साहब का आग्रह टल सकता था भला ! माफ करना एक बात कहूँ ? आज तो आप सबसे भली लग रहीं थीं।

रहने दीजिए—आप भी गरीबों का मजाक उड़ाते हैं।

नहीं देवी ! सच कह रहा हूँ, खैर ; यह तो बताइये आपने अपनी पढ़ाई के विषय में क्या तय किया। प्रमोद की वाणी में ममत्व था।

मैं क्या सोच सकती हूँ प्रमोद बाबू ! पिता जी की इच्छा, जैसा

करें। मेरे भाग्य में पढ़ना है ही नहीं। परिस्थितियों ने विवश कर दिया है। कह कर सुमन कुछ उदास सी हो गई।

आप निराश न हों उद्योग करने पर सफलता अवश्य मिलेगी। काका जी से कह कर देखें, शायद वह कुछ कर सकें।

पिता जी किसी भी रूप में मुझे यहाँ छोड़ने को राजी भी तो नहीं होंगे।

मेरा विचार है वे अवश्य मान जायेंगे।

ममत्व की दृष्टि से प्रमोद को देखती हुई सुमन बोली—कहूँगी जरूर पर आप क्या मेरी कुछ सहायता नहीं कर सकते ?

मैं आपके पिताजी से आवश्य कहूँगा। मेरी सहायता आपको सदैव मिलेगी।

प्रमोद बाबू ! आप कितने भले आदमी हैं !

अजी लड़कियों में एक आपने अच्छा कह दिया तो क्या हुआ ? यों तो सभी मुझे बुरा समझते हैं।

यह क्या कहते हैं आप ! पिता जी तो आपकी बड़ी प्रशंसा कर रहे थे।

आपके पिता जी तो देवता हैं, उनका क्या कहना ! इसी बीच सुमन के पिता जी भी आगये। प्रमोद को देखकर उनके मन में आया—लड़का तो भला है—जात बिरादरी का भी है—यदि कहीं............... प्रमोद ने उठकर नमस्ते किया।

जीते रहो बेटे ! तुम्हारे आ जाने से बड़ा आनन्द आया।

"पिता जी ! प्रमोद बाबू आपकी बड़ी प्रशंसा कर रहे थे," कह कर उसने प्रमोद को तरल दृष्टि का लक्ष्य किया।

प्रमोद स्वयं भला है अतः सबको भला कहता है बेटी।

श्रीमान् मैं तो नगण्य व्यक्ति हूँ।

नहीं बेटा—तुम में कई गुण हैं, तुम अपने बड़ों का सत्कार करना जानते हो। तुम्हारे दिल में दया है। आज कल के नौजवान अपने सामने

बड़े बूढ़ों को मूर्ख समझते हैं। नम्रता और शिष्टाचार से वे दूर हटते जाते हैं।

अपनी प्रशंसा सुनकर प्रमोद को हर्ष हुआ और बोला—श्रीमान् क्षमा करें तो कुछ पूछूँ ! यद्यपि इस छोटे से परिचय में मुझे इतनी धृष्टता न करनी चाहिए पर................

कहो-कहो क्या बात है ? कुछ विशेष बात है क्या ?

आप सुमन को पढ़ाते क्यों नहीं ?

सोचता तो हूँ। पर देहात के रहन सहन के कारण कुछ कर भी नहीं सकता। सामान्य शिक्षा तो दिला ही रहा हूँ। और असल बात तो यह है प्रमोद कि मैं लड़कियों को अधिक पढ़ाना पसन्द नहीं करता। पर जमाने की रफ्तार को देखते हुए पढ़ाना भी पड़ेगा ही।

तो आप इन्हें यहीं क्यों नहीं छोड़ देते। काका जी के यहाँ रहने में कोई आपत्ति तो नहीं ? मैं समझता हूँ यहाँ रहकर इनकी पढ़ाई चल पड़ेगी।

बात तो ठीक कही तुमने, पर मैं जरा पुराने ढंग का आदमी हूँ। इसके भाग्य में पढ़ना होगा तो पढ़ही जाएगी। काका जी पर क्या-क्या भार लादे जायें।

अच्छा प्रमोद ! तुम बैठो मैं जरा काका जी के पास जाता हूँ। "जरा आज एक मित्र के यहाँ भी जाना है",कह कर वह उठ खड़ा हुआ और सुमन की ओर देखकर नमस्ते करके चल दिया।

जैसे ही लाल साहब काका जी के कमरे में प्रविष्ट हुए—सन्नो की माँ उसी समय वहाँ से बाहर आई थी। काका जी ने लाल साहब को समीप बैठाते हुए कहा—कहिए कार्य तो भली भाँति सम्पन्न हो गया न ?

सरकार ! आप किसी कार्य में हाथ डालें और वह सम्पन्न न हो ?

अब अगहन में शादी भी हो जानी चाहिए—अंगड़ाई लेते हुए काका जी बोले।

जैसी आपकी इच्छा।

हाँ लाल साहब ! यदि आप सुमन को यहीं छोड़ जायें तो क्या हर्ज है, चाहता हूँ उसे पढ़ा-लिखा दूं।

मैं क्या कहूं सरकार ! पर......

पर क्या यदि आप गाँव से ही शादी करने का विचार कर रहे हैं तो उस समय सुमन भी हमारे साथ आजाएगी। सोचता हूँ इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। युग परिवर्तित होता चला जा रहा है हर लड़का पढ़ी-लिखी लड़की से शादी करना पसन्द करता है। या फिर इतना धन हो कि मुँहमांगे दाम पर लड़के खरीद लिए जायँ। फिर भी अड़चन तो पड़ती ही जाती है।

बात टालने की इच्छा से लाल साहब ने सुमन की माँ की राय के सम्बन्ध की चर्चा छेड़ी। काका जी उठकर बैठ गये और बोले—तो ठीक है उन्हें आपकी काकी मना लेंगी। हार तो आपही की जिद से खानी पड़ती है। आखिर सुमन पर जितना अधिकार आपका है हमारा भी तो उतन ही अधिकार है। काका जी ने नौकर को पुकार कर कहा—महादेव ! सुमन को बुलाकर लाओ।

"जी सरकार" कह कर महादेव ने सुमन से कहा—भैय्या आपको सरकार बुला रहे हैं। "आती हूं" कह कर सुमन ने बाथरूम में जाकर अपने को संभाला। हाथ मुँह धोकर वह काका जी के पास गई।

बेटी सुमन ! क्या बात है, उदास सी कैसे दिखाई दे रही हो ? थक गई हो क्या ?

सुमन ! यदि तुम्हारे पिता जी तुम्हें यहाँ छोड़ जायँ तो रहोगी ?

"रहूँगी क्यों नहीं; किन्तु घर पर पिता जी का काम मैं ही करती हूँ, मेरे यहाँ रहने से उनका काम कौन करेगा ?" कहकर उसने पिता जी की ओर देखा।

इतना काम तो कुसुम भी कर सकती है। तुम यहां रुककर पढ़लो तो अच्छा रहेगा।

"जैसी आपकी और पिता जी की राय हो," कहकर उसने गर्दन नीची करली ।

"लालसाहब ! अब आप ना नहीं कर सकते," कहते हुए काका जी ने सुमन की पीठ पर ममता का हाथ फेरते हुए कहा—बेटा यहां तुम्हें कोई कष्ट न होगा, पढ़ने का मन है न ?

सिर हिलाकर सुमन ने मौनस्वीकृति दी ।

सन्नो की मां जितना ही दुष्प्रिय भाव अभी अभी काकाजी के मन में भर आई थी सुमन के सरल भाव ने उसे दूर कर दिया । वे बोले—अच्छा तो काकी साहिबा जब सिनेमा से लौट आएँगी तब बातें होंगी । जाओ सीताराम के साथ बनारसी बाग घूम आओ । दिल बहल जायेगा । जाओ तैयारी करो ।

सुमन के चले जाने पर लाल साहब और काका जी से बड़ी देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं । सन्नो की मां को शक हुआ जाने क्या बातें हो रही हैं—उसने काका जी से कहला भेजा सिरदर्द दूर नहीं हो रहा है । जरा डा० चौधरी को फोन करके बुला दीजिए । स्वीकृति देकर काका जी फिर लाल साहब से बातें करने लगे । फिर दोनों व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सुमन का यहां रह कर पढ़ना ही ठीक होगा । कुछ उदास भाव से काका जी बोले—लाल साहब ! अपने ही रिश्तेदार क्यों न हों पर दूसरे की वृद्धि को देखकर अकारण जलना कुछ लोगों का स्वभाव धर्म हो जाता है । अपना बन कर भी कुछ लोग हमारे यश पर भूखे गिद्धों की भांति टूट पड़ते हैं । ऐसे लोग कर्म के भी काले और हृदय के भी काले होते हैं । पर हम तो यही सोचते हैं कि जहां तक बन सके अपने से जो हो सके करते रहते हैं । कल का भगवान् जाने ।

काकी जी ने आकर उनका ध्यान भंग कर दिया ।

क्या राजनीतिक दांव-पेच खेले जा रहे हैं ? काकी जी ने व्यङ्ग्य से कहा ।

कुछ नहीं सरकार ! आइए आपभी सहयोगी बनें न ।

तो सुमन के बारे में क्या तय हुआ ?

आपकी आज्ञा के बाहर जाना किसकी शक्ति का काम है ?

तो आप राजी हो गये न ? वे लाल साहब की ओर देखकर काका जी से बोली—चला गया न आपका सम्मोहन मंत्र इन पर ?

"क्यों हमारा मंत्र क्या तुम्हारे जादू से कुछ कम है ?" कहकर वे खिल-खिला कर हंस पड़े।

सुमन की पढ़ाई अब चल पड़ेगी—बाकी भाग्य की बात रही। काकी जी बोलीं, कभी न कभी सफलता तो मिलेगी ही। उनका हृदय दया भाव से पिघल पड़ा।

तो क्या लाल साहब! अब आपका कल ही जाने का विचार दृढ़ रहा ?

हां सरकार कल ही चला जाऊँगा। पर सरकार वह लड़का प्रमोद जो पार्टी में आया था उस पर जरा नजर रखें तो............

आप चिन्ता न करें अभी कुछ देर है......... न जाने कितने ही प्रमोद अपने आप मिल जायेंगे, समय तो आने दीजिए। सुमन को पढने तो दीजिए।

लाल साहब मौन रहे। कुछ देर बाद सब अपने-अपने काम में व्यस्त हो गये। काकी जी सन्नो की माँ के पास जाकर बातें करने लगीं।

रात्रि में लाल साहब ने सुमन को बताया कि वह अब यहीं रह कर पढ़ेगी। सुमन का मन हर्ष और उद्वेग के अन्तर्द्वन्द्व की अनुभूति करने लगा। उसे ध्यान आया प्रमोद ने कहा था—यहां रह कर पढ़ सको तो कितना अच्छा हो। पर........पर........बाबा जी का कथन सत्य हुआ और मैं न पढ़ सकी तो ? वह कुछ देर चुप रह कर बोली—

पिता जी मैं यहां रह सकूंगी ?

क्यों बेटी यहां तुम्हें क्या कष्ट होगा ?

कष्ट नहीं पिता जी-पर घर की याद !

हम लोग आते जाते रहेंगे। काका जी चाहते हैं तुम्हे पढ़ाना तो ठीक

ही है। तुम भी तो चाहती थी न ?

हां पिताजी।

विद्या तो बेटी कुछ कष्ट सह कर ही आती है न ?

पिताजी आप कल ही चले जायेंगे ?

"हाँ बेटी घर पर काम भी तो पड़े हैं। पर सुमन ! खबरदार बेटी कोई ऐसी बात न हो जिस से काका जी और काकी जी को दुख हो और खानदान पर आँच आवे। तुम भला बुरा सब कुछ समझती हो। अच्छा जा बेटी सो जा" कह कर वे अपने कमरे में सोने चले गये।

❀ ❀ ❀

प्रभात काल लाल साहब ने प्रस्थान किया। सुमन को उस समय बड़ा बुरा लगा पर वह रोई नहीं। जानती थी कि ऐसा करने पर पिता जी उसे यहां न छोड़ेंगे। दिन भर सुमन का मन उदास रहा। वह कभी अपने गाँव की हमजोलियों के साथ खेल-कूद के आनन्द की कल्पना करती और कभी अपनी पढ़ाई के रंगीन चित्र उसकी आँखों के सामने आ जाते। उसे प्रमोद का ध्यान आया। वह उस दिन पार्टी में आकर कह गया था "फिर आऊंगा", पर आज तो आया नहीं, क्या उसने मेरी पढ़ाई की बात सच्चे हृदय से कही होगी या योंही जैसे कि लोग कह दिया करते हैं। वह सम्भावित असम्भावित सभी प्रकार की चिन्ताओं से ग्रसित थी, कमरे में बैठ कर वह कुछ लिख रही थी—बाहर से आवाज आई "सुमन !" लिखना छोड़ कर वह बोली—प्रमोद बाबू ! आइए आइए ! प्रमोद ने कमरे में प्रवेश करते ही देखा—निर्व्याज सौन्दर्य, आंखों की रक्तिमा में यौवन की खुमारी, मानो सजल तारा सानुरागा सन्ध्या उसके सामने खड़ी हो।

वह सुमन को देखकर हँस पड़ा। बोला—आज तो आप स्टेशन के रूप से भी अधिक रूपवती दिखाई दे रही हैं। पर मौन उसी तरह से हैं। सुमन ने लजाते हुए कहा—जाने लोगों को मुझमें क्या खूबी दिखाई

देती है। एक जंगली लड़की, गँवारिन, शायद आप जैसे लोग हम गरीबों का मजाक उड़ाने को ही कहते होंगे। प्रमोद ने बात संभालते हुए कहा—

नहीं नहीं, आप गलत न समझें। इसमें मेरा कोई दुषभिप्राय नहीं है। निरावरण कमल काई से घिरे रहने पर भी शोभा ही देता है। सुन्दरता अमीरी गरीबी नहीं देखती। वह तो प्रभु-की देन है। खैर, पिताजी कहां हैं? जरा उनसे भी मिलना चाहता हूँ।

वे तो चले गये।

तो फिर आप को वे यहां पढ़ने के लिए छोड़ गये ऐसा ज्ञात होता है। आपके पिताजी ने यह अच्छा किया।

हाँ वे काकाजी की बात मान गये। पर मेरा तो यहां जी ही नहीं लगा रहा है। परकटा पक्षी कहीं पर पड़ा रहे—उसमें जीवन ही क्या?

पढ़ाई चल पड़ेगी तो आपका जी लगने लगेगा।

सोचती तो हूँ पर भाग्य में जाने क्या है?

उम्मीद पर ही संसार चल रहा है—अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है जीवन में कैसे-कैसे परिवर्तन देखने पड़ते हैं मनुष्य को। पर किसी न किसी आशा पर लोग जी ही रहे हैं। और पढ़ने लिखने में तो अपना ही परिश्रम काम देता है, बशर्ते कोई अच्छा पथ दर्शक मिल जाय।

इन बातों के लिए भी तो बलवान् भाग्य होना चाहिए।

पता नहीं आप लोगों ने भाग्य को क्या समझ रखा है। भाग्य-भाग्य कह कर न जाने कितने ही अच्छे जीवन नष्ट हो गये। कुछ लोगों के पीछे तो भाग्य इस बुरी तरह से पड़ा हुआ है कि वे निकम्मे हो गये हैं। हिम्मत का सहारा छोड़ चुके हैं और वास्तव में कुछ लोग तो भाग्य का अर्थ ही नहीं समझते, अपने कर्मों का फल ही तो भाग्य है। सफलता एवं विफलता तो लगी ही रहती हैं। इसका यह अर्थ तो नहीं कि सब भाग्य के पीछे सारा काम छोड़कर ही बैठ जायँ।

आप ठीक कहते हैं। पर छोटे ही जीवन में जिसे चारों ओर निराशा ही दिखाई दे उसका मन मरे नहीं तो क्या ? प्रमोद बाबू मैं भी पढ़ी लिखी होती तो कुछ बहस कर सकती पर मेरी विफलताओं ने मेरे मन में घोर भाग्यवादिता को स्थान दे दिया है।

इस विषय पर फिर कभी समझा दूँगा। इस समय जरा जल्दी में हूँ एक ट्यूशन पर जाना है।

तो क्या आप घर पर पढ़ाने जाया करते हैं ?

यों तो मैं ट्यूशन नहीं करता पर जब अपने मित्र, बन्धु-बान्धवों को आवश्यकता होती है तो सहायता कर देता हूँ।

यदि किसी और को भी सहायता की आवश्यकता हो तो ?

किसको है आवश्यकता ?

यूँही पूछ रही हूँ। शायद आवश्यकता पड़ ही जाय।

आवश्यकता होगी तो सहायता क्यों न मिल सकेगी।

तो आप सबकी सहायता का भार ले लिया करते हैं न ?

जिसको मेरी आवश्यकता होती है वह मेरा अपने ही परिचितों में होता है।

आपकी आवश्यकता लोगों को बहुत पड़ा करती होगी न ?

आप तो अब बनाने पर तुली मालूम होती हैं। आप को आवश्यकता हो तो पता मालूम ही है बुला लीजिएगा। उठते हुए प्रमोद ने कहा अच्छा अब चलता हूं।

अच्छा नमस्ते। फिर किसी समय आप ही आने का कष्ट करें तो अच्छा हो—मैं अभी यहां के नौकरों से विशेष काम नहीं लेती।

"अच्छा मैं स्वयं ही आ जाया करूंगा" कहकर प्रमोद चल दिया। कुछ ही देर में सीताराम ने आकर सुमन से पूछा—राजा भैय्या ये कौन साहब थे ?

कोई हो तुम्हें इससे क्या लेना है ?

राजा भैय्या ! यहाँ बिना सरकार की आज्ञा के किसी से नहीं मिलते। बाहर वालों से आज्ञा लेकर बातें करनी होती हैं।

यदि कोई आ गया तो क्या उससे बोले ही नहीं ? वह क्या सोचेगा कि ये कितने अभद्र हैं।

ठीक कहती हैं आप। पर सरकार..........

चुप रहो सीताराम। मैं सरकार से स्वयं बात कर लूँगी।

"आप बेकार नाराज होती हैं। मैंने तो यहां की एक बात कही थी। बाप-रे-बाप ! ऐसा गुस्सा भी किस काम का ?" कहकर वह बाहर आगया।

"इधर आओ सीताराम," सुमन ने शासन के स्वर में कहा।

"जी सरकार" कहकर वह लौट पड़ा, पर उसे अपनी खैर मालूम न पड़ी।

तुम इतने मुँह लगे क्यों हो गये ? आने दे काका जी को तो बताऊंगी।

भैय्या ! मुझसे गलती हो गई, माफी चाहता हूँ। अब फिर कभी ऐसा न करूंगा।

अच्छा जाओ—फिर कभी मेरे सामने ऐसी बात न कहना—

सीताराम बड़बड़ता हुआ चला गया।

सुमन काका जी के पास जाकर बोली—काका जी क्या आपकी आज्ञा है कि यहाँ किसी से कोई आप की आज्ञा के बिना बातें न करे ? सीताराम कहता था।

सीताराम तो पूरा विदूषक है बेटी। तो तुम किससे बातें कर रही थीं ?

प्रमोद बाबू आये थे उन्हीं से कुछ बातें कर रही थी। वे पिताजी से मिलने आये थे।

तो उसे हमसे क्यों नहीं मिलाया, हमें भी उससे कुछ काम था।

उन्हें कहीं पढ़ाने जाना था इसलिए शीघ्र ही चले गये।

अच्छा—जब वह फिर आवे तो मुझसे बातें करवा देना।

क्यों काकाजी ?

कुछ काम है, तू उसे मेरे पास भेज देना—और सुनो कल हजरत गंज महादेव के साथ चली जाना वहां एक कोचिंग सेंटर खुला है लड़कियों के लिये। वहा की अध्यापिका से बात-चीत कर लेना और बताना कि क्या बातें हुईं।

मैंने तो वह स्थान देखा ही नहीं।

महादेव जानता है, तुम उसके साथ चली जाना।

क्या वहां अंग्रेजी भी पढ़ाई जाती है ?

काका जी ने हँस कर कहा—वहां आदमी को आदमी बनाने के के लिए सब कुछ पढ़ाया जाता है।

काका जी के पास से आकर सुमन छत पर चली गई। वह इतनी प्रसन्न थी मानो रंक को धनद का पद मिल गया हो। उसने सोचा सीताराम बड़ा दुष्ट है। काका जी ने तो स्वयं प्रमोद को अपने पास बुलाया है। उन्होंने तो नहीं कहा कुछ कि तुमने क्यों बातें कीं। वह छत पर घूम रही थी। कुछ अंधेरा हो चला था। सामने वाली कोठी का झरोखा खुला था। भीतर का सारा कमरा दिखाई दे रहा था। उसने देखा अभी अभी मोटर से उतर कर जो महिला आई थी वह वहां थी। रोशनी का रंग हरा हो गया था। निरावरण महिला को देखकर उसने मुंह फेर लिया पर फिर उधर ही देखने लगी—फिर उसने देखा एक और आकृति को भी, उसी नग्नावस्था में। वह कुछ न समझ सकी—शहर का यह क्या वातावरण है। वह वहां से हट कर नीचे कमरे में आकर लेट गई। पर बारबार वह दृश्य उसकी आंखों के सामने आ जाता था। क्या इतने बेपर्दे से भी लोग रहते हैं। छीः! छीः! कैसा कुत्सित दृश्य देखा आज इन आँखों ने—दो काली आकृतियों के मिलन ने सुमन का माथा ठनका दिया था।

❀ ❀ ❀

चार दिन बाद वह अपने कोचिंग सेन्टर का पूर्ण परिचय पा गई थी। वहाँ की व्यवस्थापिका उसे भले स्वभाव की जान पड़ी। उसकेसा दृपन

और उच्च शिक्षा का भी उस पर प्रचुर प्रभाव पड़ा। उसे कुछ विश्वास सा होने लगा कि यहां आने से उसकी पढ़ाई पूर्ण हो सकेगी। वह नियमित रूप से वहां जाने लगी और अध्ययन का क्रम सुचारु रूप से चलने लगा।

एक दिन एकान्त अवसर पाकर सुमन ने अपनी अध्यापिका जी से कुछ प्रश्न किये।

वह बोली—बहिन जी ! जीवन में बिना शादी के कोई नहीं रह सकता ?

नहीं रह सकता। केवल ब्रह्मचारी ही इस कोटि में आते हैं।

क्यों ?

इसलिए कि आयुवृद्धि के साथ साथ स्त्री या पुरुष के विचारों की भी वृद्धि होती जाती है। इन्द्रियों में अपने विषय की भूख जागृत होने लगती है। वह एक ऐसी भूख होती है जिसके दबाने से जीवन की बहती हुई धारा ही सूख जाती है। ऋषि मुनियों की बात तो अलग है। वे जंगलों में संसारी बातों से दूर रह कर अपने मन और इन्द्रियों को जीत लेते हैं। पर जब कभी उनकी भी काम की भूख उत्तेजित हो उठती है तब वे भी विश्वामित्र की भांति अपने पर अधिकार नहीं रख सकते। पर उनके जीवन में ऐसे अवसर नगण्य रूप में आते हैं। उनका रहन सहन ही विरक्त ढंग का हो जाता है, पर संसार में रहने वाले अपने को कम संभाल पाते हैं।

"कम संभाल पाने से आपका तात्पर्य ?" सुमने सजग होकर पूछा।

देखो सुमन ! मनुष्य के मन में भांति-भांति के विचार उठते हैं। यौवन के आरम्भ होते ही स्त्री को पुरुष की और पुरुष को स्त्री की भूख सी प्रतीत होने लगती है। वे अपने यौवन में आकर गलत मार्ग न अपना लें, इसलिए समाज ने धर्म की मर्यादा बांधकर उनका विवाह निश्चित कर दिया है। वे समाज के सामने संस्कार द्वारा एक दूसरे को अपना कर अपनी इन्द्रियों की क्षुधा की तृप्ति कर लेते हैं।

तो क्या यह क्षुधा सब में होती है ?

हाँ होती तो सब में है, पर किसी में स्वल्प और किसी में अधिक।

उसकी शान्ति के क्या कोई और साधन नहीं हैं ?

बिना विवाह के यावत् साधन जघन्य समझे जाते हैं। मर्यादा का उल्लंघन करने से समाज क्रुद्ध हो उठता है। इसीलिए विवाह को महत्त्व दिया गया है। बिना विवाह के किसी भी और उपाय को समाज नीच दृष्टि से देखता है। और यों तो गुप्त रूप में क्या-क्या हो रहा है इस बात को जानना बड़ा कठिन है।

कैसे ? सुमन ने उत्सुकता से पूछा।

मनुष्य के दो रूप होते हैं। एक बाहरी और एक भीतरी। बाहरी रूप में कोई भी अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए भला बना रहता है। वह बड़ी ही साधुवृत्ति का दीखता है। बुरी बातों की चर्चा चलने पर नाक भौंह सिकोड़ता है। अपने को परोपकारी और उदार दिखाने की चेष्टा करता है। समाज की भलाई की बातें और आदर्श की चर्चा सदैव ह किया करता है। पर उसका भीतरी रूप भी होता है। जिसे वह अत्यन्त गुप्त रखता है। उस रूप में वह अपने असली रूप में होता है वहां वह जितना स्पष्ट हो सकता है होता है। उसमें वह समाज के सभी नियमों का जी खोल कर विरोध कर लेता है। चेष्टा यही करता है कि उसके उस रूप का रहस्य सदैव रहस्य ही बना रहे। इसी में वह अपने को सुखी समझता है। बाहर भीतर एक रूप वाले तो विरले ही होंगे संसार में। कितने ही स्त्री पुरुष इस रहस्यमय रूप का सहारा लेकर विवाह के पूर्व ही अपनी वासना भूख को शान्त कर लेते हैं। यह उन सबका गुप्त रूप होता है। जिसका किसी को पता ही नहीं होता। यदि उस रूप का पता लग जाता है तो समाज उसे भी बुरा कहता है, क्योंकि वह मर्यादा के बाहर चला गया। पर यह भी सत्य है कि मनुष्य का गुप्त रूप मनुष्य के साथ काया की छाया की भांति जुड़ा रहता है। इसी भाँति सृष्टि चल रही है।

बहिन जी ! यह जरूरी तो नहीं कि सबके दो रूप हों। कुछ लोग तो बड़े ही भले जान पड़ते हैं।

तुम ठीक कहती हो सुमन ! पर यहीं पर तो हम भूल कर जाते हैं। सम्पर्क में आने से ही हम किसी के गुप्त रूप का पता नहीं लगा सकते। यह तो आदमी स्वयं अपने आप ही जान सकता है। जब दो व्यक्तियों की एक ही जैसी विचारधारा मिल जाती है, तब उनका गुप्त रूप वे ही जानते हैं, पर रखते रहस्य बना कर ही हैं उसे। क्योंकि उनकी बातें उन्हीं तक सीमित रहती हैं। समाज के सामने वे निरावरण नहीं होते। पर एकान्त में निरावरण होकर वे व्यवहार करते हैं। उदाहरण से समझो—जैसे कोई पण्डित है। वह ब्राह्मण होने के नाते समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए मांस मदिरा का सेवन नहीं करता। पर उसकी इच्छा होती है तो वह छिपकर सब कुछ कर लेता है। एक लड़की या लड़का परस्पर प्रेम करते हैं। पर वे यह कभी व्यक्त नहीं होने देते कि हम ऐसा कर रहे हैं। झूठ-मूठ की शंका करने पर बिगड़ जाते हैं। पर मानसिक शान्ति के लिए वे अपने भीतरी रूप का प्रयोग करना नहीं छोड़ते।

मनुष्य का यह गुप्त रूप भयंकर होते हुए भी सुन्दर और स्पृहणीय इसलिए है कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में उससे समाज की कोई व्यवस्था नहीं बिगड़ती, और न उसके नियमों का ही उल्लंघन होता है।

सुमन का ध्यान उन दो धूमिल आकृतियों पर गया। तो क्या वह उनका भी गुप्त रूप रहा होगा। वह बोली—

बहिन जी क्या यह सब बुरा नहीं है ?

बुरा तो है। पर यह समझ की बात है। बुरा तुम उसे तभी तो कहोगी जब उसका गुप्त रूप प्रकट हो जायगा। और यदि उसके विषय में तुम्हें कुछ ज्ञान ही नहीं तो तुम बुरा उसे कैसे कहोगी ? समाज की आखों से परे ही तो रहता है मनुष्य का यह रूप। रहस्य के गर्भ में पड़े सभी कार्य न भले हैं न बुरे। मर्यादा का उल्लंघन ही तो बुरा है।

बहिन जी आपने तो बड़ी अच्छी बातें बता दीं। पर आपकी बातों से तो यही जान पड़ता है कि विवाह करना अत्यावश्यक है।

हाँ अत्यावश्यक तो है ही। बिना विवाह के स्त्री का निर्वाह नहीं हो सकता। उसे तन की पुष्टि, मन की शान्ति और धन की कामना

के लिए पुरुष का सहारा लेना ही पड़ता है। पुरुष को भी ऐसा ही करना पड़ता है। जड़ चेतन सभी जोड़े में ही जीवन निर्वाह करते हैं। पर मनुष्य का यह जोड़ा समाज के नियमों के सहारे ही पनपता है। इसीलिए सन्तानोत्पत्ति को गृहस्थ धर्म बताया गया है। गृहस्थ पर बड़े-बड़े भार होते हैं, जिन्हें वह विवाह करके ही निभाता है।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पुरुषार्थ माने गये हैं। इनको समान रूप से अपना कर चलना ही गृहस्थ का कर्तव्य है। काम का सेवन जब धर्म के साथ किया जाता है तभी वह शोभा पाता है। इसीलिए स्त्री पुरुष को संस्कार की सत्ता ग्रहण करनी पड़ती है।

काम का ठीक ठीक अर्थ मैं अभी नहीं समझ सकी बहिन जी।

"अब समय अधिक हो गया है। तुम्हें भी घर जाने की देर हो रही है इस बात को किसी और समय समझा दूंगी। तुम पढ़ने पर ध्यान देती रहो। बुद्धि तुम्हारी अच्छी है। तुम अच्छी तरह पढ़-लिख सकती हो। जाओ कल ठीक आज के ही समय पर चली आना, मैं चाहती हूँ तुम्हें अलग से भी कुछ पढ़ा दिया करूँ," कहकर अध्यापिका जी अपने कमरे चली गईं और सुमन अपने घर।

घर आकर सुमन ने आज का पढ़ा हुआ पाठ काकी जी को सुनाया। काकी जी ने प्रसन्न होकर कहा—अच्छा है इसी भांति परिश्रम करती रहो। अच्छा अब कुछ नाश्ता करके जरा देर के लिए नौकर को साथ लेकर बनारसी बाग घूम आना।

सुमन आज्ञा पाकर घूमने चली गई।

सांझ का सुहावना समय था। मन्द मन्द शीतल समीर चल रहा था। बनारसीबाग की चहल पहल को देखकर यह प्रतीत होता था कि शहर भर के लोग यहीं आ गये हों। सुमन को यह दृश्य अति प्रिय लग रहा था।

कुछ लोग टहल रहे थे, कुछ घास पर बैठे थे, कुछ बेन्चों पर बैठ कर गुनगुना रहे थे। कुछ हँसी की दुनिया में मस्त थे। दुनियादारी से

दूर अबोध बालक बालिकायें बनचारी मृगशावकों की भांति चौकड़ियाँ भर रहे थे। एक ओर से "पानी पाण्डेय" पानी पीजिए की आवाज दे रहा था तो एक ओर "मेरे चने बने हैं आला," की आवाज लोगों का ध्यान अपनी ओर खींच लेती थी। सुमन सब कुछ देखती सुनती टहल रही थी। एक खाली बेञ्च को देखकर वह उस पर बैठ गई। वह चने वाले से चने लेकर चबाने लगी। कुछ देर में उसके पास से ही एक युवक निकला। उसे लगा जैसे प्रमोद है। प्रमोद की दृष्टि भी उससे टकरा गई। वह पास आकर बोला—नमस्ते जी ! कहिए लखनऊ का बनारसी-बाग कैसा लगा आपको।

अच्छा लगा—आज जी ऊब रहा था जरा टहलने चली आई। आप कैसे आये यहाँ ?

मैं प्रायः अवकाश मिलने पर यहाँ आ जाया करता हूँ। हाँ यह तो बताइए आपकी पढ़ाई कैसे चल रही है ?

"चल ही रही है," कहकर सुमन ने प्रमोद को उग्र दृष्टि से देखा। फिर वह बोली—घर पर आइए न किसी दिन काका जो आपसे बातें करना चाहते थे।

मुझसे ! क्या बातें करनी होंगी उन्हें ?

यह तो मैं नहीं जानती पर वे कहते थे जब प्रमोद आवे तो मेरे पास भेज देना।

अगर ऐसी बात है तो कल परसों तक अवश्य आऊंगा। एक दिन सिनेमा का प्रोग्राम नहीं रहेगा क्या ?

देखा जायगा। आप घर पर तो आवें।

'अच्छा चलूँ चाचा जी प्रतीक्षा कर रहे होंगे नमस्ते," कहकर वह चला गया।

सुमन प्रमोद के चले जाने पर सोचने लगी। सभी प्राणी जोड़े में शोभा देते हैं, वह तो अकेली ही है। उसे कुछ उदास सा प्रतीत होने लगा, वह घर लौट आई।

घर आकर अन्य कार्यों से निपट कर वह फिर छत पर चली गई। कुछ-कुछ अँधेरा हो गया था। वह छत पर पड़ी हुई कुर्सी पर बैठे-बैठे आकाश की ओर देखती रही। सहसा उसकी दृष्टि पास वाली कोठी के झरोखे से भीतर गई। फिर वही दृश्य, वही समय और वही नील प्रकाश में दो धूमिल आकृतियों का मिलन। वह जमकर बैठी रही और देखती रही।

दस मिनट के पश्चात् उसने देखा—शय्या पर अंगड़ाई लेती हुई स्त्री ने अपने दोनों हाथों की माला किसी पुरुषाकृति के गले में डाल दी। पुरुष का मुख उसके मुख की ओर झुका। नीचे से नौकर ने आवाज दी—सुमन भैय्या ! काका जी बुला रहे हैं। वह चौंककर उठी और काका जी के कमरे में चली गई। काका जी ने पूछा—छत पर क्या कर रही थी ?

कुछ नहीं। बैठी बैठी आकाश की सुन्दरता देख रही थी।

रात्रि होने पर छत पर नहीं जाना चाहिए काका जी ने प्रेम भरे स्वर में कहा।

सिर हिलाकर सुमन ने आज से ऐसा अपराध न करने की स्वीकृति सी दी। फिर काका जी बोले—

कैसी चल रही है तुम्हारी पढ़ाई ?

ठीक चल रही है काका जी ! बहिन जी बड़ी भली हैं। बड़े प्रेम से पढ़ाती हैं।

अंग्रेजी भी आरम्भ कर दी न ?

जी हां ! अंग्रेजी के छोटे-छोटे वाक्य जोड़ने आ गये हैं मुझे।

तो ठीक है परिश्रम करती रहो। घर पर भी ट्यूटर रख दिया जायगा।

सुमन मन ही मन प्रसन्न थी। अपने कमरे में आकर वह पढ़ने का प्रयास करने लगी। पर उसका मन मनुष्य के दो रूपों पर मनन करने

लगा। उसने भी मन की बागडोर ढीली कर दी। जो मन में आया सोचा और न जाने कब वह सो गई।

❀ ❀ ❀

कुँवार का महिना था, बरसात का वेग दरिद्र के मनोरथों की भाँति शान्त हो चुका था। धरती का मुँह धुल कर स्वच्छ हो गया था। उसकी विविध वस्तुओं से सजी काया ऐसी जान पड़ रही थी मानो वह शृंगार सजाकर प्रिय आगम की प्रतीक्षा कर रही हो, शारदीय नवरात्रारम्भ हो चुका था। कोठी नं० २ में आज प्रभात से ही चहल-पहल मची थी। पण्डित वेद मंत्रों की ध्वनि से वातावरण को पवित्र कर रहे थे। एक ओर कर्मकाण्डी विप्र दुर्गा पूजन और सप्तशती के पाठ करने में व्यस्त थे। घर के समस्त शस्त्रास्त्र स्वच्छ करके पूजागृह में रख दिये गये थे। अस्त्रों के परम्परागत मोह ने उन्हें श्रद्धा का स्थान दे रखा था। अश्व विद्या के पण्डित काका जी अश्व रक्षकों को उन्हें सजाने का आदेश दे रहे थे। घर के सभी प्राणी प्रसन्न मुद्रा में थे। नौकर नौकरानियों में दूना उत्साह दिखाई दे रहा था। तलवारें, भाले, बन्दूक, बर्छियां, कटार सभी की साज सज्जा देखने योग्य थी। अश्वारोहण का समय आने वाला था। विजय-दशमी उत्सव में सम्मिलित होने के लिए अतिथि लोग भी आये हुए थे, काका जी ने राजसी वस्त्राभूषणों से अपने को सालंकृत किया। सिर पर राजपूती कलगीदार पगड़ी, कमर पर लटकती हुई तलवार, एक कन्धे पर लटकती हुई बन्दूक, अचकन और चूड़ीदार पायजामा धारण किये, गले पर मोतियों का नौ लड़ाहार डाल कर वे अश्वारोहण के लिए उद्यत हुए। घोड़ा भी क्या था! इन्द्र के श्यामकर्ण उच्चैः श्रवा को भी मात कर रहा था।

काकी जी ने स्वस्ति वाचन के साथ मंगल तिलक करके अश्वारोहण की ओर संकेत किया। हँसते हुए शंखध्वनि के साथ वे ज्यों ही अश्वा-रोहण के लिए उद्यत हुए नीलकंठ लाकर एक व्यक्ति ने प्रवेश किया। नीलकंठ दर्शन कर उस व्यक्ति को यथेष्ट पुरस्कार देकर जैसे ही उसे विदा

किया भीतर से किसी ने जोर से छींक दिया। काकी जी सशंकित हो उठीं। सामने से एक काना भी आते हुए दिखाई दिया। अशुभ निमित्त देखकर परिवार की महिलाओं को दुश्चिन्ता हुई। फिर से मंगल स्तोत्र पढ़े गये। अमंगल नाशक अर्घ्य दिया गया। फिर भी काकी जी की शंका निर्मूल न हो सकी। दही पेड़ा खिला कर उन्होंने काका जी को सीमोल्लंघन के लिये अश्व पर चढ़ने का संकेत किया।

सीमोल्लंघन से आकर शमी पूजन का कार्य समाप्त हुआ और फिर निशाना मारने की बारी आई। उपस्थित व्यक्तियों ने शकुन के लिए बारी बारी से तलवारें चलाईं और निशाने साधे। अन्त में काका जी ने अपने पूर्वजों का स्मरण करते हुए निशाना मारा पर दुर्भाग्यवश वह खाली गया। उनकी चिन्ता बढ़ी, पुनः दूसरा निशाना मारा, वह भी खाली गया। तीसरी बार निशाना पूर्ण सध जाने पर महिलाओं की बारी आई। महिलाओं में सुमन ने भी निशाना मारने के लिए बन्दूक उठाई, पर उसे उस दिन की घटना याद आई जब उसने एक पक्षी की जीवन लीला समाप्त कर दी थी, ध्यान आते ही उसके हाथ से बन्दूक छूट गई। सबके सामने वह लज्जित हो उठी। अमंगल की कामना उसके मन को भी अपना लक्ष्य बना चुकी थी। उत्सव की समाप्ति पर भृत्य वर्ग को इनाम बाँटा गया। रात्रि में काका जी के शयन कक्ष में जाकर काकी जी उनसे बोलीं—

मेरा मन न जाने आज क्यों भयभीत सा हो रहा है!

क्या बात है? तबियत तो ठीक है न? आज उत्सव के दिन भय की क्या बात?

आप पुरुष हैं; साधारण बातों पर ध्यान नहीं देते, मुझे तो शंका हो गई है।

ओह! समझा, मेरा निशाना न बैठने पर तुम शंका कर रही हो!

निशाना भी ठीक नहीं बैठा और आपके अश्वारोही के लिए उद्यत होते ही छींक भी तो हुई थी, और फिर उस काने को भी उसी समय आकर मरना था? न जाने क्या होने वाला है? कल जरा अपना जन्म पत्र दिखालें न किसी पण्डित को!

अरे तुम भी कितनी भीरु हो ! होनी को कौन रोक सकता है ? हां मानसिक शान्ति के लिए कोई चाहे कुछ भी कर ले ।

पर पत्री दिखाने में आपकी क्या हानि हो रही है ?

तुम्हारी शंका को निर्मूल करने के लिए दिखा दूंगा पत्री भी किसी पण्डित को । पर तुम बड़ी जल्दी घबरा जाती हो ।

आप कुछ सोचते भी हैं ? स्त्री पुरुष की भाग्यानुगामिनी होती है ।

अरे अब बूढ़े हो चले अँकवे की जड़ खाकर थोड़े ही आए हैं यहां, पर हां कभी-कभी दीर्घजीवी होने की इच्छा इसलिए बलवती हो जाती है कि अभी बड़े बड़े कार्य तो कुछ किये ही नहीं, रेणु का व्याह हो गया । अरिमर्दन अभी छोटा है । उसकी चिन्ता कभी कभी उद्विग्न कर देती है । कुसुम का व्याह और सुमन की पढ़ाई का बोझ भी तो इन्हीं कन्धों पर है । खैर हो ही जायेगा । भगवान पर भविष्य निर्भर है । हाँ, अबके रीवाँ के जंगलों में शिकार खेलने का विचार कर रहा हूं । तुम्हें भी साथ चलना होगा ।

मैं सोचती हूँ अबके शिकार का विचार छोड़ दीजिए । आपका स्वास्थ्यभी ठीक नहीं है ।

और तुम्हें दुर्निमित्त की शंका भी लगी है यह क्यों नही कहतीं ?

हाँ, यह भी है, पर विशेष तो आपके स्वास्थ्य को ही देख कर कह रही हूं ।

स्वास्थ्य तो जैसे तैसे चल ही रहा है । और चलता ही रहेगा ।

पर आप मानेंगे नहीं न ! रुंधे गले से वे फिर बोलीं—मेरे कहने का किसी पर कुछ असर थोड़े ही होता है । जैसा सोचें करें । बात की स्वाभाविकता का प्रभाव काका जी पर पड़ा और उन्हें सचमुच कुछ देर के लिए अपने स्वास्थ्य की चिन्ता हो गई ।

बोले—सोचता हूँ विदेश जाकर क्यों न इलाज करा लूँ । शायद है, रीढ़ की हड्डी की इस भयंकर वेदना से मुक्ति मिल जाय ।

जा क्यों नहीं सकते ? पर आपने तो अपने लिए मकड़ी का जाला तान रखा है।

अब गर्मी में विदेश जाना तय रहा—खैर, इस समय तो शिकार खेलने की प्रबल इच्छा हो रही है। नाराज न हो तो प्रबन्ध कर लिया जाय।

विदेश जाने का वचन दीजिए तो शिकार की आज्ञा मिल सकेगी।

"वचन दिया," कह कर उन्होंने काकी जी का हाथ अपने हाथ में लेकर गर्म ओठों के स्पर्श से उसे रोमाञ्चित कर दिया। फिर इधर-उधर के जीवन की गहन समस्याओं की बातें होती रहीं।

कुछ ही दिन बाद काका जी की हड्डी का दर्द उभर आया। वे उदास हो गये। काकी जी की घबराहट और बढ़ गई। काका जी की विरक्त बातों को सुनकर उन्हें आश्चर्य होने लगा। बात पूछने पर बोले—न जाने कभी कभी एक उदासी सी मन को घेर लेती है। संसार से मोह छूटने लगता है।

आखिर आपकी इस उदासी का कारण ? इलाज तो विदेश जाकर करवा ही लेंगे, थोड़े दिन का कष्ट और है। पर कुछ विशेष बात तो नहीं।

क्या बता दूं, बता भी नहीं सकता और बिना बताये रह भी नहीं सकता। जी हल्का हो जाय इस लिए कहनाही पड़ेगा। असल में बात यह है—जिस स्थान पर मेरा पलंग बिछता है वहां पर सोने से मुझे स्वप्न में एक योगी के दर्शन होते हैं। वह कहता है—"चुन चुन ईंटा महल बनाया लोग कहें घर तेरा, ना घर तेरा ना घर मेरा चिड़िया रैन बसेरा।"

ऐसे स्वप्न तो हो ही जाते हैं, इस पर आप उदास क्यों होते हैं ?

नहीं नहीं मीनाक्षी (काकी जी का नाम) तुम नहीं समझ सकतीं वह मुझसे कहता है—समय समीप है जल्दी करो—कभी हँसकर कहता है—भूल गये हो अपने को ? अपना स्वरूप तो याद रखो। मैं समय की याद दिलाने कभी-कभी आ जाता हूँ, कि तुम और जालों में न फंसना, तुम्हें कष्ट होगा। मीनाक्षी ! उसकी बातों का स्मरण करते ही मैं विरक्त

सा हो जाता हूँ। कुछ दिन तक काम पर मन ही नहीं लगता, चित्त की स्थिति डांवाडोल हो जाती है।

कल ही मैं दुस्वप्न शान्ति का उपाय कर दूंगी। आप इन बातों पर अधिक विचार न किया करें।

सोचता हूँ अब कुछ उच्च कोटि के कार्यकुशल व्यक्तियों से तुम्हारा परिचय करा दूँ। कभी कोई समस्या आ जाती है तो परिचय बहुत काम देता है।

चुप भी रहिए, आप न जाने क्या क्या अनाप-सनाप बकने लगते हैं, मुझे नहीं चाहिए किसी का परिचय। आपका बाल बांका न हो फिर मुझे क्या चिन्ता। भाग्य विपरीत होने पर तो फिर······

पर आपसे प्रार्थना करती हूँ कि स्वप्न की बातों को स्वप्न ही समझिए।

सोचता तो मैं भी ऐसे ही हूँ पर विवश हो जाता हूँ। आह जरा कमर तो दबाना कुछ अधिक दर्द हो रहा है। न हो तो फिर एक मौर्फिया का इन्जेक्शन लें लू।

नहीं नहीं, मौर्फिया न लीजिए। सारा शरीर तो आपने उससे जर्जर कर दिया।

पर असह्य वेदना में तो मौर्फिया की शरण लेनी ही पड़ती है।

इधर आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं उधर शिकार पर जाने को भी कह रहे हैं—मैं तो कुछ नहीं समझ पा रही हूँ। कमर दबाते दबाते वे बोलीं स्थगित कर दीजिए अब शिकार खेलने का विचार। उसमें भाग लेने वाले जो लोग हैं उन्हें सूचित कर दिया जायगा।

मीनाक्षी ! यही तो नहीं सीखा है मैंने, जो भी हो शिकार पर तो जाना ही पड़ेगा। तुम्हें क्या हो गया जो ऐसा कह रही हो ?

क्या करूँ कभी कभी अधिक भयभीत हो जाती हूँ।

जब तक जीवन है भय से काम नहीं चलेगा। काम तो करने ही पड़ते हैं। बीमारी तो शरीर का धर्म है।

क्या डा० चौधरी को बुला दूं।

नहीं—जरा मेरी अटैची उठा लाओ। एक मॉर्फिया का इञ्जेक्शन ले लूँगा, तबियत जरा देर में ठीक हो जायगी।

"आखिर आप नहीं मानेंगे," कह कर वे अटैची ले आईं, इञ्जेक्शन लगाने के पश्चात् काका जी ने सुख की सांस ली।

आप कुछ दिन लखनऊ के बाहर घूमने क्यों नहीं चलते ? एक स्थान पर बहुत रहने से भी जी ऊबने लगता है।

हाँ चल तो सकते हैं—अच्छा सोचेंगे—पहिले शिकार पर से लौट तो आवें। अच्छा अब दर्द मिट गया है—तुम्हें भी नींद आ रही है विश्राम करो।

आज्ञा पाकर काकी जी शयनार्थ अपने पर्यङ्क पर गईं। पर कुशंकाओं के जाल में वे बुरी तरह जकड़ गईं थीं। वे सोचने लगीं—नारी का जीवन उसका पति है। उसके बिना उसका जीवन उस मन्दिर के समान है जहां मूर्ति तो है पर पुजारी नहीं, प्रतिमा है पर निर्जीव। उन्होंने प्रभु से प्रार्थना की कि उनके पति सदैव स्वस्थ रहें—"हे प्रभो ! यदि मैंने जीवन भर सब की भलाई की हो तो मेरा कोई अनिष्ट न हो," प्रार्थना करते करते उन्हें नींद आ गई।

प्रभात काल उठकर वे काका जी के पास गईं। स्वस्थ बैठकर वे कुछ लिख रहे थे। उन्हें किसी पत्र में "कुत्तों का जीवन और स्वभाव" लेख भेजना था, लेख आधा हो चुका था। काकी जी ने पूछा—अब कैसी है तबियत ? उत्तर मिला "ठीक हूँ," और लेखनी अपनी गति से चलती रही।

घन्टे भर बाद चाय के लिए जब काकी जी पूछने आईं तो लेख समाप्त हो चुका था। वे बोले—कुत्ता भी विचित्र प्राणी है। इसकी स्वामी भक्ति पर जो कुछ भी लिखा जाय कम ही है। तुम्हें पसन्द आया वह जोड़ा जो कल नैनीताल से आया है। हां में हां भरती हुई वे बेचारी वहीं पर बैठ गईं। खानसामा चाय रख गया सुमन भी आ चुकी थी। उसने चाय तैयार कर दी। चाय पीते पीते काका जी बोले—सुमन के लिए घर

पर भी एक मास्टर लगा लेना चाहिए—क्यों मीनाक्षी ! क्या राय है तुम्हारी ? जिज्ञासा भरी दृष्टि से उन्होंने देखा।

आप जो कहें उचित ही है।

तो रूपो से क्यों न पूछा जाय ? जो मास्टर उनके घर आते हैं इन्हीं से क्यों न कहा जाय ?

यों तो बेबी के मास्टर साहब भी भले आदमी हैं और अच्छा पढ़ाते हैं। यदि आसकें तो पूछ देखिए।

हाँ हाँ ठीक कहती हो तुम। उन्हीं से कहना पड़ेगा, हमारी बात को मास्टर जी टाल नहीं सकते।

वे बेचारे तो अब घर के से हो गये हैं।

अच्छा तो तुम पूछ लेना उनसे। शायद मुझे आज कार्यवश कानपुर जाना पड़े। और दिल्ली भी जाना पड़े तो दो चार दिन लग जायेंगे। तुम शिकार का प्रोग्राम ठीक रखना। दोपहर की गाड़ी से जाने का विचार कर रहा हूँ। मेरा सामान तैयार कर लेना। और चलो इस समय कुंवर मानधातासिंह के यहां हो आयें, उनसे भी जरा काम था। "और सुमन तुम ठीक से पढ़ती रहो; ध्यान लगा कर पढ़ो, समय कम है," कह कर वे नित्य-कृत्य के लिए उठ खड़े हुए। काकी जी भी चलने की तैयारी करने लगीं।

कुंवर मानधाता के यहां पहुँच कर जैसे ही काका जी की गाड़ी रुकी, भीतर से रोने की आवाज सुनाई दी। नौकर से पूछा—कुंवर साहब हैं ? उत्तर मिला—सरकार उन्हें दिल का दौरा उठा है। हालत ठीक नहीं। दोनों व्यक्ति सहम गये। भीतर जाकर जो दृश्य उन्होंने देखा ओह ! उसे देख कर बड़े धैर्यशाली भी कांप जाते। एक ओर उनकी स्त्री राधा विलख रही थी। एक ओर बच्चे चीख रहे थे। डा० इन्जेक्शन पर इन्जेक्शन लगा रहा था। सब व्यर्थ ! कुंवर मानधाता इस धरती का मोह छोड़ चुके थे। कुछ ही देर में समस्त नाते रिश्तेदार आ गये। सब आश्चर्य में थे और सभी समय की बात पर पछता रहे थे। काका जी और काकी

जी सभी को धैर्य दे रहे थे। पर राधा का करुण क्रन्दन और तीव्र होता चला जा रहा था। अपने भविष्य का चित्र उसके सामने था—असहाय बच्चे और असह्य ऋण का बोझ। काका जी घर न आ सके। दिन भर सब को आश्वासन देते रहे। शाम को घर आकर वे कानपुर चले गये।

काकी जी की आँखों में मानधाता सिंह के घर का दृष्य झूल रहा था। ओह! मनुष्य पर कैसा कैसा संकट आता है। कौन जानता था कि इनकी यह दशा होगी, अब बीवी बच्चे किसके सहारे पर रहेंगे। भविष्य में न जाने क्या होने वाला है? इसी चिन्तन में वे अपने पर्यङ्क पर लेटी थीं। सुमन उन्हें देखकर स्वयं दुखी हो रही थी पर उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि बात क्या है। उसने साहस करके पूछा—आप इतनी उदास क्यों हैं—दा? (काकी जी को वह "दा" कहा करती थी) वह हठी बालक की भाँति सब कुछ जानने पर तुल गई। काकी जी ने बताया कि वे विजय दशमी के दिन से ही सशंकित हैं। अनेक अपशकुन हो रहे हैं। बेचारे मानधाता को क्या हो गया है भगवन्! सुमन सुनती चली जा रही थी और काकीजी जी खोलकर बातें कर रहीं थीं। फिर वे बोलीं—आज मास्टर जी को भी बुलवाना है। महादेव को भेज देना वह घर जानता है, बुला लिआएगा। सुमन चुपचाप सुनती रही—उसके मन में आया कहीं मेरे ही आने से तो इतने दुर्निमित्त न हो रहे हों, मेरा भाग्य न जाने क्या क्या करता है? यहाँ आई तो यहां वालों को भी चैन नहीं। वह उठकर चल दी।

❀ ❀ ❀

शाम को मास्टर साहब भी आ गये। मास्टर साहब से वे बोलीं—आपको कष्ट दिया क्षमा करें।

आपकी आज्ञा तो शिरोधार्य है। जब आप बुला भेजती हैं तो मैं अपने को धन्य समझता हूं। कहिये क्या आज्ञा है?

आपको सुमन को पढ़ाने के लिए समय देना होगा। यह भी आवश्यकीय कार्य है। आप मना नहीं करेंगे ऐसी आशा है।

मैंने कभी भी क्या आपकी आज्ञा टाली है ? कल से ही पढ़ाना प्रारम्भ कर दूंगा।

मास्टर साहब को वे लोग घर का सा ही व्यक्ति समझते थे। अत निस्संकोच सुमन का भार उन पर छोड़ दिया गया।

प्रथम दिवस उसे मास्टर को देखकर प्रमोद का ध्यान आया। फिर उसे ध्यान आया कि इन मास्टर साहब को तो मैंने कोचिंग सेन्टर में भी देखा था। ये हमारी अध्यापिका जी से बातें कर रहे थे। वह मास्टर साहब के सामने लज्जा की शरीर धारिणी मूर्ति की भाँति बैठी रही। मास्टर साहब ने उसकी पुस्तकों पर सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ नाम पढ़ा "सुमन"। वे बोले—सुमन ! इस भांति अध्यापक के सामने लज्जा करोगी तो कैसे काम चलेगा। विद्यार्थी को अध्यापक के सामने निर्भीक होना चाहिए। अच्छा ! निकालो अपनी अंग्रेजी की पुस्तक। उसने पुस्तक सामने रख दी। पाठ का श्री गणेश करके मास्टर साहब चले गये।

दूसरे दिन जब मास्टर साहब आये तो मेज पर पान की तश्तरी और सिगरेट की डिबिया धरी मिली। सुमन प्रथम दिवस की ही भाँति बैठी रही। मास्टर साहब ने उसके मुँह से कुछ शब्द सुनने के लिए कहा—कहो सुमन ! कल का पाठ याद है न ?

जी हाँ ! वह बोली।

तो आज क्या पढ़ोगी ?

"जो कुछ आप पढ़ायेंगे," सुमन ने संकोच को त्याग कर बड़े साहस से ये शब्द कहे।

अच्छा, आज इधर-उधर की कुछ बातें समझा दूंगा और फिर कल से यह निश्चय होगा कि तुम से कौन सी परीक्षा दिलाई जाय। उसी के आधार पर तुम्हारी पढ़ाई चलेगी।

मास्टर साहब ! क्या मैं परीक्षा दे सकूंगी ?

क्यों नहीं। "अक्षर अक्षर के पढ़े मूरख होत सुजान" नहीं सुन रखा है तुमने ?

आपकी कृपा होगी तो अवश्य पढ़ जाऊंगी।

नौकर ने आकर सूचना दी—मास्टर साहब को काका जी बुला रहे हैं। अच्छा कह कर मास्टर जी उठे और काका जी के पास चले।

अपनी साधारण वेशभूषा में काका जी लॉन में कुर्सी डाले बैठे थे। समीप में ही काकी जी भी बैठी थीं। तीसरी कुर्सी खाली थी। आज्ञा पाकर मास्टर जी उसी पर बैठ गये।

सुमन की बुद्धि को कैसे पाया आपने ?

लड़की तीव्र बुद्धि की है, पर सरकार ! इनसे कोई परीक्षा दिलानी चाहिए। ऐसा होने से अध्ययन में सुविधा रहेगी।

"अभी तो इसे कुछ भी ज्ञान नहीं" काकी जी बोलीं।

इसीलिए तो कहता हूँ परीक्षा का क्रम ठीक रहेगा। ज्ञान देना तो गुरु का काम होता है। जंक लगे लोहे को चमका कर तलवार का रूप देना ही तो चतुर लुहार का काम है। मास्टर का और धोबी का काम बराबर समझें आप। हंसे नहीं बात ठीक कहता हूँ। धोबी मैल निकाल कर कपड़े को स्वच्छ बना कर उसे पहनने योग्य कर देता है और अध्यापक मूर्खता रूपी मल को निकाल कर छात्र को नया जीवन देता है। मैं सोचता हूँ इनसे विद्याविनोदिनी की परीक्षा दिलाई जाय। विद्याविनोदिनी देकर कोई भी छात्रा इण्टर में प्रवेश कर सकती है।

तो जैसा आप उचित समझें करें। ऐसी युक्ति सोचिए कि जिससे स्वल्प समय में अधिक लाभ हो।

ऐसा ही होगा सरकार ! आप मेरी पढ़ाई से अनभिज्ञ तो नहीं हैं न। अच्छा आज्ञा हो तो चलूं।

अवश्य आपका समय अमूल्य है। पर मास्टर साहब ! यह लड़की जितनी ही सीधी है इसे क्रोध भी उतना ही अधिक आता है। इसके क्रोध को कम करने का भी उपाय कीजिएगा, पराये घर का धन है. इसमें नम्रता होनी चाहिए।

चिन्ता न करें सरकार। सब ठीक हो जायगा। अच्छा जयशंकर! कह कर मास्टर साहब ने विदा ली।

स्वच्छन्द प्रकृति का व्यक्ति जब नियम की शृंखलाओं में आवद्ध हो जाता है, तब उसे या तो अकर्मण्यता घेर लेती है, या वह सुअवसर को भी हाथ से खो बैठता है। पर कभी कभी नियम की शृंखला में बद्ध होने पर उसकी ये बातें दूर हो जाती हैं और वह बड़े बड़े काम कर बैठता है।

मास्टर जी भी स्वच्छन्द स्वभाव के व्यक्ति ठहरे। वे सोचने लगे फिर नियम से पढ़ाने जाना होगा। पर नित्य तो मैं नहीं जाऊँगा, पढ़ाना मेरा काम है पढ़ाऊँगा। नित्य मजदूर तो नहीं हूँ जो जाऊँ। कुछ चांदी के टुकड़ों पर नियम में बंधना भी तो एक दण्ड ही है। मौज आई पढ़ाया। पर मन मारे क्यों जबर्दस्ती पढ़ाने जाया जाय, ट्यूशन वाले तो चाहते हैं एक दिन भी अनुपस्थिति न हो, है भी ठीक। वे पैसा खर्च करते हैं, जिसे आवश्यकता हो काम करे। उन्हें अपनी आर्थिक स्थिति पर विचार करना पड़ा। समय जो कुछ भी करा दे कम ही है। पर इससे आत्म स्वतंत्रता तो नहीं खोई जा सकती।

संसार की कितनी भीषण स्थिति है। विद्योपार्जन करके पेट के लिए उसका विक्रय करना पड़ता है। आज के युग की स्थिति के आधार पर कहीं न कहीं तो अपने को व्यक्ति खपाता ही है। मास्टरों का आदर अब वैसा तो नहीं होता जैसा पहिले था। वेतन भोगी भृत्यों का ही सा उन का भी मान है। कितने हैं ऐसे विरले जो गुरु को अब भी गुरु मानते हैं। खैर, होगा विद्या दान देने वाले को इस की चिन्ता क्या? विद्या का मूल्य कोई क्या दे सकता है? यह तो केवल विनिमय में कुछ चांदी के चमकीले टुकड़े मिल जाते हैं बस। उन्होंने सोच-विचार कर सुमन को पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। सुमन अपने कमरे में मास्टर साहब के आगमन की प्रतीक्षा में थी। मास्टर साहब के आते ही उसने सिर झुका कर प्रणाम किया। मास्टर साहब ने 'जयशंकर' कहते हुए बैठकर कहा अब तुम्हें विद्याविनोदिनी की परीक्षा देनी है। नियमावली ले आया हूँ अब इसी क्रम से तुम्हें पढ़ना होगा।

मास्टर साहब मैं कोचिंग सेन्टर में भी तो जाती हूँ ।

अब तुम्हें वहां जाने की आवश्यकता नहीं, उतने समय का उपयोग घर पर ही करो ।

"मास्टर साहब ! मुझे किसी भी प्रकार भली-भाँति पढ़ाकर परीक्षा पास करवा दीजिएगा तो जीवन भर ऋणी रहूँगी," कहकर वह रोने लगी ।

तुम जम कर पढ़ो तो सही, परीक्षा पास करना तो खेल है, समझी !

मास्टर साहब ! मेरी बुआ को आप ही पढ़ाते थे ।

हाँ वह मेरी ही शिष्या हैं ।

वे तो बहुत पढ़ गई हैं मास्टर साहब !

तुम भी पढ़ जाओगी, घबराती क्यों हो ?

मास्टर साहब ! आपकी दक्षिणा ?

तुम्हें दक्षिणा से क्या मतलब ? मैं पढ़ाऊँगा और तुम पढ़ोगी बस ।

पर.....................

पर लगेंगे तो सुमन तुम फिर उड़ जाओ गी, चुपचाप पढ़ती रहो। सुमन भी हँस पड़ी और मास्टर साहब भी ।

सुमन मास्टर साहब के एक एक वाक्य को गुरु मंत्र समझकर ध्यान में रखने लगी । वह पाठ को ध्यान से समझ लेती थी । कुछ ही दिनों में उसमें यह समझने की शक्ति आ गई कि वह कुछ पढ़ रही हैं । मास्टर साहब के प्रति उसका श्रद्धाभाव उत्तरोत्तर बढ़ने लगा । कुछ ही दिन में वह मास्टर साहब से इतनी परिचित हो गई कि संकोच के भाव का सर्वथा अभाव ही हो गया । जब कभी मास्टर साहब न आते या विलम्ब से आते तो उसे प्रतीक्षा असह्य हो उठती, कभी-कभी मुखमुद्रा से वह अपनी अप्रसन्नता को व्यक्त कर देती थी। मास्टर साहब मन ही मन उसकी प्रशंसा करते सत्पात्र में विद्या फलित होते देख वे अवकाश के दिनों में भी सुमन को पढ़ाने जाया करते । समय का बन्धन टूट गया था, सिद्ध-साधक का भाव आने पर पढ़ाई प्रगति करने लगी ।

एक ही मास पश्चात् सुमन की क्रोध की मात्रा भी न्यून होने लगी। एक दिन घर में उससे कहा गया तुममें परिवर्तन हो गया है। यह तुम्हारे मास्टर साहब का ही प्रभाव है। सुमन ने गद्‌गद् हृदय से मास्टर साहब से कहा—मास्टर साहब क्या मैं बदल गई हूँ? और तब उसकी पीठ थपथपाते हुए मास्टर साहब ने कहा था—अच्छी बात तो है। पढ़ने से तो जीवन में परिवर्तन आता ही है। परिवर्तन तो उस दिन समझूँगा जिस दिन घर के सभी लोग कहेंगे कि सुमन के क्रोध की मात्रा दूर हो गई। मेरा पढ़ाना तो तभी सार्थक होगा।

सुमन ध्यान से सुन रही थी और मन ही मन सोच रही थी कि किस भाँति इन्हें अपना हृदय दिखाऊँ कि मैं इन्हें कितना मानने लगी हूं। पढ़ने के लिए कितना त्याग करना पड़ रहा है, मास्टर साहब इस बात को कैसे समझेंगे। वह बोली—

मास्टर साहब! आप को मुझ पर विश्वास नहीं।

सुमन मुझे विश्वास ही नहीं पूर्ण विश्वास है। विद्यार्थी जब विनय सम्पन्न हो जाता है तभी उसकी विद्या फलीभूत होती है। शेरनी के दूध को यदि सामान्य पात्र में दूहा जाय तो पात्र टूट जायगा। उसमें छिद्र हो जायेंगे, और दूध बाहर निकल जायगा। किन्तु स्वर्ण पात्र में वही दूध सुरक्षित रह सकता है। इसी भाँति उचित तथा योग्य पात्र में निहित गुरु विद्या भी फलीभूत होता है। देखूँगा तुम कहाँ तक योग्य निकलोगी।

आप परीक्षा लेकर देख सकते हैं।

अवश्य,—परीक्षा भी होगी! मैं समय-समय पर छात्र की कड़ी परीक्षा लिया करता हूँ।

जब जी चाहे आप परीक्षा लेकर देख सकते हैं। सुमन आपके सभी परीक्षणों में सफल रहेगी।

मुझे तुमसे ऐसी ही आशा है। तो किया जाया तुम्हारा परीक्षण?

जी हाँ मैं प्रस्तुत हूं। सुमन ने गद्‌गद् कण्ठ से कहा। और नेत्र

उसके मास्टर साहब की मुद्रा को अध्ययन करने लगे। हृदय उनकी बातों का अनुमोदन करता जाता था। वह मूक हो गई।

सुमन क्या सोच रही हो तुम ? अरे तुम्हारी आँखें गीली हो गईं ? निरी पगली हो तुम।

एक टक मास्टर साहब को देखती हुई वह बोली -- मास्टर साहब ! जितनी देर आप यहाँ रहते हैं न जाने एक सबल शक्ति सी मुझे अपने में जान पड़ती है।

"अच्छा ! पर जब मैं यहाँ बैठे-बैठे डांटता हूँ तब तुम्हे क्रोध नहीं आता ?" मास्टर साहब ने मुस्करा कर कहा।

मुझे तो आपके डांटने में भी आनन्द आता है। हाँ यह अवश्य सोचती हूँ कि मुझे न जाने क्या हो गया है, जब कोई मुझे जरा भी आँख दिखाता था तो मैं उसके सिर हो जाती थी।

सुना है तुम नौकरों को बहुत डांटती हो।

आपके पढ़ाने के बाद तो डटाँना ही छोड़ दिया।

क्यों ?

इस लिए कि मैं समझने लगी कि डांटने से ही काम नहीं चलता। जो काम प्रेम पूर्वक मीठी बात बोलने से हो सकता है वह क्रोध से नहीं। आपने ही तो बताया था यह।

तो तुम मेरी बातों पर मनन करने लगी हो न ? देखो सुमन इसे याद करलो—

हे जिह्वे कटुक स्नेहे मधुरं किन्न भाप से।
मधुरं वद कल्याणी, लोको हि मधुरप्रियः॥

जानती हो इसका अर्थ ?

हाँ !

तो तुम जहाँ तक हो सके मधुर भाषण किया करो।

अब तो मैं कम बोलती हूं और क्रोध भी कम करती हूँ।

यह अच्छा लक्षण है। अच्छा अब मैं चलूँगा।

जरा और बैठिए मास्टर साहब! मास्टर साहब अब मैं आपसे बहुत बातें करने लगी हूं। डर लगता है कहीं आप नाराज न हो जायँ।

जब तक छात्र गुरु के सामने खुला नहीं, तब तक उसकी धारणाओं में परिवर्तन कैसे होगा।

मास्टर साहब एक दिन आप यहीं खाना खाइए और दिन भर यहीं रहिए।

बेबी को पढ़ाने आता था तो खाता ही था।

तो अपनी पसन्द बताइए। क्या अच्छा लगता है आपको?

पसन्द की कोई बात नहीं जो बन जायेगा खा लूँगा, पर इस विषय में फिर किसी दिन तुमसे कहूँगा।

तो कल क्यों नहीं आते? कल छुट्टी भी तो है—

"अच्छा आऊंगा" कहकर वे चल दिये।

सुमन जब मास्टर साहब को पहुंचाकर आ रही थी तो काका जी ने उसे बुला कर पूछा—

कैसी चल रही है तुम्हारी पढ़ाई सुमन?

ठीक चल रही है काकाजी, अब पढ़ने में मन लगने लगा है। मास्टरजी बड़े अच्छे आदमी हैं।

सोचता हूं गणित पढ़ाने के लिए प्रमोद को बुला लूँ, पता तो तुम जानती हो न?

जी हाँ जानती हूं। पर मैंने गणित छोड़कर संस्कृत लेली है।

संस्कृत? बड़ी पगली है तू। चल सकेगी तुझसे संस्कृत?

काका जी! सबसे रुचिकर और सरल तो मुझे वही लग रही है, बता दूं आपको अपने बनाये हुए अनुवाद?

रहने दे—दिखा लेना फिर—अच्छा तो अब प्रमोद की आवश्यकता नहीं रही।

सुमन चुप होकर प्रमोद की उन बातों को सोचने लगी जो उसने उसकी पढ़ाई के बारे में कहीं थीं और फिर बोली! काका जी—प्रमोद बाबू स्वयं ही आयेंगे। वैसे तो आवश्यकता नहीं पर यदि वे समय दे सकेंगे तो इतिहास उनसे पढ़ लिया करूंगी। और यों तो मास्टर साहब पढ़ाते ही हैं इतिहास भी।

तो जब काम चल ही रहा है तब क्यों बेचारे को कष्ट दिया जाय। अच्छा जा अपना काम कर।

❀ ❀ ❀

सुमन अपने कक्ष में जाकर सोचने लगी। आशा और सफलता का प्रकाश जीवन के अंधेरे को मिटाने लगता है। उत्साह से सोई शक्ति जागृत हो उठती है। सुख, दुख का अनुभव करने पर ही शोभा पाता है। इसीलिए तो पपीहा स्वाति की बूंद के लिए, चकोर चांदनी के लिए, योगी अपनी सिद्धि के लिए कष्ट सहते हैं। तभी उन्हें आनन्द की उपलब्धि होती है। मैं भी पढ़ाई के लिए भयंकर कष्टों को सहने के लिए उद्यत हूँ। कल मास्टर साहब से दो एक बात पूछूँगी। सोचती हूं अब पढ़ाई चल निकलेगी। वह सोचते सोचते सो गई।

दूसरे दिन मास्टर साहब को भोजन कराने के पश्चात् सुमन ने प्रश्न किये—

मास्टर साहब! जीवन का सही मार्ग क्या है?

जिस पर चल कर वह सुखी रह सके, और इसके लिए त्याग, सहानुभूति और उदारता का होना अनिवार्य है। त्याग से परोपकार की भावना आती है। सहानुभूति से सबके सुख दुख को समझने की शक्ति आती है और उदारता से मैत्री की भावना दृढ़ होती है। जिससे प्रेम का प्रसार होता है।

इन बातों के लिए जीवन को इनका अभ्यासी बनाना पड़ता है।

प्रेम क्या सभी से हो सकता है ?

हाँ उसकी कोटियाँ भिन्न होती हैं पर लक्ष्य एक ही होता है और वह है विरोध पर विजय ! खैर यह बताओ कि काका जी शिकार पर कब जा रहे हैं ?

चार पांच दिन में जाने को कहते हैं ! पर उनका स्वास्थ्य तो ठीक ही नहीं है ! फिर भी नहीं मानते। काकी जी को और मुझे भी साथ चलने को कहते हैं। पर मैं पढ़ाई के मारे जाना नहीं चाहती।

काकी जी के साथ तो तुम्हें भी जाना ही चाहिए। पढ़ाई तो चलती ही रहेगी।

नहीं मास्टर साहब ! काकी जी पढ़ाई के कारण मुझे छोड़ सकती हैं।

तो यहां तुम्हारे साथ कौन रहेगा ?

नौकर नौकरानियाँ तो हैं ही और आजकल हमारी मौसी भी यहाँ आई हुई हैं वे भी रहेंगी।

पढ़ने में तुम्हारी अधिक रुचि जान पड़ती है।

आप जैसे व्यक्ति के मिलने पर भी यदि रुचि उत्पन्न न हो तो दुर्भाग्य ही तो होगा। मास्टर साहब पढ़ाई के सामने मैं सब कुछ भूल बैठती हूं। अधिक समय तो अब आपकी प्रतीक्षा में ही कटता है।

प्रतीक्षा इसलिए कि मैं अधिक से अधिक समय पढ़ाऊँ ?

आपतो न जाने क्या सोचते हैं ? कुछ कह दूंगी तो आपको लहर आ जायगी और·······

और फिर मैं शायद पढ़ाना ही छोड़ दूं यही न ? किसने बताई तुम्हें मेरे लहरीपने की बात।

रूपो ही तो कहती थी। कहती थी मैं भी तो पढ़ चुकी हूँ इन्हीं मास्टर साहब से, पढ़ाते तो इतना अच्छा हैं कि कुछ कहा नहीं जाता पर हैं लहरी। मन में आया तो आएँगे, लहर उठी तो गायब ! फिर कई दिन तक आने का नाम ही न लेंगे। मस्तमौला हैं। वह यह भी कह रही थी—यदि

मास्टर जी को घर का व्यवहार रुच गया तो अपने सगे सम्बन्धियों से भी अधिक अपने बन जाते हैं। हमारे घर तो पांच वर्ष तक पढ़ा चुके। हमारे तो अपने सगों से भी अधिक हैं। उनका स्वभाव पहचानने पर बेधड़क बातें करने में मजा आता है।

"रूपो बनाती है तुम्हें, हाँ लहरी अवश्य हूँ," कहकर मास्टर जी खिलखिला कर हंस पड़े।

अच्छी दुर्बलता पकड़ी है तुम लोगों ने मेरी, पर याद रखना क्रोध आने पर तुम्हारा क्रोध भी रफूचक्कर हो जायगा।

वह तो योंही भागता जा रहा है। पर अब मुझे भी आपको देखकर डर नहीं लगता।

अच्छा देखूंगा कैसे नहीं डरेगो।

आपका काम पूरा कर देती हूँ फिर डर किस बात का ? हां लहर से अवश्य डरती हूँ।

"अच्छा तो अब कल न आने की लहर उठ रही है। कल से एक हफ्ते के लिए बाहर जा रहा हूँ। तुम भी शिकार पर चली जाना।" उसका मन टटोलने के लिए उन्होंने कहा।

डरती हुई सुमन बोली—मास्टर साहब ! ऐसा न कीजिएगा।

डर गई न।

उसकी आँखों में आंसू आ गये। जाइए अभी चले जाइए। हो गई मेरी पढ़ाई। भाग्य में पढ़ना ही नहीं तो आप भी क्या करेंगे ?

तुम कहोगी तो यात्रा स्थगित कर दूँगा, पर रोना मत।

मेरे रोने से आपका क्या बनता बिगड़ता है ? मैं आप को रोकने वाली कौन होती हूँ ? जाएँ आप, पर लौट आने पर मुझे भी यहां न पायेंगे। देख लेंगे आप मेरी जिद् को भी। सुमन ने पूर्णममता और विश्वास से कहा।

यदि मैं रुक गया तो ?

तो क्या ? मैं तो यह चाहती ही हूँ।

तो लो रुक गई लहर अब तो घर जाने दो।

अभी से क्या कीजिएगा घर जाकर ?

दो एक लेख पूरे करने हैं। चलो बाहर तक छोड़ने न चलोगी ?

सुमन उन्हें फाटक तक छोड़ने गई पर आज वह उनके चले जाने पर भी अधिक देर तक फाटक पर ही खड़ी रह गई। उसे ध्यान आया कोई देख तो नहीं रहा है। लौटकर वह काकी जी के पास गई, काकी जी बोलीं—कल शिकार पर चलने की तैयारी होगी। तुम्हें भी चलना होगा।

हा ! शिकार पर जाने से मेरी पढ़ाई चौपट हो जायगी।

इच्छा हो तो चली चलो, जी बहल जाएगा।

नहीं मैं इतने दिनों में कुछ और पढ़ लूँगी। मास्टर जी बाहर जाने वाले थे मैंने उन्हें भी रोक लिया है।

तो तुमने उन बेचारों के काम का भी हर्ज कर दिया।

क्या कहेंगे वे तुम्हें कि तुम कितनी स्वार्थी हो।

नहीं वे ऐसा नहीं सोच सकते, वे बड़े उदार हैं।

तो तुम बन गई उन की पक्की चेली। कल मास्टर जी को आने दे तेरी शिकायत न की तो देखना—

बात सुन कर सुमन रो उठी।

अच्छा अच्छा नहीं करूंगी तेरी शिकायत। काकी जी सुमन की प्रकृति में घोर परिवर्तन देखकर मन ही मन प्रसन्न हो रही थीं, एक अच्छे पथ-दर्शक का यही तो प्रभाव होता है। बेबी का भी तो यही हाल है। उस पर भी इनकी शिक्षा का अच्छा प्रभाव पड़ा। ब्याह होने पर भी आज तक उसकी ससुराल वालों ने कोई शिकायत नहीं की। उनका मन मास्टर साहब के प्रति श्रद्धाभाव से भर गया था।

दूसरे दिन शाम को अतिथि के रूप में कानपुर से सन्नो की माँ वहाँ

आई। काकी जी के पास सुमन को बड़े प्रेम से बैठे देखकर उन्हें अच्छा न लगा। पास जाकर बोली—सरकार ने सुमन को अपने ही पास रख लिया अच्छा किया। और अब तो यह लड़की शहरी लगने लगी!

सुमन को साथ रखने से जी लगा रहता है। सन्नो को नहीं लाईं आप?

"नहीं सरकार! वह आपके पास आने को जिद तो कर रही थी, पर इस समय उसे एक मास्टर जी पढ़ाने आते हैं। पढ़ाई की हानि होगी यह सोचकर उसे साथ नहीं लाई। आपका स्वास्थ्य तो अच्छा रहता है?" सन्नो की माँ ने ममता जताते हुए कहा।

"नमस्ते मौसी जी" सुमन ने कहा।

जीती रहो! यहां जी लग जाता है बिटिया तुम्हारा?

जी हाँ! काकी जी के साथ सब कुछ ठीक लगता है।

"क्या यह लड़की कुछ पढ़ती भी है?" उसने काकी जी से पूछा।

हाँ घर पर ही मास्टर साहब इसे पढ़ाने आते हैं।

"अच्छा किया आपने, किसी के जीवन को बना देने से पुण्य लाभ ही होगा," कह कर वे अपने कार्य में व्यस्त हो गईं। काकी जी की चिन्तन परम्परा की शृंखला उलझती चली गई।

धन दौलत, सुख ऐश्वर्य सब का उपभोग मानसिक शान्ति पर निर्भर है। सब कुछ होने पर भी यदि मानसिक शान्ति नहीं तो कुछ नहीं। तालाब की शान्ति को एक छोटी सी ही कंकड़ी भंग कर देती है। मनो दूध को खटाई की एक छोटी सी ही बूंद अपेय बना देती है, जीवन कुसुम को मृत्युकीट कितनी खामोसी से काटता चला जा रहा है, कुछ पता नहीं चलता। चिन्ताओं के जाल में फंसा जीवन क्या जीवन है—क्या जीवन में शान्ति किसी को मिलती ही नहीं? संघर्षों का नाम ही तो जीवन है, पर ऐसे भी संघर्ष किस काम के जो जीवन को ही समाप्त कर दें। क्या है मनुष्य का जीवन कुछ समझ में नहीं आता। "सर्वे

दु:खमयम् जगत्" ठीकही तो है। पर इन सबका चालक और स्वीकारक मन ही तो है। मन की ममता जिधर चाहे घुमा दे। पर हमने तो अपने मनस्तोष के लिए यह समझ रखा है कि हमने कभी किसी का बुरा नहीं चाहा। हाँ पूर्व जन्म के कर्मो के फल से यहाँ कुछ भोगना पड़ेगा तो वह बात दूसरी है। वे उठ बैठीं। रात आँखों पर ही बीत गई।

प्रभात काल सुमन जब प्रणाम करने आई तो उसने काकी जी को अलस मुद्रा में देखा। उसने चरण स्पर्श करते ही समझ लिया इन्हे ज्वर है। बोली—दा! रात भर सोई नहीं मालूम होता है।

"हाँ सुमन! नींद नहीं आई। तुम्हारे काका जी बाहर गये हैं अभी तक नहीं आये। चिन्ता भी हो रही है, न जाने उनकी तबियत कैसी है। बातें हो रहीं थीं कि काका जी के आगमन की सूचना नौकर ने दी, आँखें मलती हुई वे उसी कक्ष में गई जहाँ काका जी आकर बैठे थे।

मीनाक्षी! कैसी तबियत है? बड़ी सुस्त जान पड़ती हो।

आप आगये! सब ठीक ही है। आप तो यहाँ से जाने पर सब कुछ भूल ही जाते हैं।

"ऐसी बात तो नहीं है, पर नारी हृदय की स्वाभाविकता के कारण तुम शीघ्र चिन्तित हो जाती हो। खैर, दिल्ली से हाथों के कंगन ले आया हूँ। देखो तो पहन कर" कहके उन्होंने सन्दूक में से कंगन निकाल कर दिये। बोले अच्छे लगते हैं इन्हें पहन कर तुम्हारे हाथ।

अच्छे क्यों न लगेंगे। आपका मन अच्छा मानेगा तो अच्छे हैं, मुझे तो आपकी खुशी से खुशी है।

डाक तुमने देखी होगी—कोई खास पत्र तो नहीं आया?

रीवाँ के बन में शिकार खेलने की आज्ञा मिल गई। ऐसा एक पत्र आया है।

तो अब शीघ्र प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

सब कुछ ठीक हो जायेगा। आप यहाँ के कार्य समाप्त करलें। कह कर वे आवश्यकीय कार्य में लग गई।

दो दिन बाद शिकार पर चलने की तैयारी हो गई। सुमन ने पढ़ाई के कारण शिकार का मोह त्याग दिया। नौकर नौकरानियों के अलावा सुमन और सन्नों की माँ ही थीं वहाँ, कोठी का वातावरण कुछ उदास था। सुमन बनारसी बाग घूमने चली गई। वहाँ एक बेंच पर बैठकर वहाँ का दृश्य देखने लगी। जी ऊबा तो टहलते-टहलते सोचने लगी—मास्टर साहब ने पढ़ाया था—

"शरीरं क्षण विध्वंसी, कल्पान्तस्थायिनो गुणाः" गुण स्थायी रहेंगे—शरीर नहीं। और गुण ग्रहण करने की यही अवस्था है। वह वहां से भी घबरा कर घर गई और नित्य क्रमानुकूल अपनी पुस्तक पढ़ने लगी। एक मासिक पत्रिका के पन्ने को उलटते ही उसकी दृष्टि उन पंक्तियों पर पड़ी जिनमें लिखा था। "संसार में व्यथा सस्ती है, मँहगी है तो केवल मस्ती। रुदन सर्वत्र है, हँसी कहीं कहीं। आशा स्वल्प, निराशा अधिक। पर कार्यार्थी मनस्वी इन बातों की चिन्ता नहीं करते। जिन्हें कुछ करने की धुन होती है वे ही संसार को स्वर्ग रूप में देखते हैं। वे कीचड़ में कमल को देखते हैं और विषैले सर्प में मणि को," इन पंक्तियों को पढ़कर उसे सान्त्वना मिली। वह चल दी मौसी के पास।

मौसी के पास बैठकर वह नाते रिश्तेदारों का दास्तान सुनती रही। फिर मौसी ने उसके विवाह की चर्चा छेड़ी। बोली लड़का बड़ा सुन्दर है। मैं तेरी शादी वहाँ कराने के लिए तेरे पिता जी से कहूँगी। यहीं तो रहता है लड़का। सुमन बोली—मौसी जी ! मैं शादी ही नहीं करूंगी। अभी तो पढ़ाई से ही शादी कर रही हूँ। और फिर मैं परवश हूँ। पिता जी काका जी और काकी जी जानें।

सुमन ! मैंने तो बेटी तेरे कल्याण के ही लिए कहा। उम्र के साथ शादी होने में जीवन सुखी रहता है।

सुमन चुपचाप सुनती रही। सोने का समय होने पर अपने कमरे में आकर लेट गई। शरीर उसका पलंग पर था और मन बे लगाम के घोड़े की भांति दौड़ रहा था। उसके मन में दीदी के विवाह का विचार आया।

एक मास बाद ही वह अपने पति के साथ चली जायगी। वह अपने पति का प्रेम पाकर हमें भूल जायगी। कितना सुन्दर होगा दीदी का जीवन ! हाँ प्यार का राज्य होगा। अभिलाषायें निरावरण होकर नृत्य करेंगी। पर समय मेरे लिए भी तो रुका नहीं रहेगा। मुझे भी तो कभी इसी कोटि में आना होगा। फिर मौसी से ही क्यों न पूछ लिया मैंने कि कौन है वह लड़का और कैसे स्वभाव का है ? अपने को छिपाने के लिए मैंने क्यों कहा कि मैं शादी न करूंगी ? उसने मास्टर साहब के विषय में भी सोचा-कितने विद्वान हैं वे ? कितना प्रभाव है उनका ? कितनी लगन से पढ़ाते हैं ? भला बुरा सभी कुछ सरलता से समझा देते हैं। उनके सामने कोई बात रहस्य की है ही नहीं। और प्रमोद—वह भी तो इन्हीं की प्रवृत्ति का सा है। पर ···कुछ देर के लिए वह जाने कहां चली गई। उसे ध्यान आया—मास्टर जी ने कहा था—अब पढ़ने में वर्षों का रास्ता महीनों में और महीनों का रास्ता दिनों में तय करना होगा। चल सकोगी ? मैंने कहा था—आप शक्ति देते रहेंगे तो क्यों न चलूंगी ?

तब वे हँस पड़े थे। मैं भी समझ रही हूँ कुछ ही दिनों में मास्टर साहब ने मेरी काया पलटदी। भला शिकार खेलने मैं न जाती ? पर न जासकी, और घर के नौकर तो अब मुझे देखकर हँसते हैं। कहते हैं मास्टर साहब के आने से भैय्या का गुस्सा तो भाग गया। मास्टर साहब सचमुच दिव्यात्मा हैं। विचारों के विविध प्रेतों ने उसे घेर रखा था।

दूसरे दिन पढ़ाई के समय आने पर वह मास्टर साहब की प्रतीक्षा करती रही। उनके आते ही आँखों में आँसू भरकर वह पुस्तक खोलकर पढ़ने बैठ गई। मास्टर साहब उसकी इस नवीनता पर कुछ विचार कर रहे थे कि वह बोली—आज इतनी देर से क्यों आए आप ? और अपलक दृष्टि से मास्टर साहब की ओर देखने लगी।

मास्टर साहब हँस दिये। इसीलिए तो महामूर्ख कहता हूँ। कोई रोने का विषय हो तो रोया भी जाय।

आपके लिए तो कोई बात कुछ नहीं होती। आप तो न जाने किन

तत्त्वों के बने हैं। आप के विलम्ब से आने पर न जाने मुझे क्यों रोना आ जाता है।

अच्छा अच्छा विलम्ब न किया करूँगा। अब तो हँस लो।

सुमन ने हँसते हुए कहा आप विचित्र व्यक्ति हैं।

विचित्र ही सही--यह तो बताओ कितने दिन बाद लोग शिकार पर से वापस आएँगे ?

उदासीन भाव से वह बोली—चार पाँच दिन में।

आज तुम्हें क्या हो गया—तबियत तो ठीक है ?

हाँ उतनी ही ठीक जितनी रेगिस्तान में घूमने वाले की।

मानसिक अशान्ति ही सब दुखों का मूल है सुमन ! मैं समझता हूँ तुम दुखी हो पर यह क्यों नहीं समझती कि स्वप्न-लोक और सत्य-लोक में बहुत भेद है। कल्पनाओं के जाल में फँसे हुए मनुष्य का मन दुर्बल हो जाता है और उसे लक्ष्यहीन होने भी देर नहीं लगती। धैर्य पर भविष्य निर्भर रहता है।

मास्टर साहब ! क्या करूँ कभी कभी जी बड़ा दुखी हो जाता है। मुझे यह विश्वास सा हो गया कि मुझे कभी भी किसी भी काम में सफलता नहीं मिल सकती।

यह तुम्हारा भ्रम है। मैं स्वयं तुम्हारे लिए कितना चिन्तित रहता हूँ तुम्हें कैसे बता दूँ।

मेरे लिए आप क्यों चिन्ता करते हैं ? क्या सोचते हैं आप ?

सोचता हूँ तुम्हें किस प्रकार यथाशीघ्र कुछ योग्य बना दूँ।

किस प्रकार तुम्हारे निर्मूल विश्वासों के सबल वृक्षों को उखाड़ फेंकूँ। तुममें सब शक्तियाँ हैं पर तुम अपने आपको पहचान ही नहीं रही हो।

मास्टर साहब ! मन की अशान्ति पर अधिकार नहीं हो रहा है।

तुम्हारी मानसिक अशान्ति को ही दूर करना तो मेरा काम है।

पढ़ने के पश्चात् मेरा दिमाग शून्य सा हो जाता है। पर इतना जानती हूँ कि यह मेरे जीवन का प्रथम अवसर है जब मैं ढंग से पढ़ रही हूँ।

ढंग से लग जाने पर समझ लेना चाहिए कि आधा काम पूरा हो गया। जानती हो सुमन! ढंग पर लगने से सुख मिलता है और एक क्षण का सुख जीवन की अमूल्य वस्तु होती है।

मास्टर साहब! जी चाहता है एक दिन पढ़ाई बन्द करके आपसे जी भर कर बातें करलूँ।

"अवश्य, इससे भी तो ज्ञान बढ़ता है। आज पढ़लो। इतनी बातें तो हो गईं। फिर किसी दिन जी भर कर भी बातें कर लेना," कहकर उन्होंने पढ़ाना प्रारम्भ किया।

घड़ी ने पाँच बजाये और मास्टर साहब उठ खड़े हुए। सुमन को उनका उठना खल गया। पर वह बोली कुछ नहीं, नित्य की भाँति फाटक तक उन्हें पहुँचाकर शून्यहृदय पर एक बोझा सा लादकर वह लौट आई।

❀ ❀ ❀

समय चलता गया। घड़ी की सुइयाँ घेरे बनाती गईं। चाँद सितारे मुस्कुराते रहे। प्रकृति अपनी चाल पर मस्त होकर परिवर्तन दिखाती रही। सुमन की पढ़ाई उसकी भावनाओं के साथ-साथ समय के रथ के पहियों का अनुगमन करती रही, सुमन के कल्पना-लोक में शहनाई बज उठी। उसकी विचारों की दुनिया में कोई हँस रहा था, उसकी प्यासी आँखों के सामने मृगमरीचिका का जाल था। वह उस लोक में थी जहाँ स्वप्न और सत्य की सन्धि है। वह उस हरे-भरे उद्यान में थी जहाँ रंग बिरंगे महकते पुष्पों को देखने भर का अधिकार हो। मधुर भावनायें अंगड़ाईयों के सहारे उठ रही थीं। सुमन न उन्हें कुचलने को तैयार थी, न अपनाने को। मास्टर साहब को कहीं लहर उठ गई और वे पढ़ाने न आये तो? किसी और से पढ़ भी तो नहीं सकूँगी अब, इनका पढ़ाना भा गया। क्यों न एक दिन मास्टर साहब से स्पष्ट कह दूँ कि यदि उन्होंने पढ़ाना छोड़ा तो

वे भी देख लेगें कि सुमन..................पर उनसे ऐसा बोलने का साहस भी तो नहीं होता। उसने छत पर जाकर घूमना प्रारम्भ कर दिया। संध्या का धूमिल वातावरण और सामने वाली कोठी का वही दृश्य। पर आज वहाँ का वातावरण उदास था, आकृतियाँ थीं, प्रकाश था पर............

वह वहां से भी अशान्त होकर अपने उसी कमरे में आकर विचार करन लगी जिसमें आकर उसे कुछ शक्ति मिल जाती है। सुमन को झुनिया की बातें भी याद आईं।

आह ! उन दिनों उसे कुछ समझ होती तो.......

इसी भाँति उसका समय कट रहा था। कभी अपने घर की याद करके रोती, कभी सहेलियों के और माँ के प्यार के लिए तरसती और कभी अपनी पढ़ाई तथा मास्टर साहब के विषय में सोचने लगती। "क्या करूँ अपने इस मन को। ओह ! ज्यादा सोचना भी ठीक नहीं। भाग्य की चालों का खेल खेलना ही पड़ेगा," वह सोचती ही रही।

आज ठीक छठे दिन काका जी शिकार पर से लौट आये थे। कोठी पर चहल पहल मची है। सब कुत्ते उनके पास लाए गये। बड़े प्यारे प्यारे कुत्ते। उन्होंने क्रमशः उनकी पीठ थपथपाते हुए उन्हीं से उनकी कुशल पूछी। फिर सबसे छोटे कुत्ते को गोद में लेकर बोले—तू तो बड़ा ही नट-खट है। क्यों रे ! रात में बाहर तो नहीं निकल जाता था ? और सफेद कुत्ते से पूछा—तुम्हारी ट्रेनिंग बराबर जारी रही ? डा० आता था ? कुत्ते सिर हिलाते रहे। कुत्तों को यथा स्थान पहुँचा दिया गया। वे स्नाना-गार में नहाते हुए यों सोचने लगे—

मनुष्य को उसकी ममता कहाँ कहाँ बांध देती है। जब तक प्राण हैं—चहल-पहल, संगी साथी, इष्ट-मित्र अपने पराये। पर ममता का घेरा प्राणिजगत के सीमा का अन्त स्पर्श करता है। अपने सम्पर्क में आने वाले सभी इस ममता के भागी हों तो कितने संतोष की बात है। बड़े का बड़प्पन सबके सुख के ध्यान रखने में ही तो है। मरते तो सभी हैं पर

मरना उसी का सार्थक है संसार जिसकी याद तो कर लिया करे। बनाऊँगा एक ऐसी योजना जिससे विश्वकल्याण की भावना का स्रोत बह निकलेगा। पर अभी जरा कुसुम के हाथ पीले कर दिये जायँ तब। स्नान के पश्चात् वे भोजन पर सब अतिथियों के साथ बैठे। उनकी प्रफुल्ल गंभीर मुखमुद्रा पर प्रसन्नता खेल रही थी। अन्तःकरण के विचार अपनी झलक दिखा रहे थे। एक सज्जन ने पूछा—स्नान करने पर कितनी स्फूर्ति आ जाती है? पर कभी-कभी क्षण भर में आप उदास क्यों हो जाते हैं? एक दिन शिकार खेलते समय भी आप ऐसे ही दिखाई दिये थे। इन दिनों आपका चिन्तन बढ़ता चला जा रहा है ऐसा ज्ञात होता है। काका जी! खाओ, पिओ, मस्त रहो। यही है जीवन की परिभाषा। न कुछ साथ लाये हैं न ले जायेंगे। भगवान की दी हुई वस्तुओं का उपभोग सानन्द क्यों न किया जाय? "यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्" हाँ यह तो बताइए सायं काल क्लब चल रहे हैं या नहीं? उत्तर मिला यदि ठा० हरवंशसिंह न आए तो चल सकूंगा। भोजन समाप्त हुआ। लोग विश्राम करने लगे।

सायंकाल ठा० हरवंशसिंह आ गये और काका जी की उनके साथ अपने काम काज की बातें होने लगीं।

काकी जी सुमन से इतने दिनों की उसकी पढ़ाई के विषय में चर्चा करती रहीं।

समय पंख फैलाकर उड़ता गया। उसे किसी की प्रतीक्षा का अवकाश कहाँ? कोई कितना काम कर चुका या नहीं कर चुका उसे इसका लेखा जोखा करने का भी अवकाश नहीं। उसके साथ जो चलना चाहे चले। सुमन की पढ़ाई चलती रही और कुसुम की शादी के दिन भी समीप आ गये। विधिवत् निमंत्रण-पत्र सर्वत्र भेज दिये गये। काका जी काकी जी और सुमन ने भी गाँव की ओर प्रस्थान किया। आखिर तालुकेदारी का ब्याह था। नाम पर धब्बा तो नहीं लगाया जा सकता था, चौगुने उत्साह से सब तैयारियाँ हो रही थीं।

आज विवाह का दिन था। शंकरपुर की शोभा ऐसी लग रही थी, मानो स्वयं लक्ष्मी ने आकर उसे अलंकृत किया हो। वृक्षों पर भी बिजली

के बल्ब शोभा पा रहे थे। सतरंगी इन्द्र धनुष रात्रि में ही देखने को मिल रहा था। सड़कों की सफाई तो सम्भवतः आज पहली ही बार हुई थी। उनके अन्तस्ताप को पानी छिड़का कर शान्त कर दिया गया था। रिकार्ड बज रहे थे। नारियाँ मंगलाचरण गान में व्यस्त थीं, ढोलक, मजीरे अपने जोर पर थे। बैण्ड वाले अपना सारा कौशल प्रदर्शन कर रहे थे। जनवासा विश्वकर्मा की कृति के उपहास के लिए दम्भ भर रहा था। बारात के आने पर सालंकृत गजराज सूँड से आने वालों को सलामी दे रहे थे। बारात आ गई, नव-वधू के रूप में कुसुम को उसकी सहेलियाँ उसे सजा रहीं थीं; उसका सौन्दर्य अलंकारों से निखर उठा था। लगन आया, कुसुम की जीवन नौका वेद मंत्रों की साक्षी पर अग्नि के समक्ष सबल, कुशल कर्ण-धार के हाथ सौंप दी गई।

सुमन यह सब तमाशे के रूप में देख रही थी। विवाह का कृत्य समाप्त होने तक सुमन दीदी की अन्य सहेलियों के साथ वर महोदय क मजाक करती रही। तरह-तरह के प्रश्न उनसे पूछती गई। विवाह सम्पन्न हो गया।

विवाह सम्पन्न हुआ, तीसरे दिन बारात के विदाई का समय भी आ गया। सबका यथोचित सम्मान किया गया। कुसुम के जाने के समय घर वालों की वह स्थिति थी जो उस धरोहर धरने वाले की होती है जो धरोहर की वस्तु को अपनी समझ कर ममता कर बैठता है, और फिर दूसरों को सौंपने पर अधीर हो उठता है। हो भी क्यों न ? माँ के हृदय का प्यार, पिता के नेत्रों का प्रकाश, घर को शोभा आज सबसे दूर हो रही थी। पराये घर जाकर कुसुम की क्या स्थिति होगी यही सबको चिन्ता थी।

काका जी की बरसती आँखें सावन के बरसते मेघों की याद दिला रहीं थी। काकी जी हारे जुआरी की भाँति आँखों के मोतियों का हार गूँथकर भेंट चढ़ा रहीं थीं। कुसुम सबसे बिछुड़ने के दुख से चीख मार कर रोना चाह रही थी पर लज्जा के आवरण ने उसके रुदन को सिस-कियों में बदल दिया। उसकी कलपती हुई एक-एक स्वास पति के साथ

जाने पर भी जाना नहीं चाहती थीं। अपरिचितों के बीच कैसे निपटेगी ? कौन माँ का प्यार वहाँ देगा ? अपना न पराया। सोच सोच कर वह और अधिकाधिक सिसक रही थी। सुमन भी अपने को न रोक सकी। कुसुम माँ को भेंटकर रो रही थी और सुमन दीदी को भेंटकर।

बारात विदा हुई। कुसुम की ममता सिसकियों के रूप में गाँव की सीमा के भीतर ही रह गई। पर धन, पर धरोहर सोचकर घर वाले यद्यपि आज भारमुक्त हो गये थे, फिर भी ममता ने उन्हें व्यथित कर दिया था। सूना घर देखकर उन्हें अब परिश्रम की थकान ज्ञात होने लगी— रात्रि में निद्रा ने उन्हें अपनी गोद में लेकर सब कुछ भूलाने के लिए बाध्य कर दिया।

प्रभात होते ही जहाँ कल ही चहल-पहल, सजधज का वैभव था वहाँ उदासी का साम्राज्य हो रहा था। रहे सहे मेहमान भी अपनी अपनी राह ले रहे थे। काका जी एवं काकी जी को भी लखनऊ आना था पर वे लाल साहब के आग्रह से दो दिन और वहाँ ठहरे। सुमन को भेजने के लिए लाल साहब और उनकी स्त्री तैयार नहीं थे और काका जी उसे साथ लेकर आना चाहते थे। काका जी ने कहा—

सुमन की पढ़ाई अच्छी चल रही है। व्यर्थ में आप उसे यहाँ रोक रहे हैं।

सरकार ! बात तो ठीक है पर, अभी कुसुम के जाने का दुख दूर नहीं हुआ, सुमन रहेगी तो अधिक उदासी न लगेगी।

क्या अजीब आदमी हैं आप भी ! अपनी उदासी को दूर करने के लिए आप उसका भविष्य ही बिगाड़ना चाहते हैं। ऐसी ममता किस काम की जो बच्चों का भविष्य ही बिगाड़ दे। मैं सुमन को अवश्य साथ ले जाऊँगा।

मैं कुछ ही दिन बाद उसे भेज दूँगा सरकार।

पर सरकार.................

लाल साहब ! इस विषय में मैं आपकी कुछ न सुनूँगा। आप नहीं

-मनेंगे तो मेरा कोई वश तो है नहीं, आपकी सन्तान ठहरी पर आप मोह -वश कुछ नहीं समझ रहे हैं।

काका जी के इतने कहने पर फिर लाल साहब को कुछ बोलने की हिम्मत न हुई। सुमन की माता जी ने भी फिर कोई बाधा न डाली। स्नेह के बन्धन दोनों ओर आकर्षक बने हुएथे। सुमन को भी दो दिन बाद तैयार करके काका जी के साथ भेज दिया गया।

कुसुम अपनी ससुराल गई, सुमन काका जी के साथ। घर शूना-शूना हो गया। कुसुम शादी को जितनी घृणा की दृष्टि से देख रही थी—उसे ज्ञात भी न हुआ कि इतनी शीघ्रता से वह पराई हो गई। सास, ससुर, ननद सभी का प्यार उसे मिला। पर उस प्यार में वह विशेषता न थी जो माँ बाप के स्नेह में। कुछ ही दिन बाद तो बेचारी को ससुराल अजीब लगने लगी। वह चाहती थी माँ मुझे जल्दी बुलाले पर जब ससुराल वाले जाने देंगे न ! सुबह से शाम तक वह घर के कार्य में व्यस्त रहने लगी। फिर भी सास उसे कुछ न कुछ ताने सुनाया ही करती थी। सेवा में कुसुम ने कोई कमी नहीं रखी, पर उसके भाग्य में मानो ताने सुनने लिखे ही गये थे। एक आध बार साहस करके उसने पति से भी कहा; पर उत्तर मिला—माँ के सामने बोलने की हिम्मत नहीं। कुछ दिन काट लो फिर साथ ले जाऊँगा। सीधी-साधी कुसुम को धैर्य हो गया। संसारी प्रपञ्चों से वह अनभिज्ञ थी और फिर ससुराल की राज-नीति के दाँव-पेचों को वह समझती भी कैसे ? कोई रिश्तेदार आता तो उसे प्रशंसा सुनने को मिलती। कोई आता तो दश शिकायतें की जातीं। उसके लिए कुछ सान्त्वना का आधार था त उसकी छोटी ननद शारदा। पर शारदा भी माँ की मुद्रा से डरती थी। फिर भी वह एकान्त में कुसुम को उदास देखकर कहती—भाभी माँ तो यों ही बक-झक लेती हैं। बुरा न माना करो। कुसुम सोचती—क्या इसी को ससुराल कहते हैं। कैसे वह इन लोगों के हृदय में प्रवेश करे, कैसे इनके प्रेम को पावे। कहाँ है इसकी ताली कुञ्जी, और कुछ न समझ कर वह फिर अपने काम में लग जाती।

दो मास बीत गये। उसका जीवन जिन रेखाओं के भीतर था उनसे बाहर न आ सका। वह उन सीमाओं के बन्धन में बंधी थी जिसे प्रारम्भिक युग ने नारी को निरीह समझ कर वहां डाल दिया था। कुसुम नये युग की होती हुई भी उस घर में पुरानी पीढ़ी की ही बनी रही। उसे इस बात से विद्रोह न था। पर इतना तो अवश्य चाहती थी कि उसका भी यहाँ कोई अस्तित्व रहे।

उस दिन सास ने कैसे कड़क कर कहा उस से—जब देखो तब नये नये वस्त्र, नये नये ठाठ। दिया है न तुम्हारे बाप ने जीवन भर के लिए भरण पोषण को! हमें अच्छी नहीं लगतीं वह तुम्हारी बातें। कुसुम हलाहल को भी अमृत समझ कर पी रही थी, मीरा ने भी तो पिया था विष। वह मरी तो नहीं। सहन शक्ति का उसमें अभाव न था।

इस घर में उसका भी अपना अधिकार है। पति के होते हुए उसे क्यों नगण्य समझा जाय। उसे माँ के पास जाने की सबल इच्छा हुई। पति ने तरस खाकर एक पत्र कुसुम की माँ को बुलाने के विषय में लिखा दिया। उत्तर जब उसकी सास को मिला कि हम कुसुम को लेने आ रहे हैं, तो सास ने पुत्र और बहू दोनों का भली भाँति अभिनन्दन किया था। पर फिर अपने पुत्र का कुछ मोह करके वह उसके आग्रह को मान ही गई। कुसुम को थोड़े ही दिन बाद मायके भेज दिया गया।

मायके में आकर उसने माँ से कुछ नहीं कहा, पर उसके मुख पर वह हंसी नहीं दिखाई पड़ी जो शादी के पूर्व थी। माँ ने बार बार पूछने का प्रयास किया पर वह तबियत ठीक नहीं, कहकर टाल जाती थी। उसने सोचा एक मेरी ही ससुराल का यह हाल तो नहीं, यह तो सारे भारत का ही हाल है। मेरी सभी सहेलियां भी तो ऐसा ही कहती रहती हैं। और अभी तो थोड़ा ही समय हुआ है, सम्भवत: आगे चलकर जीवन सुखी रहे तो फिर वहाँ का हाल बताकर माँ को भी क्यों चिन्ता में डालूँ? जीवन की यात्रा इतनी ही सरल होती तो दुनिया रोती ही क्यों? अपनी रुचि, स्वभाव और मन के प्रतिकूल वातावरण मिलने पर ही तो मनुष्य

के धैर्य की परीक्षा होती है। अपने को भाग्य बल पर ही छोड़ने से कुछ शान्ति मिलेगी।

उसे आशा थी उसके पति के पत्र शीघ्र आया करेंगे। पर यह उसका भ्रम ही निकला। इससे उसके पति के प्रेम की कमी नहीं समझना चाहिए क्योंकि शारदा का पत्र आया था उसने लिखा था भैया आज कल टूर पर गये हैं। उसने पति प्रेम के लिए आत्मसमर्पण किया था। अतः उसके लिए कष्ट सहने का भी आदी बनाना पड़ेगा यह वह जानती थी। दिन कटते गये। उसे किसी कवि की यह कविता ध्यान आई—

नारी तुम कोमलतम विभूति,
वरदान तुम्हें है शाप हरे।
करना चाहे जो कुछ कर ले,
नारी होना भी पाप हरे!

नारी जीवन से ही पराधीन मानी गई। यह व्यवस्था उनकी है जो उनके सह अस्तित्व से सहानुभूति नहीं रखते थे। "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं" की कल्पना तो कम से कम कुसुम के मन में बैठ ही गई थी। शंकाकुल हृदय अपनी जटिलताओं का जाल अपने लिए बना लेता है। वह उसी में फँसता रहता है। उसकी शंका की वृद्धि असन्तोष का कारण बन जाती है। एक बार कुसुम को अपने पति के विषय में ऐसी ही शंका हुई। वे मेरी बात को कम. मां की बात को अधिक समझते हैं। क्या यह सत्य है?

पर वह इस प्रकार क्यों सोचने लगी? माँ का भी तो बेटे पर कुछ अधिकार होता है। वे भी तो कहते थे—माँ की बात भी माननी ही पड़ती है, पर तुम्हें कष्ट न होने दूँगा। यदि तुम्हें यहाँ कष्ट होगा तो फिर साथ ही ले चलूँगा। और शारदा वह निरीह बालिका उस घर में मुझसे वही तो सीधे मुँह बात करती है। होगा! आखिर जीवन तो वहीं काटना है। माँ बाप के घर किसकी सदा निभी। उसे सुमन की याद आई। वह भी लखनऊ चली गई। वह पढ़ रही है। अच्छा ही है।

❀ ❀ ❀

इधर काकी जी, काका जी सुमन को लेकर जब लखनऊ आ गये तो फिर से सुमन की पढ़ाई चलने लगी। एक दिन काका जी ने मास्टर साहब को बुला कर कहा—मास्टर साहब समय बहुत कम है। सुमन की पढ़ाई ऐसी हो जिससे स्वल्प समय में अधिक लाभ हो। तब मास्टर जी ने विश्वास के साथ हामी भरी थी।

जब मास्टर साहब सुमन को पढ़ाने बैठे तो वे यही सोच रहे थे कि किस प्रकार अध्ययन का क्रम बांधा जाय। उन्हें कुछ मौन देखकर सुमन ने कहा—

मास्टर साहब क्या सोच रहे हैं आप ?

तुम्हारे ही विषय में सोच रहा हूँ।

आप मेरे लिए इतने चिन्तित क्यों हैं ?

सुमन ! जहाँ आत्मीयता होती है, वहाँ अभेद की भावना आती है। और इस प्रकार की भावना आने से आत्मीय जनों के प्रति सहानुभूति में समान सुख दुख की भावना आ जाती है। और फिर तुम्हारे साथ तो मेरे यश, अपयश और मानसिक तोष भी तो है।

मास्टर साहब ! आपसे आज हठ पूर्वक आपके जीवन के सम्बन्ध में कुछ सुनने की इच्छा हो रही है। अनुचित न समझें तो बता दीजिए न।

क्या करोगी सुमन मेरे विषय में सुनकर। जब तक कोई बात न सुनी जाय तभी तक ठीक है। किसी के रहस्य का ज्ञान होने पर उसके प्रति न जाने कैसे-कैसे भाव उदित होते हैं।

ठीक कहते हैं आप पर······

अच्छा तो तुम सुनना ही चाहती हो तो सुन लो।

मैं एक ऐसे कुल में जन्मा हूं जो सरस्वती का उपासक तो रहा पर लक्ष्मी की कुदृष्टि उस पर सदैव रही। प्रकृति की गोद में पलकर अपने गाँव की अमराइयों में बचपन के दिन कटे। पढ़ने लिखने का चाव होने पर भी अर्थाभाव से अध्ययन की इच्छा पूर्ण न हो सकी। पिता की

मृत्यु बहुत पहिले हो चुकी थी। माँ का प्यार भी मुझे न मिला। कुछ चपल बालकों की संगति से देश-विदेश देखने की इच्छा ने गृह त्याग करा दिया।

बे घर बार ! बिना पैसे के भोजन का भी कहीं ठिकाना नहीं ! साथी छूट गये। उदर की ज्वाला ने विवश किया। एक घर की नौकरी कर ली। ओह ! कितने क्रूर होते हैं लोग, इसका अनुभव मैंने वहीं किया। नौकर भी तो आदमी हैं, उनकी भी आत्मा है, इन्द्रियों के रस उनके भी सभी की भाँति हैं। पर ऊपर से सभ्यता के चोले में मैंने वहाँ बर्बरता की क्रीड़ा देखी। भर पेट खाने के लिए तरसना पड़ा। और काम करने पर भी झिड़कियाँ खानी पड़तीं। बासी खाना खाते-खाते मैं बीमार हो गया। उन्होंने एक मास का वेतन देकर मुझे घर से बाहर कर दिया। छोटा ही तो था मैं। संसार की चालों से अनभिज्ञ। मुझ में भी भूख प्यास थी। जीने का मोह था। मैं उस विहंग के समान था जो उड़ना तो चाहता है उन्मत्त गगन में, पर पंखों में शक्ति नहीं। मैंने सोचा मुझ जैसे प्राणी का दुनिया में रहने से क्या ? मैं बिहार के विस्तृत वक्षस्थल की धूल छान रहा था। भूख से व्याकुल हो कर और थक कर किसी पेड़ के नीचे पड़ जाता था। अधिक क्या कहूँ ? नौकरी, मजदूरी, कुली गिरी से लेकर सब कुछ किया मैंने—पर एकलव्य की भांति लक्ष्य था पढ़ना। संसार में सभी प्रकार के लोग हैं, भले भी बुरे भी। एक सज्जन की सहायता से मैं गुरुकुल पहुँचा वहीं से मेरा जीवन बदला।

मैंने गुरुकुल का वातावरण देखा, रुच गया। जी लगाकर पढ़ने लगा। मेरी पढ़ाई से सभी सन्तुष्ट थे। १२ वर्ष बीत गये। मैंने अपने लक्ष्य की पूर्ति कर ली। अब तो सम्बल मेरे पास था, यात्रा का निश्चित मार्ग ढूंढना बाकी था। जिन दिनों निराधार घूमता था मेरा कोई न था। जब मेरे भीतर अन्तर्जगत का विस्तार हो गया तब मेरे सभी साथी हो गये। इतना जरूर कहूँगा कि बिहार में मेरा जीवन अच्छा कटा था। वहाँ राज-दरबार की शरण पाकर कुछ दिन में कृत्रिम जगत का दृश्य भी देख चुका था। पर राजमाता का मुझ पर कुछ दया दृष्टि थी, अतः वहाँ

कुछ दिन रह गया था। किन्तु मैंने सोचा कि जिस समाज में मनुष्यता के गीत धाक जमाने के लिए गाये जाते हैं, वहीं मनुष्य की सब से बड़ी दुर्दशा के प्राण घातक कीटाणु विद्यमान हैं। जहाँ सहृदयता केवल शब्दों में रहे, वहां मनुष्य के जीवन का मूल्य ही क्या ? तब मेरे समाने समाज का शोषक, भक्षक और तक्षक रूप नहीं था। क्षुधा तृप्ति कराने वाले को ही मैं देव समझता था। अब तो कुछ समझने लगा हूँ। मुझ जैसे अभागे भारत में न जाने कितने ही मेरी तरह जीवन बिता रहे होंगे। जिन से किसी को कोई मतलब ही नहीं।

सुमन ने बीच में ही टोकते हुए कहा—मास्टर साहब आपसे तो सभी का मतलब है।

हाँ सुमन ! अपने स्वार्थ साधन के लिए सब मुझ से प्यार करते हैं पर मैं प्यार किसी का भी न पा सका। मैंने कितने कष्ट सह कर अपने को इस रूप में पाया कि लोग मुझ से अपना कार्य साध सकें। पर उन दिनों की बात सुना रहा हूँ तुम्हें जब मैं विहार से चला था। मैंने स्वाभिमानी होने के कारण किसी के सामने हाथ तो नहीं फैलाया पर जीविका के लिए नौकरी अवश्य कर ली।

एकबार मैंने गुरुकुल से आने पर जब सोचा कि योग्यता का मूल्यांकन करने वालों का सर्वथा अभाव है डिग्री के माया जाल में फसे, स्वयं डिग्री धारी, बाघ की खाल को ही बाघ समझते हैं तो मुझे भी आवश्यता हुई कुछ और बाहरी डिग्री लेने की। इस लिए नहीं कि मुझ में ज्ञान की कमी थी, इसलिए कि सर्वत्र उन्हीं की माँग थी बहुत सोचने पर भी निर्णय न कर सका—अध्ययन की इच्छा से सुदूर गहन वन के वक्षस्थल की शोभा सा बना हुआ था एक गाँव। नाम न बताऊँगा। मैंने सुना था वहाँ कोई महा साहित्यिक पण्डित रहते हैं जो अच्छा पढ़ाते हैं। वहाँ उनकी अपनी पाठशाला है, सरकार भी कुछ मदद देती है। वहाँ से परीक्षाएँ दिलाई जाती हैं। मैं वहाँ पहुँचा। पढ़ने की समस्या तो हल हो गई। पर भोजन का प्रश्न वैसे ही बना रहा। दो दिन गुरुजी के घर ही भोजन

किया। तीसरे दिन जब गुरुजी ने मुझसे अपने भोजन की व्यवस्था करने को कहा तो मैं मौन हो गया।

उस समय मानो किसी दैवी शक्ति ने आकर ही मेरी सहायता की। गुरु जी की बड़ी लड़की (पन्नुवालम्बा) ने कहा—पिताजी यह छात्र होनहार जान पड़ता है, परदेशी है। कुछ दिन यहीं खालेगा। मैं बना दिया करूँगी इसके लिए भोजन। फिर कुछ दिन बाद यह जैसा चाहेगा प्रबन्ध करेगा। पन्नुवालम्बा विधवा थी, यह मुझे बाद को ज्ञात हुआ। गुरुजी ने उसकी बात मानली। मैं उनके परिवार का थोड़ा बहुत काम कर दिया करता और बदले में ही समझो भोजन पाता।

एक दिन पन्नुवालम्बा (जिसे मैं बालू दीदी कहने लगा था) ने मुझसे मेरी जीवन गाथा तुम्हारी ही तरह पूछी, मैं रो पड़ा। उनकी आँखों में वात्सल्य छलक आया। "रोता क्यों है रे ?" वे बोलीं—

यदि आप गुरु जी से एक साल भर यहाँ रहने की आज्ञा ले लें तो मैं परीक्षा दे सकूँगा—बालू दीदी ! तुम ऐसा कह दोगी न ?

क्यों करूँगी मैं ऐसा ? यहाँ तो न जाने कितने विद्यार्थी आते रहते हैं। हम सभी को अपने यहाँ नहीं रखते।

तो फिर मेरी पढ़ाई न हो सकेगी ! मैंने गर्दन लटकाली।

एक बात कहूँ मानेगा ?

अवश्य मानूँगा।

देख ! तू कुछ समय निकाल कर मेरे पास आ सकेगा ?

आऊँगा।

दिन भर मुझे काम से अवकाश नहीं मिलता तू भी पाठशाला रहेगा पर साम को रोज तुझे मेरे पास आना होगा।

क्या काम करना होगा मुझे ?

बर्तन मलने होंगे। मलेगा ?

मुझे भोजन मिल जायेगा ! मैं परीक्षा दे सकूँगा तो माँजूँगा बर्तन

भी। पर आप गुरुजी से कहेंगी न मैं यहाँ भोजन करूँगा ?

पगले ! बर्तन मलने के लिए तो मैं ही बहुत हूं। किया ही क्या है मैंने जीवन में। भाड़ ही तो झोंका—तेरा नाम क्या है रे ?

मुझे धीरज कहते हैं—तो फिर क्या काम है मेरे लिए ?

देख धीरू ! मैं बहुत दिनों से सोच रही हूं ? रामायण पढ़ूँ, पर मैं पढ़ना जानती ही नहीं। पहिले तो पिता जी मेरी पढ़ाई के विरुद्ध थे, पर अब वे भी कुछ नहीं कहते। मैं पढ़ना चाहती हूं। पढ़ा देगा तू मुझे ?

अरे दीदी तू पढ़ेगी तो मैं बहुत समय निकाल कर तुझे पढ़ा दूँगा। तो कल से ही आरम्भ कर दो।

धीरू ! मैं पढ़ सकूंगी ?

अवश्य ! मैं गुरु जी से भी कह दूं ?

ना, तू पिता जी से न कहना। जब कुछ सीख जाऊँगी तब कहूँगी। अच्छा तो कल तू आयेगा पाँच बजे ?

अच्छा, जा तेरी सारी व्यवस्था मैं ठीक कर दूंगी।

सुमन दस दिन बाद जब वह कुछ पढ़ने लगी, तब उसने गुरु जी से कहा। गुरू जी कुछ न बोले, पर मेरी व्यवस्था जो बालू दीदी ने सोची थी, उससे उन्हें विरोध न रहा।

आठ मास पश्चात् वह रामायण का पाठ अच्छी तरह अर्थ समझ कर करने लगी। मुझे वह इतना मानती कि मैं कभी कभी भयभीत हो जाता। मेरी परीक्षा समीप थी। उसने कुछ दिन के लिए पढ़ाई बन्द करने का प्रस्ताव रखा। मैंने अस्वीकृति दी और पूर्ववत् मैं पढ़ाता रहा।

परीक्षा देने अट्ठारह मील दूर जाना पढ़ता था। सभी छात्रों को लेकर गुरू जी जाते थे। हम सब को दो दिन बाद परीक्षा देने जाना था। बालू दीदी ने मुझे बुला कर कहा—धीरू तू भी तो जा रहा है न परीक्षा देने ? ले तीन रुपये अपने पास लेजा। और देख आटा दाल बांधे देती हूँ। पिता जी को भी बनाकर खिलाना। और हाँ वहीं से घर मत चला जाना। अब तुझे यहीं रहकर अन्य परीक्षायें भी देनी होंगी।

मैं वशवर्ती भृत्य की भाँति 'हाँ' कहता चला जा रहा था। और जिस दिन मैं परीक्षा देने गया था—आह! कितनी रोई थी वह। उस ममता-मयी के आँसू मुझ से न देखे गये। मैंने उसके आंसू पोंछ कर कहा—मुझे यहाँ अपना ही सा घर जान पड़ा—रो न बालू दीदी—मैं यहीं आऊंगा छुटियों में तुम्हें संस्कृत पढ़ाऊंगा। तब वाल्मीकि रामायण भी पढ़ना। उसने मुझे अपनी गोद में लेकर शिर थपथपाते कहा था—पर्चे अच्छी तरह करना। पिता जी का भी ध्यान रखना।

उसके वे शब्द आज भी मेरे कानों में गूंजते हैं। परीक्षा हो गई। छात्र अपने-अपने घर गये। मैं गुरू जी के साथ वहीं चला आया। गुरू जी नेकहा—छुटियों में यहीं रहकर पन्नूबालम्बा को पढ़ा दिया कर। मुझे और भी बल मिल गया, अब मैं बालू दीदी के साथ काम में भी हाथ बंटाता और उसे संस्कृत भी पढ़ाता।

गुरू जी घर के तीन प्राणी थे—बालू दीदी, उसका एक छोटा भाई और गुरू जी। घर का इधर उधर का काम जब मैं देखने लगा तो गुरू जी का भार भी कुछ हल्का हो गया। एक दिन भाषा सम्मेलन में वे हरिद्वार जाने को उद्यत हुए तो बोले—धीरू घर तेरे विश्वास पर है। मैं एक मास बाद आऊंगा। बालू दीदी को सब कुछ समझाकर गुरू जी चले गये।

कृष्ण मूर्ति की आयु लगभग १२ वर्ष की रही होगी और बालू दीदी रही होगी तब बीस बाईस वर्ष की। चौदहवें वर्ष ही उसकी शादी हो गई थी। गृह कार्य में वह अत्यन्त दक्ष थी। सत्रहवें वर्ष क्रूर काल ने अपने निर्दयी हाथों से उसके माथे का सिंदूर पोंछ दिया। ससुराल में पति के अतिरिक्त और कोई न था अत: उसे गुरू जी के ही पास रहना पड़ा।

मेरे ऊपर गुरू जी कुछ भार छोड़ गये। मैं किस योग्य हूं—क्या करूँ कैसे काम करूँ मैं इसी विचार में रहता, पर अब अधिक से अधिक समय उसे पढ़ाने में ही बीतता। मेरे वहाँ रहने से और बालू दीदी के

ही पास हर समय रहने से लोगों में भाँति भाति के तर्क-वितर्क चलने लगे, पर गुरू जी के भय से कोई कुछ नहीं बोल पाता। मुझे कृष्ण मूर्ति ने बताया था कि लोग आपको बुरा भला कह रहे थे। मैं निर्दोष था। अतः मैंने कभी किसी की चिन्ता भी न की।

बालू दीदी से तो मैंने कुछ नहीं कहा पर गुरू जी के आने पर मैंने अपने घर लौटने का आग्रह किया। गुरूजी ने कहा बालू से पूछ वही बतायेगी। मुझे उससे पूछने का साहस ही न हुआ। एक दिन गुरू जी ने कहा—पन्नू! यह घर जाना चाहता है, तू क्या कहती है? वह बोली—जाने वाले को कौन रोक सकता है पिता जी, यहाँ सब जाने के लिए ही तो आते हैं। आपके पास रुका कौन? हमारी स्थिति ठीक उस पर्वत की सी है, जिससे समस्त सबल शक्ति का सम्बल लेकर नदी नाले चले जाते हैं और फिर वे पीछे मुड़कर देखना जानते ही नहीं। गुरू जी के चले जाने पर उसने मुझसे कहा—धीरू! मेरी पढ़ाई अधूरी ही छोड़कर चला जायेगा तू?

दीदी! जाना तो नहीं चाहता हूँ पर·······

क्या बात है साफ साफ क्यों बोलता?

दीदी! कल कृष्ण मूर्ति कह रहा था कि········

हाँ हाँ मैंने भी कृष्ण मूर्ति की बात सुन ली। बस इतनी सी बात से घबरा गया? धीरू! संसार में न जाने कैसे-कैसे लोग रहते हैं और न जाने क्या-क्या बका करते हैं। यदि आदमी में सचाई है तो जीत उसकी होती है। हमें देखकर तो सभी जलते हैं। पिता जी का इतना बड़ा नाम है—लोगों से उनका यश देखा नहीं जाता। पर सभी तो ऐसे नहीं होते। तू इसकी चिन्ता न कर—बोल रहेगा न यहीं?

रहूँगा दीदी! तेरे सुख के लिए मैं सब कुछ सहने को तैयार हूँ।

मैं वहीं रहने लगा, दो साल पूरे हो गये, मैंने दो परीक्षाएँ दे डालीं। बालू दीदी को मेरे बिना चैन नहीं पड़ता था। वह मुझसे प्रतिक्षण कुछ पूछा करती थी। जो स्नेह और वात्सल्य मुझे वहाँ मिला आज तक कहीं भी न मिला।

दुर्भाग्य जब पीछे पड़ जाता है तब संभलना अति कठिन हो जाता है। सुमन! उसके बाद की जो घटना घटी उसका वर्णन न करूँ तो अच्छा रहे।

सुमन ने आग्रह पूर्वक कहा—अब आपको सब कुछ कहना ही पड़ेगा।

आँखों के आँसू पोंछते हुए मास्टर साहब बोले—आह! एक दिन बालू दीदी को जोर का बुखार आ गया। गुरु जी! घर नहीं थे। कृष्णमूर्ति को मैंने गाँव के वैद्य जी के पास भेजा। उन्होंने दो पुड़िया ज्वर उतरने की दे दी, पर ज्वर न उतरा। वह बोली—धीरू मेरे पास आजा। मैं उसके पास ही बिछौने पर बैठ गया। मेरे हाथ को चूमते हुए वह बोली—अब न बचूँगी धीरू। तू फिर घर चला जायगा न? कृष्णमूर्ति और पिता जी का क्या होगा? मैंने कहा—घबड़ाने की बात नहीं दीदी! तू ठीक हो जायगी। उसने दृढ़ विश्वास के साथ कहा नहीं धीरू मैं जीवित नहीं रह सकती और रहना भी नहीं चाहती।

तीसरे दिन उसके सारे शरीर पर भवानी की कृपा हो गई और चौथे दिन उसके जीवन का दीपक बुझ गया। आह! मैंने अपने ही हाथों उसे……

सुमन सुनकर चुप रह गई। मास्टर जी की आँखों में आँसू थे। वे बोले—मुझे अत्यन्त दुःख होता है उसकी स्मृति से। मैं फिर वहाँ न रह सका, घर भी न गया और जीविका के चिन्तन में लखनऊ चला आया। यहाँ भी घोर कष्ट उठाकर आज मैं अपने पैरों पर चल रहा हूँ। यही है संक्षेप में मेरा जीवन।

सुमन का हृदय गद्गद् हो गया। वह बोली मास्टर साहब यहाँ भी तो आपको अपना ही घर है—यहीं क्यों नहीं रहते आप? होटल का जीवन कोई जीवन है भला? आप कितने गुणी हैं मास्टर साहब! आह! मैं भी आप के समान हो जाती तो?

हो जाओगी—परिश्रम करती रहो अच्छा अब जी दुखी हो गया। पढ़ाऊँगा नहीं। जाकर आराम करना चाहता हूँ।

सुमन उन्हें फाटक तक पहुँचाकर अपने ही प्रकोष्ठ में आ गई और

मास्टर जी के विषय में सोचने लगी। कितने कष्ट सह कर पढ़ी है इन्होंने विद्या। तभी तो ये विद्या का महत्त्व समझते हैं। काश ·········
वह सोचती ही रही।

"तेरे मन कुछ और है विधना के कुछ और।"

❀ ❀ ❀

कुसुम ससुराल से चार मास के लिए नैहर आई थी। दो मास बीत चुके और दो मास के लिए वह भी काका जी के पास लखनऊ आ गई। सुमन विद्याविनोदिनी की तैयारी में थी। कुसुम भी कुछ पढ़ने की इच्छा से मास्टर साहब के समीप बैठ जाया करती थी। दोनों बहिनों की मास्टर साहब के प्रति विशेष श्रद्धा हो गई थी। समय अपनी गति पर चलता गया। सुमन को मास्टर साहब तीव्र गति से पढ़ा रहे थे। सिद्ध-साधक का सा वातावरण बन गया था—मास्टर साहब से उसने अपने यहाँ रहने का आग्रह किया पर उन्हें वहाँ रहना अच्छा न लगा।

वे होटल का जीवन बिता रहे थे।

सुमन को एक दिन प्रमोद का पत्र मिला। जिसमें उसने अपनी बरेली की सर्विस का जिक्र करते हुए लिखा था कि आशा है तुम्हारी पढ़ाई सुचारु रूप से चल रही होगी। अवकाश मिलने पर आऊंगा इत्यादि। सुमन का मन एक बार उसकी आसक्ति का अतिथि बना। पर वह भावना अधिक देर तक न ठहर सकी। उसकी रंगीन कल्पनाओं के जगत में इस समय मास्टर साहब विचरण कर रहे थे। वह स्वप्न लोक की कल्पित भाव भूमि पर भविष्य का भवन निर्माण कर रही थी। दीदी से उसने मास्टर साहब के विषय में बहुत कुछ बता दिया था। मास्टर साहब उसे विद्याविनोदिनी दिलाकर इण्टर में बैठा देंगे। वे उसे ग्रेजुएट बना देंगे। चाहेगी तो वे उसे सर्विस भी दिला देंगे। दीदी ने कहा—यही समय है सुमन! पढ़ने का, जी लगाकर पढ़ ले। फिर समय नहीं मिलता। ससुराल की झंझटों में पड़ कर सब कुछ भूलना पड़ता है। अच्छे गुरू मिल गये हैं तुझे। मुझे तो मास्टर साहब से बातें करने में बड़ा आनन्द आता है। कितने सीधे साधे

और उच्च विचार के हैं ये। देवता हैं पूरे देवता। पर यह तो बता इन्होंने ने तुझे कौन सा मंत्र बताया जिससे तेरा क्रोध रफूचक्कर हो गया। अरे तू तो अब गौमुखी गंगा हो गई है। सच बता सुमन, नहीं तो मास्टर साहब से ही पूछूंगी।

"पूछ लेना उन्हीं से दीदी." सुमन ने कहा। मैं नहीं जानती उनके पास रहने से तो मेरा जीवन ही बदलता जा रहा है। दीदी वे तो.........

अच्छा-अच्छा अब चल जरा काकी जी के पास भी तो चलें।

दोनों काकी जी के पास गईं। काकी जी ने उनकी पढ़ाई के सम्बन्ध में बातचीत करते हुए कहा—सन्नो की माँ कह रही थी—'क्या बला पाल रखी है आपने ?" किसका लंहगा किसका शौक ? मुझे लोगों की ऐसी बातें अच्छी नहीं लगतीं, पर मैं किसी को मूँह तोड़कर उत्तर भी तो नहीं दे पाती। अरे अपने पराये अपने से कुछ लाभ उठा लेते हैं तो क्या बुरा है ? खैर मैं तो किसी की सुन सुना कर भी अनसुनी कर देती हूँ। पर कोई तुम लोगों के भी कान इसी तरह ऊटपटांग कह कर भर सकता है। दुनिया वालों की बात से सावधान रहना चाहिए। इस विषय में तुम्हारी बुआ सबसे अच्छी हैं। वह इन प्रपंचों में नहीं पड़ती हैं। काकी जी कहती जा रहीं थीं उनकी आकृति कुछ उग्र होती जा रही थी। बोलीं—पर सुमन को तो अब मास्टर साहब का रक्षाकवच मिल गया है, यह उनकी पक्की चेली बन रही है। इस पर अब उनके जादू के सिवा और किसी का जादू नहीं लग सकता, क्यों सुमन ? सुमन चुप थी। उसकी चुप्पी में स्वीकृति थी। काकी जी ने प्यार से उसकी पीठ को थपथपाते कहा—तू तो अब गौमुखी गंगा हो चुकी। कुसुम तू इसी की भाँति बनकर दिखा। देख तो यह कहाँ थी और अब कहाँ है ? बातें इसी प्रकार होती रहीं।

काका जी ने आकर कुछ देर के लिए बाधा उपस्थित कर दी। "क्या षडयंत्र हो रहा है आप लोगों का" वे बोले।

"आपकी गिरफ्तारी का वारंट जारी करने जा रहे थे, आप आ ही गये।" हँसते हुए काकी जी ने कहा।

आज डाक्टर से इन कुत्तों के विषय में चर्चा कर रहा था—वह छोटा अल्सेशियन कुछ बीमार हो गया। उसी की चिकित्सा पर बहस हो रही थी। डा० साहब का कहना है वह बच्चे गा नहीं। कितना प्यारा बच्चा है।

आप अपने शरीर का तो ध्यान ही नहीं रखते पर कुत्तों की चिन्ता आपको प्रतिक्षण लगी रहती है। कल डा० चौधरी कह रहे थे आपका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। मैं भी देख रही हूँ, पर आप तो कुछ ध्यान ही नहीं देते। क्या हुआ आपके विदेश जाने का ?

"विदेश तो जाऊँगा ही जरा गर्मी आने दो," कहकर उन्होंने सुमन से पूछा कैसी चल रही हो तुम ? उसे अपनी ओर गोद में खींचते हुए बोले—पढ़ेगी नहीं तो मास्टर साहब तेरे कानों को रबड़ बना देंगे।

सुमन बोली काका जी अब तो विद्या विनोदिनी की परीक्षा दे रही हूँ, फिर इण्टर की।

"पढ़ो पढ़ो बेटा यह भी जीवन का एक बड़ा भारी लाभ है। हाँ मीनाक्षी ! मैं कल दिल्ली जाने का विचार कर रहा हूँ। तुम भी दो चार दिन के लिए गाँव चली जाना। वहाँ का क्या हाल-चाल है देखकर तहसीलदार को कह देना रुपया लगान का सबसे बसूल कर रख लें। मुझे कुछ जरूरत पड़ेगी।" कहकर काका जी फिर अपने शयन कक्ष में चले गये। सुमन और कुसम भी काकी जी से आज्ञा लेकर सोने चलीं।

काकी जी ने काका जी के पास जाकर कहा—आज दोपहर में मुझे एक भयंकर स्वप्न हुआ ! हम एक नदी में बह रहे हैं। बहते बहते मैं इस किनारे लग गई और आप उस पार। मैं आपको अपने पास बुला रही हूं, पर आप आते ही नहीं। मैं आपके पास आने के चेष्टा कर रही हूँ पर आ नहीं सकती। मेरी नींद खुल गई, मुझे तो बड़ा भय लग रहा है, क्या करूँ ? काका जी ने उन्हें बाहुओं में कसते हुए कहा—ये स्वप्न मन की दुर्वलता है। कुछ नहीं होता। तुम आज कल अधिक भीरु होती जा रही हो—क्या बात है ? कहके उन्होंने काकी जी के बालों को संभालते हुए उन्हें लेटने का आदेश दिया।

आप तो कह देते हैं कोई बात नहीं पर आप यह क्यों नहीं सोचते कि हमने दुर्निमित्त की भी तो कोई शान्ति नहीं की। कल बुला दीजिए शंकर महराज को वे एक अनुष्ठान कर देंगे तो जी शान्त हो जायगा।

बुला दूँगा कल। चिन्ता न करो—अब विश्राम करो।

काकी जी शान्त भाव से शायनागार में चली गईं।

❀ ❀ ❀

प्रभात की स्वर्ण रश्मियों ने धरा का आलिङ्गन किया। धरा पुलकित हो उठी। शहनाई बज उठी और काका जी का आँगन भी वेद मंत्रों की ध्वनि से गूँज उठा। शंकर महराज आ गये थे। नवग्रह की शान्ति और दुर्गा पाठ चल रहा था। काकी जी अपनी शक्ति भर अनुष्ठान में सहयोग दे रहीं थीं। शंकर महराज ने पूजन की समाप्ति पर आशीर्वाद दिया और दक्षिणा लेकर विदा हुए। काकी जी ने घर पर अन्य ब्राह्मणों को भी आमंत्रित कर रखा था। भोजन की समाप्ति पर काका जी ने दिल्ली के लिए प्रस्थान किया।

काकी जी मंगल स्तोत्र उच्चारण कर अपने कार्य में व्यस्त हो गईं! कुसुम ने आकर सूचना दी मामी आई हैं। वे सूचना पाते ही उनके पास लची गईं।

सायंकाल का समय हो चला था । चाय का आदेश देकर काकी जी मामी जी से बातें करने लगीं मामी ने पूछा आज पण्डित क्यों बुलाये गये थे?

तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ ?

शंकर महराज का भतीजा कह रहा था।

हाँ जरा नवग्रह का पूजन कराया था। इसलिए बुलाना पड़ा।

पूजन पाठ के बजाय आप एक काम करें तो अच्छा रहे। वैसे तो मुझे आपकी निजी बातों में सलाह देने का कोई अधिकार नहीं, फिर भी इतना कहूंगी कि आप जम कर काका जी का इलाज क्यों नहीं करवा लेतीं?

क्या करूँ वे किसी की सुनते ही नहीं।

आप उन्हें मौर्फिया के इन्जेक्शन लगाने से भी नहीं रोकतीं ?

उससे उन्हें कुछ शान्ति मिलती है अतः चुप रहती हूँ।

यह तो ठीक है पर.........आप उनको विदेश भेज दें।

यही सोचा जा रहा है। खैर यह तो कहो तुम इस समय कैसे आईं।

क्या बताऊँ ? आई तो यूँ ही थीं पर कुछ बात याद आ गई कहते डरती भी हूँ।

ऐसी कौन सी बात है ?

सन्नो की माँ मिली थी कहती थीं.........

क्या कहती थीं ?

यही कि ऐसा भी धन हुआ तो क्या जिसे कुत्ते बिल्ली चाटा करें। न दान—न पुण्य।

तो क्या वह हमारे लिए कह रही थीं ?

हाँ और कहती थीं सुमन उनकी कौन अपनी इतनी सगी है ? उसे एक नौ जवान मास्टर से पढ़वाते हैं, बाप रे बाप ! मेरे तो रिश्तेदार हैं, पर मैं तो ऐसा देख नहीं सकती।

देखो राधा ! कहने दो दुनिया को। कौन किसकी निभाने जाता है। दुनिया का मूँह भी नहीं पकड़ा जाता, सन्नो की माँ का तो दिमाग बिगड़ गया। वह तो न जाने क्यों जलती हैं हम लोगों से।

आपको मेरी कसम कभी इस बात की चर्चा भी न करना उनसे। नहीं तो खैर नहीं।

मेरा ऐसा स्वभाव ही नहीं राधा !

अच्छा तो मैं जाती हूँ, एक कष्ट देना है आपको यदि सौ रुपये हों तो दे दें, पंद्रह दिन बाद लौटा दूँगी—बीमे वालों को देने हैं।

मेरे पास तो इस समय पचास ही रुपये हैं चाहो तो दे दूँ।

"पचास से क्या काम चलेगा। जाने दीजिए किसी और से ले लूँगी," कहकर वह चलने को तैयार हो गई।

तो पचास यहाँ से ले लो, पचास कहीं और से लेना।

नहीं नहीं! किस किस का अहसान लेती फिरूँ? एक का ही अहसान लूँगी।

तुम बुरा मान गइ।

इस में बुरे मानने की क्या बात है, आप न देना चाहें तो मेरा क्या जोर है?

तुम्हें विश्वास नहीं होता कि मैं सच कह रही हूँ।

"जाने दीजिए—अच्छा नमस्ते"। कह कर वह चल दी।

राधा सन्नो की माँ की ननद थी। वह सन्नो की माँ की निन्दा कर के काकी जी की अपनी बन कर उनसे कुछ स्वार्थ सिद्ध करना चाहती थी, पर उस की दाल न गली। और काकी जी के पास रुपये होते तो वह सफल भी हो जाती।

उसके चले जाने पर काकी जी सन्नो की माँ के विषय में सोचती रहीं। सुमन ने आकर कहा दा! आप मौन क्यों हैं?

कुछ नहीं सुमन अपने पराये जितने भी हैं—सब स्वार्थ के हैं। किसी का स्वार्थ बन गया वाह वाह। न बना तो गाली सुनो।

क्या किसी ने कुछ कहा?

हाँ सन्नो की माँ ही तो इधर उधर हमारी विरुदावली गाती फिर रही है। अभी-अभी उसकी ननद राधा आई थी—जाने क्या-क्या बक रही थी, वह रुपये भी माँग रही थी—न दिये तो मूँह फूला कर चल दी।

जाने दो दा इन लोगों को। इनके अपने ही घर के हाल क्या अच्छे हैं? परनिन्दा करना तो इन लोगों का खानदानी पेशा हो गया है। आप को नहीं मालूम कुसुम दीदी के लगन पर रूपो दीदी की और सन्नो की माँ की कैसी झड़प हो गई थी। मैं न होती तो रूपो न जाने क्या-क्या बकती उसको?

क्या रूपो से झगड़ा हुआ था तब?

हाँ—आप को तो ज्ञान ही नहीं। मुझे भी तो खोटी-खरी सुनाई थी उसने—छीः ! जाने कैसे दिमाग की औरत है।

सुमन—कभी उससे भेंट हो जाय तो कोई चर्चा न करना। जाओ मास्टर साहब आते ही होंगे।

सुमन चली गई। काकी जी का जी उदास हो रहा था। मास्टर साहब जैसे व्यक्ति को सन्नो की माँ ने समझा ही क्या है—वे सोच ही रहीं थीं कि मास्टर साहब ने आकर जयशंकर की कहा । वे चौंक सी पड़ीं। आज उन्होंने मानों फिर मास्टर साहब के व्यक्तित्व पर दृष्टि डाली। उन्हें शंका के लिए स्थान नहीं मिला। वे संकोच में पड़ गईं। राम राम ! यह क्या बात है—परदोष अन्वेषण करना, हमेशा दूसरों पर शंका करना, उनके दुर्गुणों की टोह में रहना यों सोचते-सोचते वे सावधान हुई। उन्हें ज्ञान हुआ कोई उनके हृदय में छिपकर उनकी बातों को सुन रहा हो। निर्मल भाव से वे मास्टर जी से बातें करने लगीं—दो चार मिनट के पश्चात् ही मास्टर साहब सुमन को पढ़ाने चले गये ।

❀ ❀ ❀

सुमन का प्रकोष्ट मैसूर की अगरबत्तियों की सुवास से वासित था। आज मेज पर एक सुन्दर विकसित गुलाब का पुष्प भी रखा था और एक ओर पान-सिग्रेट। सुमन बैठी हुई न जाने क्या लिख रही थी। मास्टर साहब के प्रवेश से वह सजग हो गई। लिखे हुए पर्चे को दबा कर वह अपनी पुस्तक लेकर यथा स्थान बैठ गई। नित्य की भाँति प्रणाम के पश्चात् पाठ प्रारम्भ हुआ

आधा घण्टा पढ़ाने के बाद सुमन ने सिर दर्द का बहाना बना कर पढ़ना बन्द कर दिया। मास्टर साहब जब जाने को प्रस्तुतहुए तो वह बोली—थोड़ी देर और बैठ कर कुछ बातें कीजिए तो शायद सिर दर्द दूर हो जाय।

सिर दर्द बातों से नहीं बाम लगाने से ठीक होता है। कुसुम ! कहाँ है उससे क्यों नहीं बाम लगवा लेती हो ?

यह दर्द बाम से दूर नहीं होगा मास्टर साहब !

क्यों क्या तुम्हें कोई विशेष प्रकार का दर्द होता है ?

हाँ मास्टर साहब ! वह इतना विचित्र दर्द है कि कई दिन तक ठीक ही नहीं होता।

तो किसी डाक्टर को क्यों नहीं दिखा देती ?

दिखाया तो था पर डाक्टर साहब ने जिस दिन से इलाज करना प्रारम्भ किया उस दिन से यह और बढ़ने लगा।

अजीब हो तुम और तुम्हारा दर्द !

मास्टर साहब आपको कभी सिर दर्द नहीं हुआ होगा नहीं तो आप ऐसा न कहते।

मेरे सिर में दर्द होता है तो अनासीन की गोली खाने से दूर हो जाता है। तुम भी खाओ तो मँगवा दूँ।

क्या करेंगे आप दवा मँगवाकर ? अब तो मुझे यह दर्द भी प्यारा होने लगा। मास्टर साहब आप समझते ही नहीं तो क्या समझा दूँ ? सुमन ने कागज के टुकड़े को दुबकाते हुए कहा—
इस कागज पर क्या लिखा है ? क्या सरदर्द होने पर तुमने कोई कविता लिखी है ? लाओ तो देखूँ।

नहीं मास्टर साहब, आप को नहीं दिखाऊंगी। माता जी के लिए पत्र लिखा है।

देखूं तुम्हारे लिखने की शैली परिष्कृत हुई कि नहीं ?

नहीं उसमें कुछ भी तो नहीं लिखा है।

अच्छा तो न दिखाना चाहो न सही, मैं चला !

आप रूठ गये। आ गई आपको लहर······

सुमन ! तुम बहुत बकवास करने लगी हो।

सुमन रोपड़ी और कागज का टुकड़ा बड़े साहस के साथ उसने मास्टर साहब के सामने फेंक दिया। मास्टर साहब ने उसे नहीं उठाया तो वह

बोली—अब तक तो माँग रहे थे—अब दे दिया तो पढ़ लीजिए न।

मुझे क्या आवश्यकता ? तुम्हारा लिखा हुआ कागज है तुम पढ़ो मैं तो यूं ही न जाने क्यों माँग बैठा था। यह मेरा ही दोष था।

आपका दोष—मास्टर साहब अब आपने और कुछ कहा तो मैं फूट-फूट कर रो उठूँगी।

अच्छा रो मत—पर तेरा कागज पढ़ूँगा नहीं। तू यही तो चाहती थी ?

मैंने तो आपके भय से छिपाया था। न जाने मन में क्या आया जो मैं कुछ लिखने बैठ गई।

मास्टर साहब ने कागज का टुकड़ा उठाया—उसमें लिखा था—

कोई भलामानुष। भोला भाला। पूरा बाबा भोलानाथ। पर चेहरे पर—तंत्र मंत्र वशीकरण सब कुछ है। न जाने उस चेहरे को देखकर क्या होने लगता है ? कौन है वह ? मेरे गुरुदेव। गुरुदेव आप देवता हैं या आदमी यह मैं नहीं जानती। आपके चरणों से दूर होने पर न जाने क्यों अशान्ति होने लगती है, आपने विद्यादान देकर मेरा जीवन ही पलट दिया। मैं मूर्ख थी अच्छी थी। अब तो कुछ कुछ सजग होने पर बहुत कुछ जानने लगी हूँ, समझने लगी हूँ, पर आप समझते हुए भी नहीं समझते। जानते हुए भी नहीं जानते।

आह ! बापरे बाप ! क्या लिख रही हूँ मैं ? गुरुदेव अप्रसन्न हो गये तो पढ़ाई चौपट।

पढ़कर मास्टर साहब ने सुमन की ओर देखा—वह नतग्रीवा बैठी थी। वे बोले—यह सब क्या है सुमन ?

मैं तो इस कागज को फाड़ने जा रही थी ! आपको नहीं बताना चाहती थी, मुझसे भूल हो गई क्षमा चाहती हूँ मास्टर साहब।

सुमन ! तुमने यह लिखा ही क्यों—क्या कल्पना कर रही हो तुम अपने मन में ?

मास्टर साहब ?

देखो सुमन, मैं मानता हूं कि तुम मुझे बहुत मानती हो। यह भी जानता हूं कि तुम मुझसे बहुत हिलमिल गई हो और तुम्हारा भाव पवित्र है। पर यदि कोई इस कागज के टुकड़े को देख लेता तो ?

सुमन ! उस अपराधी की भाँति मौन थी जिसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया हो और अब मुक्ति का कोई उपाय न सूझता हो। उसको इस प्रकार देखकर मास्टर साहब कुछ उत्तेजित होकर बोले— "तुम समझती क्यों नहीं हो ? मैं मानता हूं कि मानव हृदय दुर्बल होता है। जवानी अन्धी होती है और अविवेक उसकी सहायता करता है— पर मेरा पद भी तो बड़ा ऊँचा है।" कह करके उन्होंने एक गहरी सांस ली। "वे उठ पड़े—चलता हूं।" कहकर वे कमरे से बाहर होने को ही थे कि कि सुमन ने उनको रोककर कहा—क्षमा चाहती हूं। इस प्रकार मैं आपको नहीं जाने दूँगी। मास्टर साहब आप इतने अप्रसन्न क्यों हो गये ? आखिर······

सुमन ! मुझे इस समय तुम जाने दो। मेरे मस्तिक का सन्तुलन ठीक नहीं है। मैं सोच रहा हूँ मेरा जाना ही इस समय ठीक रहेगा, मैं अप्रसन्न नहीं हूं, इसका तुम पूर्ण विश्वास रखो।

"इस समय आपकी मुद्रा कुछ विचित्र सी देख रही हूं, यदि आप अप्रसन्न रहेंगे मैं कलसे पढ़ना छोड़ दूंगी," कह कर वह मास्टर साहब की ओर देखने लगी। उसके नेत्र मोतियों की माला बनाकर मास्टर जी के चरणों में चढ़ा रहे थे।

मास्टर साहब की दृष्टि दरवाजे की ओर लगी थी। पैरों पर कुछ कोमल तप्त वस्तु के स्पर्श से वे चौंक उठे। उनकी चिन्तन-परम्परा भंग हो गई। वे सुमन की कातर आँखों में न जाने मौन भाषा में क्या क्या पढ़ने लगे। उन्हें अपने पर खेद हुआ—यह भी कोई सिद्धान्तवाद है ? जरा सी बात पर बेचारी को डाँट दिया। कागज का टुकड़ा फाड़ कर भी तो फेंक दिया जा सकता था। और फिर उसमें ऐसी कौन सी बात लिखी थी सुमन ने ? मास्टर साहब ने सुमन के माथे पर हाथ फेरते हुए कहा

सुमन ! पगली हो गई है क्या ? चित्त की छोटी सी गलती पर नेत्रों को इतनी भारी सजा ? वे बैठ गये और सुमन को समझाने लगे।

कुसुम ने प्रवेश करते ही सुमन को रोते हुए देखा तो समझी पाठ ठीक से याद न करने पर डाँट दिया होगा। वह बोली—कभी कभी डाँट खाने से भी बुद्धि में सजगता आ जाती है। मास्टर साहब! आज सुमन को डाँट पड़ गई क्या ?

हाँ कभी-कभी ऐसा भी करना ही पड़ता है।

सुमन मन ही मन भयभीत हो रही थी। मास्टर साहब ने कहीं सारी बात दीदी से कह दी तो ? ये तो भोले बाबा हैं। दीदी ने कहीं काकी जी से कह दिया तो ? यों तो मैं कह सकती हूँ मैंने मास्टर साहब को बनाने की सोच रही थी, पर उनके मन में सन्नो की माँ के बैठाये हुए भाव की पुष्टि तो हो सकती है। वह मन ही मन डर रही थी।

कुसुम ने कहा—मास्टर साहब अब पढ़ाना बन्द कर दीजिए। और यह बताइए कि आपने इसे ऐसा कौन सा मंत्र पढ़ाया जो इसका क्रोध भाग गया ? विषधर सर्पिणी भी निर्विष हो सकती है, यह मैं प्रत्यक्ष देख रही हूँ। मुझे भी सिखा दीजिए वह मंत्र।

मैंने ऐसी कौन सी विद्या पढ़ाई। यह तो मैं नहीं कह सकता पर यह जानता हूँ कि सुमन में परिवर्तन अवश्य हो गया है। यह इतनी बदल जाय गी स्वयं इसका मुझे कोई ज्ञान न था।

मास्टर साहब कहते जा रहे थे और सुमन भयभीत होती जा रही थी। उसे दीदी की बात अच्छी नहीं लगी। क्यों आई होगी यह इस समय। मास्टर साहब ने कुसुम की ओर देखते हुए कहा—सब कुछ ठीक है पर इसमें अभी आत्मबल की बड़ी दुर्बलता है।

यह बात तो नहीं है मास्टर साहब। यह तो इतनी हठी है कि एक बार अपनी बात पर अड़ जायेगी तो फिर....... सुमन ने दीदी को देखकर कहा-दीदी ! तुम जाओगी या नहीं ? चली व्यर्थ में ही मेरी बुराई करने। "सुमन ! वह बुराई तो नहीं कर रहीं हैं? तुम्हें क्या हो गया है आज? तुम्हारी

तबियत ठीक नहीं है ऐसा ज्ञात होता है। जाओ विश्राम करो।" कहकर मास्टर साहब ने उसे फिर आदेश दिया जाओ विश्राम करो। कुसुम के लिए यह एक समस्या हो गई थी। न सुमन ही ऐसा बोलती थी और न मास्टर साहब ही उसे ऐसा कहते थे। वह वहाँ से स्वयं चली गई।

❀ ❀

कुसुम के चले जाने पर सुमन ने कहा—मास्टर साहब ! मैं कल से पढ़ूँगी नहीं। वह कहने को तो कह गई पर उसे ऐसा कहने में वृश्चिक दंशन की अनुभूति हो रही थी।

क्यों ? मास्टर साहब ने उदासीनता से कहा।

यह तो मैं नहीं बता सकती पर इतना अवश्य कह सकती हूँ कि मुझे पढ़ाने में आपको अधिक कष्ट होता होगा।

मैंने कभी कष्टों की चिन्ता नहीं की। पर मैं यह जानना चाहता हूँ कि शिखर पर चढ़ने वाले के पैर इतनी जल्दी क्यों लड़खड़ाने लगे ? मन और मस्तिष्क से विजय के स्वप्न देखने वाले पंगु बनने लगेंगे तो उनके रंगीन सपने कभी साकार नहीं हो सकते।

आप नहीं सोच सकते हैं मास्टर साहब—मेरा अतीत जितना ही बल सम्पन्न हुआ भविष्य उतना ही अंधकारपूर्ण प्रतीत होता है। मेरा जीवन आज मुझे विष मिश्रित मधु के समान ज्ञात हो रहा है। मुझे अपने पर घृणा हो रही है।

यह तुमने कैसे समझा—सुमन ! मेरी जरा सी बात कहने पर तुम इतनी निराश हो गई। मैं तुमसे कई बार कह चुका हूँ। जीवन संघर्षों का नाम है। जिन्दगी एक दाँव है। हार जीत उसके दो पहलू हैं, तुम स्वयं समझने की चेष्टा नहीं करतीं। मैं भी एक मनुष्य ही हूँ। दुर्बलतायें मुझ में भी हैं—तुममें भी हैं और सबमें हैं। दुर्बलता भी मनुष्य का एक गुण है, पर उसकी सीमा का एक निर्दिष्ट क्षेत्र होता है। तुमने यह कल्पना कैसे कर ली कि तुम्हारा भविष्य अन्धकारपूर्ण है ? ऐसी अशुद्ध कल्पना को हृदय में स्थान भी नहीं देना चाहिए।

मास्टर साहब ! मैंने आप ही से कुछ सीखा है। मैं जानती हूँ आप पराई वेदना के घूँट पीकर भी मुस्कराते हैं। आप जो कुछ भी कहते हैं मेरे हित के लिए कहते हैं। आपने मुझे शक्ति दी है। और इसीलिए आपके कुछ विचित्र गुणों को देखकर मेरा मन परोक्ष अपरोक्ष में आप के प्रति श्रद्धालु होता चला जा रहा है। मैं क्या समझ रही हूँ यह मैं भी नहीं जान रही हूँ।

मास्टर साहब ने उसकी विचित्र स्थिति का अनुमान लगाते हुए प्रसंग बदल दिया। वे उसकी पढ़ाई के विषय में पूछने लगे कि काकी जी या काका जी क्या कहते हैं। तुम्हें कुछ ज्ञान हो रहा है कि नहीं ?

सुमन अनमनी ही रही। फिर कुछ और देर तक मास्टर साहब उसे समझाकर चल दिये। सुमन में फाटक तक पहुँचाने की हिम्मत न हुई। वह वहीं विचारों में डूबी रही।

मास्टर साहब के जाने के पश्चात् सुमन को ऐसा अनुभव हो रहा था—मानो उसके भीतर से कोई कह रहा था—क्यों तुमने अपने विचार प्रकट कर दिये ? तुम नहीं जानती नारी जीवन की विशेषता—"हृदय में आग—आँखों में पानी और अधरों में मुस्कान।" उसकी तंद्रा तब टूटी जब कुसुमने उसे भोजन के लिए कहा।

"नहीं खाऊँगी दीदी, सर दर्द हो रहा है," कहकर वह बात टालना चाहती थी पर कुसुम ने कहा—मास्टर जी बिगड़ पड़े तो महरानी जी भोजन ही छोड़ देंगी। सुमन मुझे यह बात अच्छी नहीं लगती। आखिर मास्टर जी तुम्हारे भले को ही तो कहते हैं। तुम अपना भला बुरा भी स्वयं नहीं सोच सकती। बेचारे..............कहकर वह सुमन को अपने साथ पुचकार कर खाना खिलाने ले गई।

सुमन ने अस्त व्यस्त रूप में भोजन किया और फिर अपने अध्ययन कक्ष में आकर मास्टर साहब के विषय में सोचने लगी। नौकरानी ने आकर उसे एक पत्र यह कहते हुए दिया कि यह कल का आया हुआ था। सरकार ने (काकाजी ने) आज डाक देखकर दिया है। सुमन ने लापरवाही

से वह पत्र ले लिया। और फिर सोचने लगी—मास्टर साहब ने क्या सोचा होगा मेरी आज की बातों से? कल उनके सामने कैसे बैठूँगी पढ़ने? मैंने ऐसी तो कोई भी बात न की जिससे मास्टर साहब मेरे विषय में कुछ गलत सोचेंगे। पर वे ऐसा सोच भी नहीं सकते। क्यों नहीं सोच सकते? उसे उनकी बालू दीदी का ध्यान आया वह उन्हें कितना मानती होंगी। मास्टर साहब कहते थे सभी लोग प्रायः मुझसे कार्य सिद्धि के लिए स्नेह करते हैं। पर यदि कोई उनको सत्यता के साथ वह रुक गई और उसका ध्यान पत्र पर चला गया।

लिफाफे को खोल कर उसने उत्सुकता में यह जानने के लिए कि किसकी चिट्ठी है—अन्त में नाम पढ़ा—प्रमोद। वह उठ बैठी। पत्र को ध्यान से पढ़ने लगी।

प्रिय सुमन!

मेरा पिछला पत्र सम्भवतः तुम्हें मिला होगा। मैंने छुट्टियों में कुछ दिन के लिए लखनऊ आने का विचार किया है। तुम्हारी पढ़ाई की व्यवस्था ठीक ही होगी। काश! मैं लखनऊ में ही सर्विस पा जाता तो तुम्हारी कार्य-सिद्धि में सहायक हो सकता। पर·······फिर भी मेरी मंगलमयी कामनायें तुम्हारे साथ हैं। तुम्हें याद होगा तुमने कहा था—क्या आप मेरी सहायता कर सकेंगे? मेरे लिए जो कार्य हो बताना। तुम्हें देखने की प्रबल इच्छा हो रही है। पिता जी कहाँ हैं—लिखना—तुम तो छुट्टियों में कहीं जाओगी ही नहीं। मैं आ रहा हूँ, कहीं जाना मत। विशेष मिलने पर················

तुम्हारा एक परिचित प्रमोद।

पत्र पढ़कर सुमन ने सिरहाने रख दिया। प्रमोद को आज इतने दिन बाद क्या याद आई, उसने सोचा। पंखा उसके विचारों से भी अधिक तीव्र गति से चल रहा है उसे लगा। उसके सरसराहट का व्याघात उसे सहन

न हुआ, उसने पंखे की चाल धीमी कर दी। विचारों का प्रवाह पूर्ववत चलता रहा।

प्रमोद को मुझसे क्यों इतनी ममता है ? कुछ ही काल का परिचय ! न अपना सगा न रिस्तेदार ! बेचारा तब भी मेरी पढ़ाई के सम्बन्ध में चिन्तित था और अब भी। अबकी जब वह आएगा तो उससे खूब बातें करूंगी। उससे अपने मास्टर साहब की प्रशंसा करूंगी। वह चिढ़ जायगा। यही तो उसका एक दुर्गुण है कि वह अपने सामने औरों की प्रशंसा सुन ही नहीं सकता। पर कितना हंसमुख है। ओह ! गाड़ी में मैंने क्या क्या बुरा भला सोचा था उसके विषय में। मैं उसे आजकल के मनचले छोकड़ों की की भाँति समझ रही थी। कितना गम्भीर और सहानुभूति सम्पन्न हृदय का है वह !

काश !······विचार इतनी शीघ्रता से उठ रहे थे कि समेटे नहीं सिमट रहे थे। हृदय की धड़कन भी दूनी हो गई थी। उसने अपने को स्थिर करने की चेष्टा की पर वह विचारों की आँधी में उड़ते हुए मन को रोकने पर भी न रोक सकी।

उसने सोचा—मनुष्य बुराइयों के समीप ही न जाय तो ? पर ऐसा तो हो ही नहीं सकता—बुराइयाँ सभी में होती हैं। पर जो उन्हें पर्दे में रखने की कला जानता है उसकी वे बुराइयाँ दिखाई ही नहीं देतीं। जो इस कला में निपुण नहीं होता उसके सभी काम हेय दृष्टि से देखे जाने लगते हैं। कोई खुल जाता है, कोई ढ n ा रह जाता है। इसी भाँति देर तक सुमन विचारों की उधेड़बुन में लगी न जाने कब सो गई। प्रातः जब उसकी आँखें खुलीं तो दीदी पूजा का प्रसाद लिए उसके प्रकोष्ट की ओर आती हुई उसे दिखाई दी।

❀ ❀ ❀

मास्टर साहब सुमन के यहाँ से आकर आज होटल में न जाकर अपने मित्र सुरेश तिवारी के यहाँ चले गये।

सुरेश मास्टर जी का अभिन्न मित्र था। जब कभी वे जीवन के संघर्षों से ऊबते थे तो सुरेश के साथ बैठकर उसकी दार्शनिक चर्चा के सहारे अपना जी हल्का कर लेते थे। आज भी उनके मन की उद्विग्नता बढ़ी हुई थी। वे सुरेश से उसका समाधान चाहते थे।

मास्टर साहब के वहाँ पहुँचने पर सुरेश की पत्नी सावित्री ने "आइए शास्त्री जी" कहकर उनका स्वागत किया।

सुरेश बाबू कहीं गये हैं क्या ? मास्टर जी ने पूछा।

"हाँ अभी-अभी गये हैं। आते ही होंगे। आप बैठिए" कहकर उसने बैठक खोलकर पंखा चला दिया। "चाय पीयेंगे आप ?" उसने साधारण ढंग से पूछा।

धन्यवाद ! सुरेश बाबू आप से कुछ कह गये हैं क्या ? भाभी जी ! यदि उनके आने में देर हो तो मैं तबतक जरा हजरतगंज हो आऊँ।

आते ही होंगे—आप बैठिए। मैं चाय बनाकर लाती हूँ। वे चली गईं।

मास्टर साहब उनके आग्रह को टाल न सके और फिर लखनऊ में एक ही ऐसा घर था जहाँ मास्टर जी को अपना घर कहने का आत्म विश्वास था। फिर वहाँ उन्हें बनावटी बात करना कैसे रुचता।

सावित्री चाय ले आई। मास्टर जी के साथ चाय पीते पीते बातें होने लगीं।

वे बोलीं—कहिये, आज कल तो आप बहुत कम आते हैं इधर क्या कुछ ट्यूशनें और मिल गई हैं ?

नहीं ट्यूशनें तो दो ही हैं और इससे अधिक के लिए अवकाश भी नहीं। पर इधर कुछ लिखने पढ़ने का कार्य चल रहा है। उसी में अधिक समय बीत जाता है। आप अपनी कहिए—इस वर्ष आपका बी० ए० फाइनल है न ?

हाँ है तो शास्त्री जी ! पर गृहस्थी के चक्कर में पड़कर अवकाश मिलना कठिन हो जाता है। मैं तो अबके परीक्षा में बैठना ही नहीं चाहती पर

वे मानते ही नहीं, कहते हैं उत्तीर्ण अनुतीर्ण की आँख मिचौनी तो होती ही रहती है।

ठीक तो कहते हैं सुरेश बाबू। आप पढ़ती रहें। कभी मेरी आवश्यकता हो तो सूचित कर दीजिएगा।

शास्त्री जी! आपके पास समय ही कहाँ है—हम गरीबों पर आप क्यों मेहरबान होने लगे?

देखिए भाभी जी—आप ऐसे शब्द कहकर लज्जित न किया कीजिए। अच्छा यह तो बताइए क्या आप लोग मुझे पराया समझते हैं?

यह आपने कैसे समझ लिया?

फिर आप ऐसा कहती ही क्यों हैं?

क्या बातें हो रही हैं कहते हुए सुरेश बाबू ने कमरे में प्रवेश किया। मास्टर साहब को स्वाभाविक रूप से गले लगा कर वे भी बैठ गये और फिर बात चीत का क्रम चल पड़ा।

हाँ तो धीरेन्द्र भाई (मास्टर जी का नाम) आज कल कितनी चिड़िया जाल में फँस गई हैं? सावित्री जी हँस पड़ीं—बोलीं शास्त्री जी की मत पूछिए अरे ये तो अब..............मास्टर साहब ने कहा—भाई सुरेश बाबू! देखो तुमसे जब मिलता हूँ तुम कुछ न कुछ व्यङ्ग भरी बात कह बैठते हो। क्या ट्यूशन करना कोई पाप है?

पाप! कौन कहता है यह? पर धीरेन्द्र! मैं तो इसे जाल ही नहीं जंजाल समझता हूँ। माना कि कुछ चाँदी के टुकड़ों का या कागज के टुकड़ों का मोह हो ही जाता है--पर मैं तो कभी न करूँ कोई ट्यूशन।

ठीक कहते हो तुम—पर कभी कभी अपने लिए नहीं विवश होकर दूसरों के लिए भी ऐसा करना पड़ता है।

क्या मतलब?

मेरा स्वभाव तो आप जानते ही हैं। मैं ना कहने पर भी ना नहीं कह पाता और सम्भवतः इसी लिए दुखी भी रहता हूँ। इस नई ट्यूशन को न करने पर भी मुझे करना ही पड़ा।

"हाँ भाई यह तो तालुकेदारों की बात ठहरी" विकृत विद्रुप हँसी हँसते हुए सुरेश बाबू ने कहा। मास्टर हमाव आज उनकी इन बातों में कुछ हतप्रभ से हो रहे थे पर फिर भी वे भाव बदलते हुए बोले—चाहे जो समझो सुरेश बाबू किन्तु स्थिति ने मुझे विवश कर दिया था।

सावित्री जी ने मास्टर जी के भाव को लक्ष्य कर उन्हें कुछ हँसाने की दृष्टि से कहा—अजी इन्हें अब बहुत अच्छी चेली मिल गई। क्यों शास्त्री जी? इस बात पर अनायास ही वे हँस पड़ीं। उनको हँसता देख सभी हँस पड़े। सावित्री को पड़ोस में किसी काम से जाना था वे चली गईं। मास्टर साहब और सुरेश बाबू में बातें होती रहीं।

धीरेन्द्र! तुम कितने विचित्र आदमी हो! आखिर यह तो बताओ तुमने जीवन का ध्येय क्या समझ रखा है? कब तक चलेगा तुम्हारा ऐसा जीवन। होटल छोड़कर तुम्हें यहाँ आने के लिए भी कितनी ही बार कह चुका पर तुम मानते ही नहीं।

भाई मानता अवश्य पर मैं अपनी आदतों से लाचार हूँ। अनियमित जीवन के व्यक्ति के लिए होटल ही ठीक है।

नं० दो कोठी पर कब जाते हो पढ़ाने?

पाँच बजे से सात बजे तक।

क्यों? क्या दो घण्टे के लिए तुम्हारी नियुक्ति हुई है?

नियुक्ति का प्रश्न नहीं रहा अब। अब तो मुझे भार सौंपा गया है कि मैं स्वल्प समय में अधिक विद्यादान दे सकूँ। और फिर............ सुरेश बाबू एक बात पूछूँ? पर देखो तुम उसका कुछ उल्टा अर्थ न लगाना—अच्छा नहीं कहूँगा—तुम अवश्य भाभी जी से कहोगे और फिर मैं उनके लिए सदैव हँसी की एक सामग्री बन जाऊँगा।

यह बात नहीं धीरेन्द्र। मैं तुम्हें जानता हूँ। कभी-कभी मजाक कर देता हूँ—यह दूसरी बात है। आज तुम्हारा हृदय कुछ चोट खाया सा ज्ञात होता है—कहो क्या बात है?

यह बात तो नहीं । पर सोच रहा हूँ । नं० दो कोठी पर पढ़ाने जाऊँ या नहीं ?

क्यों क्या कोई अपराध कर आये हो या वेतन मिलने में कुछ शंका है ।

न अपराध ही किया है, न वेतन में कोई शंका है ।

तो तुम ज्ञान-दान से छात्र की तृप्ति नहीं कर सकते ?

यह भी बात नहीं पर..............

ओह ! तो आप यह कहना चाहते हैं कि वहाँ अपनी छात्रा के व्यवहार से आप डरते हैं ?

कुछ ऐसी भी बात है । और सुरेश भाई ! वह लड़की मुझे जाने क्या समझ बैठी है । उसके लिए तो मैं नासमझ देवता हूँ ।

क्या कहती है वह ?

कुछ नहीं पर कभी कभी उसका अत्मबल दुर्बल हो जाता है ।

धीरेन्द्र भाई ! इसमें घबराने की क्या बात है तुममें यदि अधिक आत्मबल होगा तो तुम उसे भी आत्मबल सम्पन्न कर सकते हो । किसी भी बात से डर कर भागना कायरता है । उसका सामना करके उसे अपने अनुकूल बना लेना ही तो साहसी वीर का कार्य होता है । बिना तुला पर चढ़े सूर्य जलद पटल को चीरने में असमर्थ रहता है । और फिर वह तुम्हारी शिष्या है तुम हो गुरु ।

यही तो मैं भी सोचता हूँ । पर कभी-कभी मानव की मूल भावना अपने प्रच्छन्न रूप को निरवरण करके परप्रत्यक्ष का विषय भी तो बन जाती है । मानव दुर्बलतायें श्रेय हैं, पर प्रभाव तो उनका भी पड़ता ही है । मुझे ज्ञात होता है कि मैंने भी अपनी दुर्बलताओं पर अधिकार कर लिया है, फिर भी................

मैं मानता हूँ पर ऐसी क्या बात हो गई जो तुम इतने घबरा गये हो ?

घबराया तो नहीं हूँ पर सुमन मुझे अत्यधिक सम्मान का पात्र बनाती जा रही है। और अब मैं उसकी प्रत्येक बात को मानता चला जा रहा हूँ। यह भी तो एक दुर्बलता है।

छोड़ो भी इन बातों को। पढ़ाना छोड़ना नहीं, जो होगा देखा जायगा। तुमने जीवन को बहुत सस्ता समझ लिया है धीरेन्द्र! यही तुम्हारी भूल है। तुम दूसरे के सम्मान के पात्र बनने से क्यों विचलित होते हो?

"अच्छा भाई तुम ठीक कहते हो," कहकर मास्टर साहब ने होटल जाने की इच्छा प्रकट की।

आज यहीं भोजन करना पड़ेगा। और यहीं लेट रहना।

तुमसे मैं जीत तो नहीं सकता। मुझसे तुम अपनी हर बात मनवा लेते हो। पर देखो आज का प्रसंग गोपनीय है। भाभी को न बताना।

भाई यह तो मेरी आदत नहीं। सावित्री को मैं सब कुछ बता देता हूँ। तुम डरते क्यों हो?

अच्छा जैसा समझो करो। पर आज मुझे एक लेख लिखना है। कल उसे एक पत्रिका के लिए भेजना है। जाने देते तो अच्छा होता।

यदि ऐसी बात है तो मैं हठ न करूँगा। तुम जा सकते हो। पर अवकाश मिलने पर आना अवश्य और ट्यूशन यथावत् करते रहना।

आज्ञा पाकर मास्टर साहब होटल की ओर चले। [illegible]रों में डूबे हुए वे जा रहे थे, उन्हें सुध न थी कि वे किधर जा रहे हैं। सामने से आती हुई एक मोटर से बाल-बाल बच गये।

❀ ❀ ❀

नव भारत होटल का मैनेजर कुछ क्रूर स्वभाव का था। पर मास्टर जी से उसकी खूब पटरी बैठती थी। मास्टर जी को देर से आया देख बोला—मास्टर साहब आपभी विचित्र व्यक्ति हैं। भोजन का भी ध्यान आपको नहीं रहता। नौकर को पुकार कर बोला मास्टर जी का खाना लगा दो। जब मास्टर साहब भोजन कर चुके तो मैनेजर ने प्रसंग ही प्रसंग

कह डाला अभी तो आपने पिछले महीने के रुपये भी तो नहीं दिये। आखिर हम भी तो कुछ कमाने के लिए बैठे हैं। आप ट्यूशन वालों से रुपये क्यों नहीं माँग लेते। मुझे आप पर तरस आता है। नहीं तो कल से ही आपका खाना बन्द कर देता, वह कह रहा था और उसके मुख से मदिरा की दुर्गन्ध मास्टर साहब तक आ रही थी।

मास्टर साहब समझ गये कमबख्त ने, आज मालूम होता है, कुछ अधिक पी ली है। वे बोले—मैनेजर साहब दो चार दिन में हिसाब चुकता कर दूँगा

उनके कन्धे को थपथपाते हुए मैनेजर ने कहा—प्यारे! तुम से कौन माँगता है? तुम तो मेरे दोस्त बन गये हो—घबराओ नहीं—कल दे देना-उसकी जबान लड़खड़ा रही थी। मास्टर साहब ने उठने की चेष्टा की पर उसने जबरदस्ती बैठा कर उन्हें बातों में लगा दिया। मास्टर साहब का ध्यान लेख लिखने की ओर था। वे उसकी बातों से उतने ही प्रभावित थे जितना एक बालक चाकलेट के लोभ में। जब उसकी बातों का प्रसंग पूर्ण मद्यप की कोटि में आने लगा तब वे उससे पिंड छुड़ाकर भाग चले।

अपनी कोठरी में पहुँच कर विद्युत प्रकाश में वे कुछ पुस्तकों को लेकर बैठ गये। लेख लिखने की तैयारी में थे, पर उनको सुमन का ध्यान आ गया, वे तिलमिला उठे। आदमी अपना मूल्य स्वयं कर बैठता है। अति परिचय से अवज्ञा भी हो ही जाती है। और यदि अवज्ञा न कहूँ—आत्मीयता कहूँ तो—हाँ आत्मीयता ही हो जाती है अति परिचय से—वहाँ रहस्य के लिए द्वार खुल जाते हैं। भेद भाव की भित्ति गिर जाती है। यदि मेरे साथ भी ऐसा ही हो रहा हो तो? अच्छा अब मैं इस रहस्य की गहराई तक पहुँच ही क्यों न लूँ। आखिर सुमन के जरा से लिखने से मेरे मानसिक संतुलन में इतना व्याघात क्यों उत्पन्न हो गया। मेरे मन की दुर्बलता ने ही तो यह विषमता की विभीषिका दिखाई है। अब छोड़ो इस प्रसंग को—पर वे फिर भी लेख न लिख सके।

मास्टर साहब ने सोचा उचित या अनुचित जो कुछ भी कार्य होना है उसके फल पर यदि व्यक्ति पहले से ही दृष्टि डाल लेता है तो उसे पश्चा-ताप के लिए अवसर नहीं मिलता। आवेश अन्धा होता है। लोग छिप कर पाप कर लेते हैं, उन्हें यह विश्वास हो जाता है कि इसे देखने वाला कोई नहीं। पर कभी-कभी ऐसा भी तो देखने में आता है कि जिसे लोग पाप समझते हैं वह पुण्य भी हो जाता है। पाप-पुण्य का निर्णय करना तो अपने ऊपर नहीं समाज के ऊपर है। मेरे! विचार से तो समाज-कल्याण जिन कामों से हो वे सब पुण्य ही हैं।

पर........ ...अपना बुरा कौन चाहता है। प्रत्येक क्षेत्र में सभी अपनी-अपनी दृष्टि से सफल होना चाहते हैं, पर सभी तो सफल नहीं हो पाते—ऐसे समय पर हमें सारी बातें भाग्य के ऊपर छोड़ देनी पड़ती है। अदृश्य के गर्भ की वस्तुओं के लिए चिन्तन ही क्यों! वे अदृश्य पर ही लेख लिखने बैठ गये। लेख समाप्ति पर एक गहरी सांस लेकर उनके मुख से निकला—नीर-क्षीर विवेक में हंस ही यदि आलस्य करेगा तो कैसे काम चलेगा।

रात्रि समाप्ति पर थी और मास्टर साहब की गुलाबी आँखों का मधुर चुम्बन करने के लिए अब नींद व्यग्र हो उठी थी।

बाल रवि प्राची की गोद में खेलने लगा था। होटल के कमरे की खिड़की से भीतर घुस कर रवि-रश्मिया मास्टर जी को जागरण का सन्देश देने आ पहुँची थी। होटल के कर्मचारी दैनिक कार्य में व्यस्त थे। मैनेजर साहब की मदिरा की खुमारी दूर हो चुकी थी। आज मास्टर साहब को जगा हुआ न देख कर वे उनके कमरे की ओर गये। देखा लेखनी हाथ पर लिए मास्टर साहब अस्त-व्यस्त पड़े हैं। सोचा रात को बहुत जगे होंगे, सोने दो बेचारों को। कितना परिश्रम करता है यह बेचारा; पर बेचारे के भाग्य में द्रव्य नहीं! भोली आकृति का दुबले पतले छरछरे शरीर का यह व्यक्ति कितने ऊँचे विचारों का है। परसों कैसी बातें कह रहा था—कहता था—आदमी को आदमी ही पहिचानता है। आत्मिक संस्कार एक दूसरे को एक दूसरे का सगा बनाता है। न कोई किसी का शत्रु है न कोई किसी का मित्र। शत्रु मित्र तो व्यवहार पर निर्भर है। ओह! मैंने इस बेचारों को

कल कैसी कड़ी बात कह दी। दे देगा बेचारा रुपया। उठने दो मास्टर को अपनी कल की बात की क्षमा याचना करलूँगा। मुझे जाने क्यों तरस आता है इस पर। इसके स्थान पर किसी और ने न दिया होता, दो मास का रुपया तो जाने कब का होटल खाली करवा देता। पर मास्टर के लिए मेरा हृदय उदार होता जा रहा है। कह दूँगा—मास्टर जब तेरे पास रुपया हो दे देना। होटल मैनेजर दरवाजे के पास खड़ा खड़ा सोच ही रहा था कि मानो मास्टर जी की नींद लज्जित हो कर उन्हें छोड़ कर भाग गई।

प्रभात काल मैनेजर को अपने कमरे के सामने पाकर वे समझ गये कि आज यह अपने रुपयों के विषय में फिर कुछ कहने आया है। पर उनका यह भ्रम तब दूर हो गया जब मैनेजर ने स्नेहार्द्र वाणी में कहा—मास्टर साहब! मालूम होता है रात भर जगते रहे। प्यारे क्यों अपने शरीर के पीछे पड़े हो। अरे भाग्य में जो होगा होगा—भाई शरीर है तो सब कुछ है, मास्टर! तुम्हें मेरी कल की बात का कुछ बुरा लगा हो तो क्षमा करना भाई, मैं कल जरा मात्रा से अधिक ले गया था—

मास्टर साहब ने आँखें मलते हुए कहा—मैनेजर साहब! आपकी उदारता के लिए शत शत धन्यवाद! आपके हृदय में ममता तो है। आइए बैठिए न। बैठूँगा नहीं भाई। तुम आज प्रात: उठकर चाय पीने न आए तो सोचा चलूँ देख लूँ। मास्टर जी बुरा तो नहीं मान गये।

बुरा क्यों मानता मैनेजर साहब! आपने तो विजनेसमैन के व्यवहार के अनुकूल ही कहा। पर आप कोरे अर्थ पिशाच ही नहीं हैं यह मुझे आज ज्ञात हुआ।

"भाई मैं तो बड़ा क्रूर व्यक्ति हूँ। लोग मुझे महापातकी और क्रूर समझते हैं। बद अच्छा बदनाम बुरा। हम होटल वालों की तो लोग लाखों बुराइयाँ करते हैं। अब तो लोग होटलों को दुर्गुणों का अड्डा समझने लगे हैं। खैर नहा धो लो—चाय तैयार है, कह कर वे चल दिये। जल्दी-जल्दी दैनिक कार्यों से अवकाश पाकर मास्टर जी भी बाहर जाने के लिए तैयार हो गये। चाय पीकर जैसे ही वे बाहर निकलने

को तैयार हुए उनके एक दूसरे मित्र धनेश ने आकर उन्हें अपने यहाँ ले जाने का आग्रह किया।

मास्टर साहब होटल में भोजन के लिए मनाकर उनके साथ कार पर बैठ कर थोड़ी ही देर में सराय माली खाँ पहुँच गये।

❀ ❀ ❀

धनेश संभ्रान्त परिवार के व्यक्ति थे, कारोबार अच्छा चल रहा था। साहित्यिक रुचि के व्यक्ति थे और विशेष कर कविता और उपन्यास के प्रेमी। उनकी स्त्री इन्दिरा देवी भी उन्हीं की जैसी प्रकृति की थी। अभी मास्टर साहब से उनका बहुत घनिष्ठ परिचय भी नहीं था पर वे उनकी कविताओं को बड़े चाव से सुनते थे। विशेष कर इन्दिरा देवी को कविता सुनने का बड़ा चाव था। वह ग्रेजुएट थीं और कविता समझने की क्षमता भी इन्दिरा देवी में थी।

पहिले पहिले जब बारादरी वाले कवि सम्मेलन में उसने मास्टर जी की "जिन्दगी की सूनी राह पर" शीर्षक कविता सुनी थी तब अधिक प्रभावित होकर उन्होंने अपने पति से मास्टर जी का परिचय प्राप्त करने के लिए कहा था। कवि सम्मेलन की समाप्ति पर वे मास्टर जी से मिले थे और यहीं से परिचय का श्री गणेश हुआ था। अब तो न जाने कितनी बार मास्टर साहब उन्हीं के घर पर जाकर कविता सुना आए थे।

उनके परिवार के इने-गिने व्यक्ति थे धनेश जी और इन्दिरा—दो नौकर और एक नौकरानी को भी वे परिवार का ही व्यक्ति समझते थे। घर पहुँचने पर धनेश जी ने इन्दिरा देवी को सम्बोधित करते हुए कहा—लो आही गये कवि जी पकड़ में। जरा देर हुई होती तो श्रीमान् का पता भी न लगता।

इन्दिरा जी को नमस्ते का उत्तर देते हुए मास्टर जी बोले—आज न आता तो कभी न कभी तो आता ही। अच्छा हुआ जो आज ही आ गया। आज अवकाश भी था—सोचा चलो यहीं कुछ समय का सदुपयोग किया जाय।

हम तो कई दिन से आपके अगमन की प्रतीक्षा में थे। इन्दिरा देवी ने साड़ी के पल्ले को अपनी तर्जनी से लपेटते हुए कहा—

बैठिये मास्टर साहब मैं आता हूँ अभी जरा आज साढ़े आठ बजे एक मिटिंग में जाना है। इन्दिरा! जब तक मैं न आऊँ जाने न देना मास्टर साहब को। कविता श्रवण के पुण्यफल को अकेले ही न लूट लेना।

आपके बिना मैं लूटे हुए पुण्यफल का भोग तो नहीं कर सकूँगी न—जाइए पर शीघ्र आने का ध्यान रखिएगा।

गाड़ी फरफराती हुई रायल होटल के लिए चल दी।

मास्टर जी को सिगरेट देते हुए इन्दिरा देवी ने पूछा—आज कल आपकी दिन चर्या क्या है।

हमारी भी कोई दिनचर्या है—खाना पीना सोना और पढ़ाना समय बच गया तो कविता की वाणी में गुनगुना देना।

आज कल कितनी कविताएँ नई लिख चुके हैं आप?

लिखने की तरंग उठ गई तो लिख दी पर आज कल तरंग का स्पन्दन ढीला हो गया है। भावों के बन्धन भी शिथिल हो रहे हैं।

आप तो न जाने कविता की ही भाषा बोल रहे हैं। कोई इधर की नवीन रचना हो तो सुनाए। कहकर इन्दिरा देवी ने मन्द मुस्कान बिखेर दी।

ओह। तो यूँ कहिए कि आप अपने घर पर बैठने का टैक्स ले रही हैं। मास्टर साहब भी स्वाभाविक हँसी हंस दिये उनकी हँसी इन्दिरा देवी के मन पर आघात कर गई।

नौकरानी को बुला कर उन्होंने चाय बनाने का आदेश देकर मास्टर जी से पूछा—आप के बाल बच्चे कब आ रहे हैं लखनऊ?

मेरे बाल बच्चे! मैं तो स्वयं ही अपने को बाल भी और बच्चा भी समझता हूं।

मजाक में बात न टालिए। कवि लोग तो योंही लोगों की बातों को उड़ा देते हैं।

मैं आप से भला असत्य कहूँगा ? मैं तो जीवन में अपने को एकाकी समझता हूं । मुझे संसार में इसी प्रकार बना कर भेजा ही गया है ।

मास्टर साहब ! यदि आपको हम अपने यहाँ रहने का स्थान दे दें और खाने का भी आपका प्रबन्ध कर दें तो हमारे साथ रहने में आपको कोई आपत्ति है ? वे कह रहीं थीं और आँखें उनकी मास्टर साहब की मुखाकृति के अध्ययन की ओर सचेष्ट थीं । मास्टरजी सोच रहे थे—एक दिन वह था जब मैंने भोजन और निवास की व्यवस्था के लिए हाथ फैलाया था औरआज वही सुविधा मुझे स्वयं मिल रही है। जीवन के दिनों का कितना हेरफेर होता है । "बिन माँगे मोती मिलें माँगे मिले न भीख" गुण के ग्राहकों की भी सृष्टि में न्यूनता नहीं है । पर मेरे प्रति इनकी इतनी उदारता का कारण ? हो सकता है मेरी कविता का यह प्रभाव हो—उन्हें कुछ क्षणों तक मौन देखकर साड़ी का पल्ला ठीक करते हुए वह बोली—किस समस्या में हैं आप ? हम लोगों पर इतनी भी कृपा नहीं कर सकते आप ? कवि तो बड़ी उदार प्रकृति के होते हैं । फिर हमारे लिए आप कृपण क्यों बन रहे हैं ?

बात उदारता या कृपणता की नहीं इन्दिरा देवी, बात व्यक्तित्व के निर्वाह की है । मैं किसी के ऊपर भार बनना नहीं चाहता ।

तो यह कौन कहता है आप किसी पर भार बनिए ? आप तो स्वयं दूसरों पर कृपा करेंगे ।

मैं कृपा करूँगा ? मैं तो अपने को किसी योग्य भी नहीं समझता ।

मास्टर साहब ! कस्तुरी के मृग को अपनी नाभि की गंध का यह ज्ञान हो जाय कि कस्तुरी वह स्वयं पैदा करता है तो वह वन-वन में मारा-मारा क्यों भटकता रहे । अपने स्वरूप का सत्य ज्ञान ही तो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास का रोड़ा है—

मास्टर साहब जैसे नींद से चौंक पड़े और नौकरानी चाय लेकर उपस्थित थी ।

आमलेट की तस्तरी आगे बढ़ाते हुए इन्दिरा देवी ने कहा—प्रारम्भ कीजिए । और अपने आप चाय बना कर जब वे मास्टर जी को देने लगीं

तो उनके हाथ के स्पर्श से उन्हें रोमाञ्च हो गया। बोलीं—मास्टर साहब ! आज साहब से कहकर मैं अवश्य आपका प्रबन्ध यहाँ करवा दूँगी—आप को अब हमारे ही साथ रहना पड़ेगा।

आमलेट का प्लेट समाप्त करते हुए मास्टर जी ने कहा—आप मुझे बाध्य कर रही हैं। मानता हूँ कि आप लोगों के हृदय में मेरे लिए स्थान है, पर मुझे भी तो उसका अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिए न।

यह कोई तर्क नहीं। जहाँ चाह वहाँ राह। आप के रहने से हमें कोई कष्ट न होगा। खैर आने दीजिए उनको। हाँ तो अब एक कविता सुना दीजिए।

आप को मेरी कविताओं में क्या रस आता होगा ?

आप जैसे विचार सभी के थोड़े होते हैं मास्टर साहब ? आज कल के कवि तो अपने को समझते हैं कालिदास और सेक्यपियर का चाचा। मिल्टन और रश्किन, टैगोर और पन्त की समता में भी वे अपने को बड़ा समझते हैं, आप आदमी नहीं हीरा हैं—कहते हुऐ उनका भीतर का भाव उभर रहा था। वे मास्टर साहब को सतृष्ण नेत्रों से देखती जा रहीं थीं। मास्टर साहब ने उनकी आँख की ओर देखा तो वे कुछ अजीब सी लगीं।

अपनी प्रशंसा सुनने का गुप्त आनन्द सभी प्राप्त करते हैं। मास्टर जी भी गद्गद् हो गये उनकी इस दशा की पहचानने में इन्दिरा देवी को क्षण भर का भी विलम्ब नहीं हुआ—उन्हें आभास मिल गया कि मानव की सबसे बड़ी दुर्बलता है आत्मप्रशंसा की अनुभूति। वे बोलीं मुझे तो आपकी कविताओं में एक आत्म-विस्मृति की सत्ता विदित होती है—वह कविता ही क्या जो सुनने वाले को आत्मविस्मृत न करदें। मास्टर जी गुनगुनाने लगे—फिर इन्दिरा देवी को सुनने के लिए सावधान करते हुए उन्होंने कविता की पहली पंक्ति को दो बार दोहराया—

मेरे ममत्व ने रो के कहा, पगले यह वेदना रानी का राज है।
दो दिन में ठुकराता वही यहाँ प्यार से जो हमें चाहता आज है ॥

अत्युत्तम, बहुत सुन्दर क्या अच्छा लिखा है मास्टर साहब आपने यह वेदना रानी का राज है—कितनी दार्शनिक बात को कह गये हैं आप इतनी सी छोटी पंक्ति में।

आप ही एक ऐसी मिलीं, जो इस प्रकार मेरी कविता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करती हैं। अन्यथा लोग................

हाँ मास्टर साहब फिर इसके आगे—

रोते नहीं हैं समक्ष किसी के, सभी को यहाँ खुल रोने में लाज है।

मास्टर साहब ने एक कविता के बाद जब दूसरी कविता प्रारम्भ की तो इन्दिरा देवी के प्राण नेत्रों के द्वारा उनकी कविता का पुरस्कार देने के लिए मानो बाहर आने को उत्सुक हो रहे थे। बरबस अपने को थामकर आँखें पोंछकर वह तकिये के सहारे कोच पर लेट गई। मास्टर साहब आँखें बन्द करके सुना रहे थे, जब उन्होंने इन्दिरा देवी को अर्धचेतन अवस्था में देखा तो बोले—क्या अच्छी नहीं लगी यह कविता आपको?

मास्टर साहब! संगीत में सर्प और मृगशावकों को मोहित करने की शक्ति विद्यमान है? तो क्या कविता में मनुष्य को मुग्ध करने की भी शक्ति नहीं? सच कहती हूँ अनुभूतियों के आधार पर लिखी हुई ये आपकी कवितायें हृदय पर सीधा प्रभाव डालती हैं। क्या आपने अपनी कविताओं का कोई संग्रह तैयार कर रखा है?

हाँ वह तो कभी का तैयार था—पर अर्थाभाव के...........कारण।

कुल कितनी कविताएँ होंगी?

एक सौ पचास।

कितने तक में छप जायेंगी?

लगभग तीन सौ रुपये में।

यदि रुपये का प्रबन्ध हो जाय तो?

इन्दिरा देवी इस प्रकार की ममता से मास्टर के अन्तकरण को जीत लेना—चाहती थीं। उन्हें मास्टर साहब के प्रति आकर्षण ने घेर लिया था।

कौन मिलेगा ऐसा व्यक्ति जो मेरी इतनी बड़ी सहायता कर सकेगा ?

कोई न कोई मिल ही जायगा मास्टर साहब ! ढूँढ़ने वालों की सर्वत्र कमी है। मिलने वालों की नहीं।

बातें रस की चरम कोटि पर चल रही थीं। इन्दिरा देवी का अन्तःकरण उद्विग्न होता जा रहा था वे सोचने लगीं—मास्टर साहब की सहायता करने पर वे अवश्य अपने घर आ जावेंगे। इनके आजाने से दिन भर का समय साहित्यिक चर्चा में कट जायगा। और भविष्य में यदि कुछ अध्ययन की रुचि होगी तो उसकी भी पूर्ति हो जायगी।

दरवाजे पर कार का शब्द सुनाई पड़ा। साढ़े ग्यारह बज चुके थे। धनेश बाबू कार्य से निवृत होकर आ चुके थे। भीतर प्रवेश करते हुए उन्होंने मास्टर जी से कहा—क्षमा चाहता हूँ। कुछ विलम्ब हो गया। हाँ तो क्या कविता पाठ हो रहा था ? मैंने आकर विघ्न उपस्थित कर दिया।

नहीं-नहीं—आप की ही प्रतीक्षा में तो हम बैठे थे।

हाँ तो सुनाइए फिर कोई नवीन रचना।

इनसे मेरे ममत्व वाली कविता सुन लीजिए, बड़ी अच्छी है। मास्टर साहब उसको सुनाइए फिर—

मास्टर साहब ने फिर से वही कविता दोहरा दी। सुनकर धनेश बाबू भी प्रसन्न हो गये। क्या उदात्त कल्पना है ! क्या सुन्दर भाव हैं ! भाई मैं तो साइन्स का स्टूडेन्ट रहा हूँ पर कविता सुनने में आनन्द अवश्य आता है मुझे। मास्टर साहब को कुछ नाश्तापानी भी करवाया इन्दिरा कि नहीं ?

अब तो भोजन भी तैयार ही होगा।

कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं।

मध्याह्न हो गया था। भोजन का प्रस्ताव सामने आते ही इन्दिरा देवी बोली—मास्टर साहब की पसन्द का भोजन तो क्या ही बना होगा—

पर एक दिन ऐसे ही सही। दूसरे दिन मास्टर साहब की पसन्द का भोजन बनेगा।

भोजन करते-करते ही इन्दिरा देवी ने मास्टर साहब को अपने यहाँ रखने का प्रस्ताव रखा, धनेश बाबू ने प्रसन्न मुद्रा में स्वीकृति दी। वे अपनी धर्मपत्नी की प्रत्येक बात का समर्थन इसलिए करते थे कि वह सदैव प्रसन्न रहे। मास्टर साहब ने उस पर कुछ आपत्ति की। पर दम्पति के निर्मल आग्रह के सामने उनकी एक न चली और शाम को उनका सामान होटल से यहाँ आ जायगा यह तय किया गया।

मास्टर साहब भी भविष्य का कुछ मोह मन में छिपाये अब राजी हो गये। पर उन्होंने कहा अभी इस हफ्ते वहीं रहूंगा। क्योंकि होटल का हिसाब भी चुकता करना है। सबने उनकी बात मान ली।

भोजन समाप्त होने के पश्चात् मास्टर जी ने बिदा ली। होटल में आकर वे अपने कमरे में कुछ देर के लिए विश्राम करने लगे। घड़ी ने साढ़े चार बजाये और मास्टर जी ने ट्यूशन पर जाने की तैयारी की।

❀ ❀ ❀

धनेश बाबू इन्दिरा को लेकर मार्केटिंग करने चले गये। घण्टा दो घण्टा सौदा-सामान खरीदने के पश्चात् जब वे घर आने लगे तो इन्दिरा देवी ने कहा—चलकर जरा नवभारत होटल में मास्टर साहब का हिसाब देख लिया जाय। इस समय उसे हम चुका देंगे। फिर मास्टर साहब से धीरे-धीरे ले लेंगे।

नव भारत होटल के मैनेजर के पास जाकर जब उन्होंने मास्टर धीरेन्द्र शास्त्री के सम्बन्ध में पूछा तो मैनेजर हक्का-बक्का सा हो गया। बोला वे यहीं रहते हैं पर आप उनके कौन हैं ?

मैनेजर साहब ! इससे आपको क्या ? मैं यह पूछना चाहता हूँ कि मास्टर जी पर आपका कितना बकाया है ? मैनेजर ने समझा सम्भवतः

कोई उनका भेद लेने आया है। उसने कुछ भी बताने से इन्कार कर दिया। इन्दिरा देवी के कहने पर कि हम उनके रिश्तेदार हैं—उनका हिसाब चुकाने आये हैं। फिर भी मैनेजर ने अपनी मनुष्यता के बल पर किसी का भेद किसी को बताने से साफ जवाब दे दिया। बेचारे असफल हो कर अपने घर की ओर चल दिये।

चार दिन बीत गये। मास्टर जी न सुरेश बाबू के यहाँ गये न धनेश बाबू के यहाँ। दो दिन तक तो वे होटल में भी नहीं आये। होटल मैनेजर को उनके विषय में चिन्ता हो रही थी। जाने कहाँ गया मास्टर। यह है लखनऊ, वह भोला भाला किसी के फन्दे में तो नहीं फँस गया। पर मास्टर है समझदार व्यक्ति।

पाँच बज चुके थे। आकाश पर कुछ हल्के भूरे रंग के बादल दौड़ रहे थे। संध्या के श्रृंगार को सजाने की तैयारियाँ हो रहीं थीं। लतिकाएँ वृक्षों का सहारा लेकर इठला रहीं थीं। पक्षी उनका स्वागत गान गा रहे थे। मास्टर जी लम्बे-लम्बे डेग बढ़ाये नम्बर दो कोठी की ओर बढ़ रहे थे। मन में उथल-पुथल हो रही थी। सुमन ने क्या सोचा होगा मेरे विषय में। वे फाटक पर ही पहुँचे थे कि सुमन उन्हें फाटक पर ही मिल गई। सिर झुकाकर उसने मौन प्रणाम किया और मास्टर जी को साथ लेकर वह अपने अध्ययन कक्ष में पहुँची। कुसुम वहाँ बैठी हुई किताब के पन्ने टटोल रही थी। मास्टर जी के आने पर वह भी प्रणाम करने के लिए उठ खड़ी हुई।

मास्टर जी ने सिगरेट जलाते हुए पूछा—कैसी तबियत है ?

"ठीक है मास्टर साहब," कुसुम बोली। सुमन मौन ही रही।

तुम्हें क्या हो गया है सुमन ? तुम आज बोलती क्यों नहीं ?

अनाब-सनाब बोलने की अपेक्षा मौन रहना ही उचित है, आपने ही तो समझाया था।

अच्छा ऐसा ही सही। निकालो पुस्तक क्या पढ़ना चाहती है आज ?

जो आपकी आज्ञा हो। इंगलिश की पुस्तक निकालूँ या मनोविज्ञान की ?

यह कुछ नहीं चलेगा। आज पहले तुम यह बताओ कि तुम इतनी उदास क्यों हो ? कुसुम ! तुमने भी नहीं पूछा इससे ?

मास्टर साहब ! कल से इसे न जाने क्या हो गया ? गुमसुम बैठी रहती है। मैंने पूछा मास्टर जी ने कुछ कहा क्या ? तो बोली मत पूछो दीदी मास्टर जी क्यों कुछ कहते। घर में किसी से कोई बात नहीं हुई। तब आप ही जाने इसे क्या हो गया।

समझ गया—अच्छा सुमन इधर देखो। तुम पगली हो न।

"महा पगली" कह कर वह आँसू बहाने लगी। कुसुम चली गई। सुमन ने उसके चले जाने पर मास्टर साहब से कहा—आप अप्रसन्न हैं न ?

नहीं तो, क्यों क्या हुआ तुम्हें ?

आप को नारी का हृदय मिला होता तो आप कुछ समझते।

मैं सब कुछ समझता हूँ सुमन ! तुम मुझे गलत क्यों समझती हो ? क्या मैं मनुष्य नहीं हूँ ? मेरा भी तो हृदय है। उसमें भी सुख दुख के अनुभव करने की शक्ति है। फिर तुम मुझे........

मास्टर साहब का गला भर आया। मास्टर साहब कुछ क्षण के लिए मौन हो गये। उन्हें मौन देखकर सुमन को होश आया कि—मास्टर साहब दुखी हो गये। वह बोली—मास्टर साहब मैं आपके सामने न जाने क्या-क्या बक जाती हूँ। पर मुझे ऐसा लगता है जब आपसे कुछ बोल लेती हूँ तो जी हल्का हो जाता है।

यह तुम ठीक कहती हो। अपना जिन्हें समझा जाता है उनके सामने दुख का वर्णन करते समय दुख का द्वार खुल जाता है। मन और मस्तिष्क हल्का सा हो जाता है। यह भी सृष्टि का एक नियम है। और दुख का कथन सर्वत्र होता भी नहीं। पर...........

मास्टर साहब मैं सब कुछ समझती हूँ पर आज कल मेरा मन न जाने क्यों अधिक अशान्त रहने लगा।

वह कहती जा रही थी और मास्टर साहब उसकी प्रत्येक बात को मनन की दृष्टि से सुन रहे थे। वह बोली—कभी-कभी मानसिक अशान्ति

को अधिकार करते हुए भी, उसे दबाते हुए भी नहीं दबाया जा सकता। उस समय शुभ अशुभ न जाने क्या-क्या बिचार उठते हैं, जिनके विषय में भले बुरे का विवेचन ही नष्ट हो जाता है।

ठीक कहती हो तुम। पर यह भी न भूलना चाहिए कि जब व्यक्ति अपने मन एवं मस्तिष्क के संतुलन को खो बैठता है तब वह दुर्बलताओं का शिकार हो जाता है। और कभी-कभी कोई-कोई दुर्दान्त दुर्बलताएँ उसे ऐसा दबा लेती है कि उनसे छुटकारा मिलना दुरुह हो जाता है। इसी स्थिति को लोग मर्यादा का लंघन कहते हैं।

मेरी समझ में तो कुछ नहीं आता, कभी-कभी तो मैं यह सोचती हूँ कि इस प्रकार के जीवन से तो आत्महत्या कर लूँ तो ठीक है। क्या जीवन में केवल दुख के और कुछ है ही नहीं ?

सुख दुख मन के विकार हैं। जो आज सुख का सुन्दरतम साधन है वही कल दुख का प्रबल कारण भी हो सकता है। हाँ यह कहा जा सकता है कि लोग मनोभिलाषाओं की पूर्ति के अभाव को ही दुख कहते हैं तो अनुचित नहीं। जब व्यक्ति अपने दृष्टिकोण के अनुसार अपनी कल्पना का रंगीन संसार बसा लेता है और जब उसके इस कल्पित स्वप्न को साकार होने का अवसर नहीं मिलता तभी तो वह खीझ उठता है। मनुष्य की खीझ का नाम ही तो दुख या निराशा है।

जिसकी कोई भी अभिलाषा पूर्ण न हो सके वह तो जीवन को दुख पूर्ण ही मानेगा न ?

क्यों नहीं—पर उसकी अभिलाषाओं की सीमा और क्षेत्र का औचित्य भी तो ध्यान में रखना होगा।

मास्टर साहब मैं ऐसी मन्दभागिनी हूँ जिसकी सोची हुई बात कभी पूरी ही नहीं हो सकती। मैंने इसे अजमालिया है।

उसमें कुछ त्रुटि रह जाती होगी। पर कभी न कभी तो पूर्ति होगी ही—यह आशा रखनी ही पड़ती है।

आपके प्रति मैं क्या क्या सोचती हूँ पर किसी में भी मुझे सफलता नहीं मिलती। अच्छा कौन सी बड़ी बात थी मैंने एक कागज के छोटे से टुकड़े पर क्या लिख दिया था जो आप बिगड़ गये ? यदि कभी इससे गम्भीर बात कह बैठती तो फिर न जाने आप कितना डाँटते।

यह बात नहीं सुमन मैं भी कभी-कभी कुछ खर मस्तिष्क का हो जाता हूँ। तुम्हे मैंने जो कुछ कहा स्वयं मुझे उसका दुख है। मैं तुम्हे कितना मानता हूँ यह कहने की बात नहीं पर............

अब तो आप अप्रसन्न नहीं है न ?

मैं अप्रसन्न था ही कब ?

अच्छा अब तो आप कभी अप्रसन्न न होगें न ? उत्तर क्यों नहीं देते मास्टर साहब ? क्या कभी मेरी प्रार्थना को आप स्वीकृत ही नहीं करेंगे ?

क्यों नहीं ? मैं जितना भी तुम्हारे लिए कर सकूँगा करूँगा। मुझ पर अब तुम्हारी पढ़ाई का सारा भार डाल दिया गया है।

इतने में कुसुम मास्टर साहब के लिए पान लेकर आ गई। सुमन की मुद्रा में कुछ प्रसन्नता का चिन्ह देखकर कुसुम बोली—तो अब ज्ञात होता है मास्टर साहब ने मना लिया है तुम्हें।

दीदी तुम कुछ न कुछ कह दिया करती हो यह ठीक नहीं।

"कुसुम ! यह कुछ रूठ सी गई थी। मना लिया गया है इसे, यह भी तो एक बड़ी बात है । अन्यथा इसका क्रोध उफान खा बैठता तो जाने क्या अनर्थ हो जाता," कहकर मास्टर साहब हँस पड़े। वे दोनों बहिनें भी हँस पड़ीं। गम्भीर वातावरण हँसी में परिवर्तन हो गया। कुछ देर बातें करने के पश्चात् मास्टर साहब सदा की भाँति उठ पड़े। सुमन उन्हें फाटक तक पहुँचा गई।

होटल लौटे आने के पश्चात् मास्टर साहब मैनेजर साहब के पास बैठ गये। मैनेजर ने बड़े गर्व के साथ ऐसी बात कही मानो उसने आज मास्टर

जी के ऊपर दुनिया भर का अहसान लाद दिया हो। वह बोला—मास्टर ! तुम्हारे कोई रिश्तेदार हैं यहाँ ?

चौंक कर मास्टर जी ने कहा नहीं तो—आपके पूछने का तात्पर्य ?

मेरे पास कोई सज्जन कार पर बैठ कर अपनी स्त्री के साथ आये थे। उन्होंने नाटकीय ढंग से आप के हिसाब के सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने बताया कि वे आपका हिसाब जो कुछ भी हो उसे चुकता करने आए हैं। जी में तो आया कि जब रुपये मिल ही रहे हैं तो क्यों छोड़े जायँ। पर मैंने सोचा यह भी कोई मनुष्यता है कि किसी पर किसी का भेद प्रकट कर दिया जाय। मैंने मना कर दिया—वे चले गये।

मास्टर ! तुम्हारी जगह पर कोई दूसरा होता तो शायद मेरा मन डिग भी जाता और मैं महा दोष का भागी बन सकता था—पर तुम्हारे विषय में तो मैं इतना जागरूक हूँ कि मुझे कुछ कहना ही नहीं।

"ठीक किया आपने मैनेजर साहब ! इसके लिए शतशत धन्यवाद !" कह कर उनका ध्यान गया कौन आया होगा मेरा रिश्तेदार बनकर ? क्या करेगा वह मेरा हिसाब जान कर ? कोई सी० आई० डी० तो नहीं पड़ा है मेरे पीछे ? पर मैं तो उग्र हिंसावादी विचारों का हूँ नहीं। फिर तुरन्त ही उन्हें धनेश बाबू और इन्दिरा देवी का ध्यान आया। वे बोले—मैनेजर साहब मैं समझ गया वे मेरे एक मित्र थे। अच्छा किया आपने मुझे उनके अहसान से बचा लिया। यद्यपि वे सम्पन्न परिवार के हैं, मेरे लिए इतना कर देना उनके बायें हाथ का खेल है—पर मैं अपने लघु जीवन को सुखमय बनाने के लिए किसी को भी कष्ट देना नहीं चाहता। वे ही रहे होंगे।

मैनेजर साहब को उनकी निस्पृहता पर विस्मय हो रहा था। यह किस धातु का बना हुआ व्यक्ति है जो इस युग में इस प्रकार की बातें कर रहा है। ठीक है मनुष्य दरिद्र हो सकता है पर मन के राजा ऐसे ही लोग हुआ करते हैं। सोचते सोचते वे बोले—मास्टर ! एक कप चाय मँगवा दूँ ? थके-थके ज्ञात होते हो।

धन्यवाद—खाना खाऊँगा—थकान सी ज्ञात हो रही है—सो

जाऊँगा, हाँ मुझे वेतन दो तीन दिन में मिल जायगा। आपका हिसाब चुका दूँगा।

जाओ मास्टर साहब खाना खाकर आराम करो, हिसाब की चिन्ता न करो।

मास्टर साहब भोजन करने के लिए चल दिये। भोजन के पश्चात् उन्होंने चाहा लेख लिख लें, पर उनकी मानसिक स्थिति ठीक न थी, व्यावहारिक बातों का मनन होने लगा।

❀ ❀ ❀

मानव में कामवृत्ति भी उतनी ही प्रबल होती है जितनी क्षुधा। इन्द्रियाँ अपना-अपना रस उपलब्ध करके रसवर्ती बनी रहती हैं। विषयाभिलाषा और उसकी पूर्ति अनुचित नहीं यदि उस का समुचित प्रयोग हो।

धर्मार्थ के साथ काम का स्वाभाविक संतुलन अनर्थकारी नहीं होता। पर विषय वासना जीवन के एक पक्ष को एक ओर ले जाकर निष्क्रिय बना देती है और निर्विषय निष्काम भावना उन्नत पक्ष का आश्रय लेती है! श्याम श्वेत का द्वन्द्व चलता रहता है। मुझे गृहस्थ आश्रम में आना ही पड़ेगा। बिना गृहस्थ बने जीवन के पथ पर जो भीषण व्याघात उपस्थित होंगे सम्भवत : उनके जीतने की शक्ति न रह सके।

तो क्या शादी कर लेनी चाहिए ? मेरे मित्र सुरेश बाबू ने कई बार कहा—"तुम ने जीवन को बहुत सस्ता समझ रखा है।" पर मैं करूँ तो क्या करूँ ? मेरी स्थिति बाजीगर के बन्दर की सी हो रही है।

होगा देखा जायगा—फिर कभी। पर हाँ यदि मुझे सचमुच कहीं धनेश बाबू के यहाँ जाना पड़ा तो ? क्या वहाँ मैं निभ सकूँगा। यों तो वहाँ मुझे स्वच्छन्द वातावरण मिलेगा, पढ़ने लिखने के लिए भी अधिक अवकाश रहेगा—पर यह भी तो है कि अधिक से अधिक समय इन्दिरा देवी की बातों में कटेगा।

नहीं जाता हूँ तो, भविष्य में पुस्तक प्रकाशन का जो लोभ है उसकी पूर्ति नहीं हो सकेगी। जाता हूँ तो समय का अधिक दुरुपयोग होगा।

मैं भी न जाने किस अभागे नक्षत्र में पैदा हुआ हूँगा। जालों से भागना चाहता हूँ, वे और सिर पर आकर अटक जाते हैं। कल जरा सुरेश बाबू से भी इस विषय में विचार विमर्श कर लेना होगा। और फिर वे सोने की चेष्टा करने लगे।

सुरेश बाबू अपनी पत्नी सावित्री की पढ़ाई के विषय में विचार कर रहे थे। उन्होंने सावित्री से कहा—उत्तीर्ण अनुत्तीर्ण की न सोचो—पढ़ाई करनी ही पड़ेगी।

पर घर गृहस्थी के जाल से तो छुटकारा ही नहीं मिलता। सोचा था थोड़ा भी समय मिलता रहता तो शास्त्री जी से कुछ न कुछ पढ़ लिया करती—आप उन्हें अपने ही यहाँ रहने को क्यों नहीं कहते ?

न जाने कितनी बार कह चुका हूँ, पर बेचारा न जाने क्यों इतना संकोच करता है ?

अच्छा इस बार वे आयेंगे तो मैं उनसे कहूँगी। देखें मेरे आग्रह को वे कैसे टालेंगे।

सावित्री ! मैं सोचता हूँ—मास्टर के घर के लोग तो न जाने कहाँ हैं क्या हैं—हैं भी कि नहीं। यह मैंने न कभी पूछा और न उस भले मानष ने ही बताया। यदि उसकी शादी के सम्बन्ध में पूछा जाय तो ?

बात तो बड़ी अच्छी है। अधिक आयु तक स्वतंत्र जीवन भी ठीक नहीं होता। पर क्या वे आपके प्रस्ताव को स्वीकृत करेंगे ?

आशा तो है, वह मेरी बात को टाल तो नहीं सकता। इसी बीच बाहर से किसी के आने की आहट मिली—कौन—ओह—मास्टर साहब—अरे आओ ! आओ ! शास्त्री जी तुम्हारी आयु बड़ी लम्बी है। अभी-अभी तुम्हारी ही बातें हो रही हैं।

तब तो आप ने मुझे निरा शैतान समझ लिया होगा क्यों कि शैतान को याद करो कि उपस्थित। लोग ऐसा कहते हैं, कह कर वे हँस पड़े—सुरेश बाबू और सावित्री भी हँस पड़े।

उन्हें समीप में बैठाते हुए सुरेश बाबू बोले—शास्त्री जी ! यदि तुम्हें द्विपद का चतुष्पद बना दिया जाय तो ?

तो पूरा गधा नामकरण कर दीजिएगा।

बात हँसी की नहीं भाई। सावित्री का विचार है तुम्हारी शादी तय कर दी जाय।

क्षमा करना मित्र—अपना तो ठिकाना ही नहीं किसी और को भी अपने दुर्भाग्य के साथ बांध कर उसके जीवन को भी नष्ट करूँ ?

"यह तो नामर्दों की बातें हैं," सावित्री जी ने कहा।

नहीं भाभी ! ऐसी बात तो नहीं पर मैं जरा...........

मैं जरा ट्यूशनें अधिक करने लागा हूँ। कहते क्यों नहीं रुक क्यों गये।

आप तो मजाक बनाने लगती हैं।

तो फिर आपको गृहस्थ बनने में इतना डर क्यों लग रहा है।

गृहस्थ तो बनना ही पड़ेगा। उसके बिना तो संसार में रहकर जीना सम्भव नहीं। हाँ सन्यास ग्रहण कर कहीं वन की शरण ले लूँ तो दूसरी बात है।

तो आप सन्यासी होना चाहते हैं ? अच्छा सन्यासी महाराज ! आप की चेलियाँ फिर क्या करेंगी ?

भाभी फिर वही बात। सुरेश भाई तुम भी इन की बातों को सुनकर आनन्द ले रहे हो ?

शास्त्री जी ! पति को पत्नी का साथ देना ही पड़ता है। अच्छा छोड़ो इन बातों को। सावित्री पढ़ना चाहती है, इन्हें कुछ समय क्यों नहीं देते।

वाह ! ये पढ़नाही कब चाहती हैं ? जब देखो तब झूठ-मूठ गृहस्थी का पचड़ा लिए रहती हैं। कहती हैं, अवकाश तो मिलता ही नहीं—और मुझे भी गृहस्थी के जाल में फाँसना चाहती हैं—जिससे मैं भी कुछ काम न कर सकूँ और इन्हीं की भाँति कहता फिरूँ कि अवकाश ही नहीं मिलता क्या करूँ ?

अच्छा शास्त्री जी तो आपने अपना दाँव ले लिया। लीजिए तो अब

आप अपना बोरिया बधना उठाकर यहाँ आ जाइये तो मैं पढ़ना प्रारम्भ कर दूँगी।

देखा सुरेश बाबू! स्त्रियों की बुद्धि को—न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी। जानती हैं कि शास्त्री जी यहाँ तो आयेंगे नहीं और मेरा कहना भी हो जायगा कि वे तो पढ़ाने को राजी नहीं। भाभी! कल से तुम आठ बजे पढ़ने के लिए तैयार मिलना मैं नित्य समय निकाल कर आऊँगा।

पर पहिले यह तो बताइए, आप हमारे यहाँ आकर क्यों नहीं रहते—

इस बात का उत्तर देना मेरे लिए एक समस्या है। सुरेश बाबू मेरी प्रवृति को भली भाँति जानते हैं। मैं आपके आग्रह को कभी भी न टालता पर भाभी कुछ कारणों से मैं विवश हूँ। आप नहीं समझ सकेंगी।

क्या हैं वे कारण जरा सुनूँ तो—आपका बहाने बनाने की कला पर अच्छा अधिकार है।

बहाने की बात नहीं भाभी वे मजबूरियाँ हैं—क्या बता दूँ? बातों के प्रसंग के बीच ही "पोस्टमैन!" आवाज आई। मास्टर जी उठे, डाकिये ने एक पत्र उन्हें दिया। पत्र सावित्री के नाम था। सावित्री के हाथ में पत्र देकर मास्टर साहब यथा स्थान बैठ गये। सावित्री उत्सुकता के साथ पत्र पढ़ने लगी।

प्रिय सावो!

सौभाग्यवती रहो।

समाचार ये हैं कि तुम्हारे बाबूजी हरदोई गये थे, दुर्भाग्य से बस दुर्घटना होने से उनके माथे पर अधिक चोट आ गई। अस्पताल से पट्टी बँधवाकर घर पर लिवा लाये हैं, पर उनकी दशा चिन्ताजनक है। किसी से बोलते नहीं। तुम्हारा ही नाम लिया करते हैं। तुम पत्र पाते ही जल्दी चली आओ। हम लोग घोर विपत्ति में पड़ गये हैं। सुरेश को छुट्टी मिल सके तो उन्हें भी लेती जाना। भैयों के लिए भी पत्र भेज दिये हैं। विलम्ब न करना—

तुम्हारी अम्मा,

पत्र पढ़ते-पढ़ते सावित्री की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। उसने पत्र सुरेश बाबू के हाथ पर दिया। मास्टर साहब उसकी मुखाकृति को देखकर भयानक दुर्घटना का अनुमान लगा रहे थे। सुरेश भी पत्र को पढ़कर स्तब्ध रह गये। सावित्री से बोले तुम तो आज शाम की गाड़ी से चल दो। मैं आज छुट्टी लेलूँगा और कल पहुँच जाऊँगा। मास्टर साहब! देखा आपने—"छिद्रे ष्वनर्थो बहुली भवन्ति" अच्छा अब ऑफिस का समय हो गया, आप भी अपना कार्य करें। सावित्री जड़वत् बैठी रही। मास्टर जी ने उसे सान्त्वना देने का प्रयास किया पर उसके विचलित धैर्य का बाँध टूट गया था। बोली – शास्त्री जी! बाबू न जाने कैसे रहते हैं। मेरे जाते-जाते मुझे मिलते भी हैं कि नहीं? आप प्रश्न कर दीजिए कुछ तो नहीं हुआ बाबू जी को? आप सच-सच कह दीजिए। शास्त्री जी ने वाम दक्षिण स्वर पर अंगुली रखते हुए उसे पूर्ण विश्वास के साथ कहा—"कोई चिन्ता की बात नहीं है। सभी की तबियत ठीक है। आप आज शाम को अवश्य प्रस्थान कर दें। मेरे लिए कोई सेवा हो तो कहें," कह कर वे आज्ञा लेकर होटल में लौट आये।

❀ ❀ ❀

हल्का गुलाबी जाड़ा पड़ रहा था। दोपहर में भी कुछ शर्दी सी प्रतीत हो रही थी। मास्टर साहब कानों में मफलर लपेटे चले आ रहे थे। उन्हें सावित्री जी के पिता के सम्बन्ध में सोच-सोच कर दुख हो रहा था। बेचारे कितने सज्जन और परोपकारी हैं। जिस दिन सावित्री जी ने उनसे मेरा परिचय कराया था कितने प्रसन्न हुए थे वे मेरे मिलने पर! उनके साथ वेदान्त विषयक चर्चा करने में तो बड़ा ही आनन्द आता था। सोचते-सोचते वे जैसे ही होटल में पहुँचे उनकी दृष्टि धनेश बाबू और इन्दिरा देवी पर पड़ी। वे विस्मित से रह गये। ओह! नमस्ते धनेश बाबू! नमस्ते इन्दिरा जी! अरे आप लोग कब से यहाँ बैठे हुए हैं?

आइए मास्टर साहब! कुछ देर हो गई है हम लोगों को।

"कहिए कैसे कष्ट किया। चलिए ऊपर चलकर बैठा जाय," कह कर

ये उन लोगों को अपने कमरे में ले चले। और मैनेजर साहब को एक ट्रे चाय का आर्डर दे गये।

कमरे में एक टूटी सी चारपाई बिना बिछौने की थी। नीचे बिछी हुई दरी पर कुछ लिखे हुए कागज फैले हुए थे। इधर-उधर सिगरेट के बुझे हुए टुकड़े पड़े थे। तीन ओर से तीन कुर्सियाँ पड़ी थीं जो ऐसी ज्ञात होती थीं मानो हाल में ही नक्खास से खरीद कर लाई गई हों। कोने में कुछ कपड़ों का ढेर था जो मैले पड़े थे। अलमारी बिना किवाड़ों की थी उसी पर कुछ स्वच्छ रूप में पुस्तकें सजाकर रखी गई थीं। इन्दिरा देवी की दृष्टि शनैः शनैः समस्त प्रकोष्ट का निरीक्षण कर रही थी। धनेश बाबू को वहाँ बैठने में संकोच सा हो रहा था पर इन्दिरा देवी वहाँ कुछ अनिर्वचनीय शान्ति का सा अनुभव कर रहीं थीं।

तीनों व्यक्ति तीनों कुर्सियों का बृत्त बनाकर बैठ गये। बीच में मास्टर साहब ने एक छोटी सी भद्दी आकृति की मेज भी रखदी। इन सब वस्तुओं को देखकर इन्दिरा देवी मास्टर साहब के अनियमित और अवहेलनापूर्ण जीवन के सम्बन्ध में बहुत कुछ सोच रहीं थीं और धनेश बाबू उसके निर्मम पक्ष पर विचार कर रहे थे।

निस्तब्धता को भंग करते हुए मास्टर साहब ने कहा—कहिए कैसे कष्ट किया ? क्षमा कीजिएगा। यहाँ तो कई दिन से झाडू भी नहीं लगी।

नहीं-नहीं आप संकोच न करें सब ठीक है।

कलाकारों का विचित्र ही ढंग होता है। हाँ तो हम लोग आपको अपने यहाँ ले जाने को आये हैं। आप तैयार हो जाइए न।

"आपका सामान कुछ और भी है क्या ?" धनेश बाबू ने पूछा।

नहीं सामान तो इतना ही है पर आप इतना कष्ट क्यों उठाना चाहते हैं मेरे लिए ?

मास्टर साहब इसमें आपको अवश्य कष्ट हो रहा होगा—हमें तो एक प्रकार का सुख अनुभव हो रहा है।

होटल मैनेजर का नौकर चाय लिया था—सबने चाय पीनी प्रारम्भ की।

आपका कितना हिसाब बाकी है यहाँ ?

क्या कीजिएगा पूछकर ?

हम उसे चुकता कर देंगे—फिर आप वेतन मिलने पर हमें दे दीजिएगा। हम चाहते हैं आप इसी समय हमारे साथ चलें।

आप मुझे अधिक लज्जित न करें इन्दिरा जी। मास्टर जी की आँखों में कृतज्ञता के साथ-साथ क्षमायाचना का भाव था।

अच्छा तो जैसी आपकी इच्छा हो—हमारे वश ही क्या ? चलिए अब यहाँ बैठकर क्या होगा इन्दिरा जी ने धनेश बाबू से कहा—मुख विकृत कर वे ऐसे स्वर में बोली मानो अब वे कभी मास्टर जी से बातें ही नहीं करेंगी। मास्टर जी सहम गये। बोले—

आप अप्रसन्न सी हो गईं। सोचता था·········

आपको जो कुछ सोचना है मास्टर साहब वहीं चलकर सोच लीजिएगा। अब आप यदि हम लोगों को कुछ भी समझते हैं तो आपको हमारे साथ चलना ही पड़ेगा। अन्यथा··········मास्टर जी को विवश होकर तैयार हो जाना पड़ा। चारपाई, मेज और कुर्सियों को वहीं छोड़कर बाकी सामान मोटर में ही रखवा दिया गया।

मैनेजर को पचास रुपये देकर इन्दिरा देवी ने उन्हें धन्यवाद दिया और मोटर पर बैठने को प्रस्तुत हुए।

"मास्टर जी ! मित्र कभी कभी हम गरीबों की भी सुध लेते रहना भूल न जाना भाई। तुम्हारे जाने से मुझे क्यों बुरा सा लग रहा है," होटल मैनेजर ने कहा।

मास्टर साहब ने पुनः आने का वचन दिया और मोटर चल दी।

धनेश बाबू मोटर चला रहे थे। मास्टर जी और इन्दिरा पीछे बैठे थे। "तुम्हारे जाने से मुझे जाने क्यों बुरा लग रहा है ?" मैनेजर के ये शब्द

इन्दिरा देवी के कानों में गूंज रहे थे। वह सोच रहीं थीं—इनके जाने से उन्हें बुरा लग रहा है, और इनके आने से मुझे कितना अच्छा लग रहा है। मोटर चली जा रही थी, कभी कभी धचका खाने से जब मास्टर जी की देह के साथ इन्दिरा जी की देह की टक्कर हो जाती तो वे अपने को धन्य समझतीं।

घन्टे भर बाद मोटर धनेश बाबू के बंगले पर जाकर रुकी। नौकरों को सामान उतारने का आदेश देकर वे लोग मास्टर जी के साथ भीतर गये और इन्दिरा देवी ने अपनी ही पसन्द से एक कमरा चुन कर मास्टर जी को दिया, जिसके साथ लैट्रीन और बाथरूम भी जुड़े थे। मुजाइक की फर्श वाले चमचमाते कमरे में मास्टर साहब का सामान जब डाला गया तो उनकी दरिद्रता पर कमरा भी रो उठा होगा। वह मूक जड़ न होता तो वह न जाने क्या कहता ?

सामान को यथा स्थान रख कर इन्दिरा देवी ने स्वयं अपने हाथों से मास्टर साहब की पुस्तकों को "रैक" में सजाकर रखा। एक अच्छी सी पलंग भी पड़ गई। चारों कोनों पर फूलों के गुलदस्तों को रखने के लिए बड़े-बड़े तिकोने स्टूल रख दिये गये। कमरा सजा दिया गया।

कमरे की सालंकृत सज्जा को देखकर मास्टर साहब का ध्यान महाकवि राज शेखर पर गया। उसने कवियों की कोटियों को गिनाते समय लिखा है कि—कवि का प्रकोष्ट सालंकृत होना चाहिए। वहाँ मन को मुग्ध करने की पूर्ण सामग्री होनी चाहिए—भावों की जागृति के साधन भी वहाँ उपस्थित रहने चाहिए। तो क्या इन्दिरा देवी को इसका पूर्ण ज्ञान होगा ? थोड़ी ही देर में यहाँ इतना परिवर्तन ! धनेश बाबू ने कमरे में प्रवेश किया तो चित्त प्रसन्न हो गया। बोले—

मास्टर साहब ! अब आपका कमरा ठीक रहा।

धन्यवाद ! आपकी कृपा का मैं किन शब्दों में स्वागत करूँ ?

आप इन्दिरा देवी से ही सब कुछ कहें। यही हैं आपको यहाँ तक लाने वाली—मैं तो आज्ञा पालक हूँ।

कैसे कहूँ मेरे लिए तो आप दम्पती·········कमरे के सुसज्जित होने पर इन्दिरा देवी ने मास्टर साहब के स्नान का प्रबन्ध कर दिया।

भोजन के पश्चात दो पहर का समय गोष्ठि सुख की अनुभूति में बीत गया।

आज धनेश बाबू को मिल कर्मचारियों की बैठक में ६ बजे भाग लेना था। उन्हें कुछ आवश्यकीय कार्य भी थे अतः चार बजते ही वे इन्दिरा देवी से बोले—"मुझे तो आज मिटिंग में जाना है। समय हो गया जरा मुकुट विहारी लाल वकील के यहाँ होता हुआ जाऊँगा। तुम आज मेरे साथ न आ सकोगी? मास्टर साहब की और जो कोई व्यवस्था हो कर देना," कहकर वे अपनी ड्रेस बदलने चले गये।

मास्टर साहब ने इन्दिरा देवी से कहा—आप भी धनेश बाबू के साथ जातीं व्यर्थ मेरे लिए इतना कष्ट क्यों हो। मैं भी पाँच बजे पढ़ाने जाऊँगा।

आज अभी आपकी व्यवस्था ठीक करली जाय तब जी शान्त हो। आप भी पढ़ाने न जा सकेंगे।

मास्टर साहब कुछ न बोल सके। मेरी ही व्यवस्था करने के लिए तो धनेश बाबू इन्हें छोड़ रहे हैं और मैं ही यहाँ न रहकर ट्यूशन पर जाना चाहता हूँ। ये लोग भी क्या सोचेंगे, वे इन्दिरा देवी की बात मान गये।

धनेश बाबू तैयार होकर चले गये। आध घण्टे बाद चाय तैयार होकर आ गई, चाय पीते-पीते इन्दिरा देवी बोली—हम लोग जरा बाजार चलेंगे। कुछ सौदा पत्ता खरीदना है। आपको भी कुछ खरीदना हो तो कहिए।

मुझे तो किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं। हाँ फोन्टेनपेन का निब जरा बिगड़ गया है उसे ठीक करवा लूँगा।

आप तो लिखते रहते हैं। कागजों की कमी तो नहीं?

जी नहीं अभी तो हैं—फिर की फिर देखी जायगी। पाँच बजे सायं-काल मार्केट में पहुँचकर इन्दिरा देवी ने एक जोड़ा मर्दानी धोती, पाँच कमीज, दो कुर्तों का कपड़ा खरीदा। अपने लिए भी कुछ सामान लिया।

दो जस्ते कागज स्याही और एक अच्छा सा फोन्टेनपेन भी खरीद लिया गया। सौदा कर लेने के बाद स्वीट हाउस में गये और वहाँ कुछ नाश्ता कर लिया। मास्टर साहब सोच रहे थे—धनेश बाबू तो धोती कुर्ता पहनते ही नहीं, ये किसके लिए खरीदे गये। हो सकता है अपने किसी सम्बन्धी के लिए खरीदे गये हों—इन्दिरा देवी मास्टर जी को टेलर मास्टर की दुकान पर ले जाकर बोलीं—मास्टर जी के नाम के कमीज और कुर्ते सिलकर परसों दे देना। नौकर आकर ले जायगा। कपड़े सिलने को देकर वे रिक्शे से घर के लिए चल पड़े। मास्टर साहब हतबुद्धि हो रहे थे। इन्दिरा देवी की इतनी उदारता का बदला वह उसे किस प्रकार दे सकेंगे? दोनों कुछ क्षणों तक मौन रहे इन्दिरा देवी बोली—मास्टर साहब आपके साथ बातें करने में और आपके साथ रहने में एक अद्भुत आनन्द की अनुभूति होती है। न जाने आपमें क्या आकर्षण है। होटल मैनेजर आपके आने पर बेचारा कितना दुखी हो रहा था। ठीक कहा है किसी कवि ने—

"संस्कारों की भावभूमि पर मिलन वियोग हुआ करते हैं।"

आप तो मुझ मन्द भाग्य को न जाने क्या क्या कहने लगती हैं? मैं तो इस सृष्टि का एक ऐसा अधम प्राणी हूँ जिसकी सत्ता का किसी को पता ही नहीं।

मास्टर साहब! आपकी पुस्तकें प्रकाशित हो जायें तो लोग आपको जानने लगेगें। क्या गजब का लिखते हैं आप—रिक्शा चली जा रही थी और इन्दिरा देवी भी विचारों की तरंग में बहीं जा रहीं थीं।

मास्टर साहब को भी ऐसा लग रहा था मानो उन्हें नरक से निकाल कर स्वर्ग में रख दिया गया, पर वे यह भी सोचते जा रहे थे कि न जाने इस अत्यादर में क्या है। मेरी कविता का इतना प्रबल प्रभाव पड़ा है इनके हृदय पर कि ये मुझे इतना आत्मीय समझ रही हैं। कौन है आज के इस विषम स्थिति युग में जो इस प्रकार किसी के साथ करता हो। इन्दिरा देवी बड़ी भावुक और सहृदय ज्ञात होती हैं। पति भी कितनी अच्छी विचार धारा के पाये हैं इन्होंने। आगे गड्ढा था रिक्शे वाला—

देख न सका धम से रिक्शे का पहिया उस पर पड़ गया। हिचकोला लगने ही इन्दिरा देवी मास्टर जी की गोद में लुढ़क पड़ी। उसे मानसिक तोष तो हुआ पर उसने कृत्रिम क्रोध से रिक्शे वाले को डाटना प्रारम्भ कर दिया। जरा देर बाद वह संभल कर बैठी। रिक्शा अपनी चाल पर चलने लगा।

❀ ❀ ❀

घर पहुँच कर मास्टर जी अपने कमरे में विश्राम करने लगे और इन्दिरा देवी रसोई में जाकर धनेश बाबू की रुचि के अनुसार तरकारियाँ तैयार करने लगीं।

मास्टर जी के भोलेपन पर उन्हें हर्ष हो रहा था। मास्टर जी लेटे लेटे सोच रहे थे—पढ़ाने न जा सका सुमन आज प्रतीक्षा करती रही होगी। उसे क्या मालूम कि मास्टर जी अब होटल में नहीं! क्या करूं? सुमन की पढ़ाई की चिन्ता मुझे क्षण भर भी चैन नहीं देती। उसे परीक्षा दिला सकता तो क्या ही सुन्दर था! बेचारी सुमन! उन्हें अपनी क्रूरता पर पश्चा-ताप होने लगा। मैंने उसके मन को व्यर्थ ही दुखाया। उसकी बात भी अपने स्थान पर ठीक ही थी। पर'''' वे सोच ही रहे थे कि इन्दिरा देवी ने आकर उनका ध्यान तोड़ दिया।

साहब के आने में मालूम होता है कुछ देर है, आठ बज रहे हैं। मास्टर साहब! आप भोजन कर लें।

आने दीजिए साहब को साथ साथ भोजन करने में आनन्द आएगा। वे कह भी न पाये थे कि हौर्न की आवाज सुनाई दी। इन्दिरा देवी ने बाहर जाकर देखा तो साहब की कार आकर खड़ी मिली।

धनेश बाबू को कपड़े देकर उसने नौकर से भोजन लगाने को कहा।

भोजन करते-करते धनेश बाबू ने पूछा—मास्टर साहब की व्यवस्था ठीक हो गई?

"हाँ—आज मास्टर साहब के लिखने-पढ़ने का सामान भी आ गया," इन्दिरा देवी बोलीं।

"बहुत अच्छा" कह कर धनेश बाबू ने कहा—इन्दिरा ! मुझे कल ही विशेष कार्य से दिल्ली जाना है। एक सप्ताह लग जायगा। इस बीच वकील साहब से मिलकर फार्म वाले मुकद्में के विषय में जानकारी प्राप्त कर लेना।

भोजन समाप्त हुआ और सब लोग रात्रि के मौन राज्य में विचरण करने लगे।

मास्टर साहब की प्रतीक्षा में सुमन आधे घण्टे तक फाटक पर खड़ी रही। समय अधिक होने पर उसे यह ज्ञात होने लगा कि अब मास्टर साहब नहीं आयेंगे। वह अपने अध्ययन कक्ष में चली गई। कुछ देर तक इधर-उधर की कल्पनाओं के जाल में फँसी रही। सीताराम ने आकर सूचना दी—राजा भैय्या ! कोई प्रमोद बाबू आपसे मिलना चाहते हैं। प्रमोद के असम्भावित आगमन से सुमन को एक प्रकार का आनन्द हुआ। स्वयं बाहर गई और प्रमोद बाबू को अपने ही कक्ष में ले आई।

वहाँ पर सिगरेट और पान की तस्तरी देखकर प्रमोद को यह समझते देर नहीं लगी कि सुमन को कोई व्यक्ति अध्ययन कराने आता है। वे सुमन से बोले—कहो सुमन ! सबसे पहले यह बताओ कि तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है।

पढ़ाई तो समुचित ढंग से ही चल रही है प्रमोद बाबू ! आप अपनी कहिए—कैसा लगा आपको बरेली ?

निरा पागल खाना ! बड़ा ऊबड़-खाबड़ शहर है सुमन ! नौकरी का प्रश्न है, नहीं तो मैं वहाँ रह न पाता।

आपको कैसा लगा लखनऊ ?

अच्छा है पर अब तो केवल घर पर ही सारा समय निकल जाता है।

तो पढ़ाई पर लगीं हैं आप ? कौन सी परीक्षा देनी है ?

विद्याविनोदिनी।

ठीक है। उसके आधार पर आप इन्टर में प्रवेश पा सकती हैं। कौन सज्जन आते हैं पढ़ाने ?

मास्टर साहब आते हैं। कहीं बाहर के रहने वाले हैं—पर पढ़ाते बहुत ही अच्छा हैं।

क्या नाम है ?

नाम तो नहीं जानती।

अच्छी रही—पढ़ते-पढ़ते इतने दिन हो गये पर नाम भी नहीं पूछा।

कभी ऐसा अवसर ही नहीं आया। हाँ एक बार उन्होंने सम्भवतः धीरेन्द्र शास्त्री कुछ ऐसा ही सा नाम बताया था।

खैर तुम्हारा जी लग रहा है न पढ़ाई में ?

हाँ प्रमोद बाबू। आप तो यहाँ रहे ही नहीं; नहीं तो मेरा विचार तो आपसे ही पढ़ने का था।

सोचा मैंने भी यही था पर..............

कुसुम आजकल कहाँ हैं।

यहीं आई हुई हैं वह भी। प्रमोद बाबू! आप कितने दिन का अवकाश लेकर आए हैं ?

एक सप्ताह का। काका जी काकी जी कहाँ हैं ?

परसों ही इलाहाबाद गये हैं।

सुमन ! तुम्हारा मुख उतरा-उतरा क्यों दिखाई दे रहा है।

अब सुमन क्या उत्तर दे ? वह यह कैसे समझावे प्रमोद बाबू को कि मास्टर साहब की प्रतीक्षा उसे व्याकुल बना देती है। और मास्टर साहब ! उनका क्या कहना है, ध्यान ही नहीं देते। उसका अन्तर्द्वन्द्व बढ़ रहा था; अपने मन का भाव छिपाकर वह बोली—इधर कई दिन से तबियत ठीक नहीं है।

चलो तुम्हें बनारसी बाग घुमा लाऊँ।

धन्यवाद ! चलती अवश्य पर दीदी नाराज हो जायँगी।

सुमन तुम्हें याद है न रेल की घटना ?

हाँ प्रमोद बाबू वह घटना तो कभी-कभी मुझे बहुत हँसा देती है। क्या-क्या कह गई थी मैं आपको ओह !

उस घटना ने तो तुम्हारी स्मृति को मेरे हृदय में पूर्ण अंकित कर रखा है—कभी-कभी तो.....................

कभी-कभी तो क्या ?............

यही कि तुमसे मिलने की इच्छा बलवती हो जाती है—सुमन....... प्रमोद बाबू कहते जा रहे थे।

कुसुम भीतर आ रही थी पर अपरिचित आवाज को सुनकर वह बाहर ही ठिठक गई।

प्रमोद बाबू ने कहा—क्या कल तुम समय निकाल कर सिनेमा नहीं चल सकोगी ?

नहीं प्रमोद बाबू। हाँ यदि दीदी भी राजी हो गईं तो शायद चल सकूँ।

तो फिर पूछ लेना अपनी दीदी को—वे सुमन की मुखाकृति को ऋजु दृष्टि से देख रहे थे। सुमन ने भी एक बार उनकी आँखों की ओर आँख उठाकर देखी—चित्त कुछ व्यग्र हुआ। उसे उस समय की घटना याद आई जो झुनिया ने उससे कही थी। उसने आँखें नीची कर लीं। प्रमोद बोला तो कुसुम को पूछ कर १७३५ पर फोन कर देना। अवकाश निकालना अवश्य। सुमन ने स्वीकृति दी। प्रमोद चलने को उद्यत हुआ। कुसुम हट कर चली गई।

प्रमोद के चले जाने पर कुसुम ने सुमन के पास आकर पूछा—कौन था यह व्यक्ति ?

प्रमोद बाबू।

कौन प्रमोद बाबू ? यह क्या क्या बक रहा था ? सुमन ! मुझे तुम्हारी ये बातें बिलकुल पसन्द नहीं। क्या काम था इसका तुमसे ? मैं बाहर सब कुछ सुन रही थी। सिनेमा ले जाने के लिए यह क्यों कह रहा था ? खबरदार जो ऐसे वैसे लोगों से इस प्रकार की बातें कीं। न जाने यह

इसी प्रकार कब-कब हमारी आँखें बचाकर आता होगा। कल से मैंने इसे यहाँ देखा तो तेरी खैर न होगी।

दीदी तुम गलत क्यों समझ रही हो? यह तो अपनी ही बिरादरी के हैं। बाबू जी भी इन्हें जानते हैं और काका जी भी, ये वेही सज्जन तो हैं जिनके विषय में मैंने कहा था कि गाड़ी पर कैसे कैसे आदमी मिल जाते हैं; नाम है इनका प्रमोद।

कुसुम का पारा कुछ गिरा, पर फिर भी वह बोली—फोन मत करना उसको।

दीदी तुम भी न जाने क्यों इतने कृपण विचार की हो रही हो! क्या तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं?

विश्वास तो सुमन करना ही पड़ता है पर तुम नहीं समझतीं लोग अंगुली उठाते हैं।

उठाते हैं तो उठाने दो। क्या कर दिया मैंने जो लोगों को या तुमको कुछ कहने का मौका मिल गया? लोग तो न जाने क्या-क्या शंका कर बैठते हैं। किस-किस को रोकने दौड़ेगी आप! दुनिया वाले तो किसी भी भाँति जिन्दा रहने का अवसर नहीं देते।

चुप रह सुमन—बहुत ज्ञान मत झाड़। आने दे काका जी को देखूँगी तेरी मुँहजोरी।

सुमन ने रोते रोते मन्द स्वर में कहा दीदी तुम भी मुझी पर बिगड़ रही हो। जाने दो कल प्रमोद बाबू के आते ही कहलवा दूँगी कि मैं उनसे नहीं मिलना चाहती।

यह तो तू मूर्खों की सी बात कहती है। वह बेचारा क्या समझेगा?

जब सुमन का क्रंदन न रुका तब कुसुम का भी गला भर आया। वह बोली—पगली मैं तुझे कुछ थोड़ी ही कह रही हूँ। दुनिया है जरा बच के चलना ठीक होता है।

अच्छा उसे फोन कर देना—हम लोग सिनेमा नहीं जायेंगे वह यहाँ

आकर बात करले। मैं स्वयं उससे बातें कर लूँगी। कहकर उसने सुमन का सर सहलाया और उसे बाहर ले गई।

❀ ❀ ❀

समय के पैर अपने पथ पर चल रहे थे। उसे रुकने का अवकाश न था। जो उसके साथ चल सके चले, न चल सके रुककर बैठ जाय। उसे किसी की चिन्ता नहीं, मास्टर जी आज भी न आये। सुमन व्यग्र थी, कुसुम को उनकी लहर का ध्यान आ रहा था। घड़ी चार बजा चुकी थी। दिन की गर्मी अपना आधिपत्य शीत पर आरोपित करने का विफल प्रयास कर रही थी। चिलबिलाती धूप में छत पर दोनों बहिनें बैठी बातें कर रहीं थीं। मास्टर साहब नाराज तो नहीं हो गये यही चर्चा का विषय था। सीताराम ने फिर प्रमोद बाबू के आगमन की सूचना दी। कुसुम ने उन्हें छत पर ही बुलाने को कहा। सीताराम उन्हें छत पर पहुँचाकर चला गया।

नमस्ते होने के पश्चात सुमन ने प्रमोद का दीदी से और दीदी का प्रमोद से परिचय करवाया। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई आपसे मिलकर। सुमन प्रायः आपकी चर्चा किया करती थी।

धन्यवाद ! मैं कौन सी गुणवती हूँ जो मेरी चर्चा होती रही होगी ?

दीदी पहले इन्हीं से पढ़वाने का विचार तो कर रहे थे काका जी।

तो क्या आप यहीं रहते हैं ?

नहीं मैं यहाँ छुट्टी पर आया हूँ—रहता तो आजकल बरेली में हूँ।

बाल बच्चे सभी वहीं होंगे।

जी नहीं। मैं अभी बैचलर हूँ। और गृहस्थी के जाल में फँसना भी नहीं चाहता हूँ।

यह तो आपका भ्रम है प्रमोद बाबू ! इस कोल्हू में तो सभी को पिसना पड़ता है। (उसने सोचा सुमन के लिए यदि इसको…………) आप भले ही भागें ; जब समाज आपको भागने दे।

मैं समाज की चिन्ता नहीं करता। जो समाज अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए निरीह प्राणियों का गला घोट सकता है मैं उस समाज के समस्त नियमों के विरुद्ध आचरण करने को तैयार रहता हूँ। जाने क्या-क्या और कैसे-कैसे घातक नियमों को बना रखा है समाज ने! मेरी समझ से तो उसके समस्त नियम मरी बन्दरिया के बच्चे के मोह के रूप में अपनी छाती से चिपकाये हुये हैं।

कुसुम उसकी इस प्रकार की बातों को सुन कर उसे केवल बकवादी युवक समझने लगी थी। जो समाज की नियम शृंखला को तोड़ सकता है उससे समाज की हित कामना करना चील के घोंसले में मांस मिलने की आशा करना है। फिर भी वह बोली—प्रमोद बाबू! समाज के नियमों को तोड़ना आप जितना आसान समझते हैं वे उतने आसान हैं नहीं। उनकी भी कुछ अपनी परम्परायें हैं।

हो सकती हैं पर उन विकृत परम्पराओं का विरोध तो किया जा सकता है। खैर मैं तो आप से आज यही प्रार्थना करने आया था कि आज चल कर कोई सिनेमा देख लिया जाय।

इसके लिए धन्यवाद! काका जी काकी जी की अनुपस्थिति में हमारा जाना ठीक नहीं। फिर वही बात आ गई लोग क्या कहेंगे?

यही तो हमारे समाज की सबसे बड़ी भूल है। विदेशों में तो यह कुछ नहीं चलता।

होगा! हमें तो अपने यहाँ रहना है और अपने ही यहाँ का वातावरण देखना है। आप एक दिन फिर कष्ट करें जब काका जी आजाएँगे, उनकी अनुमति लेकर हम आपके साथ चल सकेंगी।

इसके पश्चात् कुछ देर तक और-और बातें होती रहीं, सुमन मन ही मन अपने भाग्य को कोस रही थी।

प्रमोद बाबू उठकर चल दिये। दोनों बहनें भी अपने-अपने प्रकोष्ठ में चली गईं।

प्रमोद की छुट्टियाँ कम थीं अतः वह इधर-उधर के काम में जुटा रहा।

उस दिन के बाद फिर वह वहाँ आया ही नहीं। उसे कुसुम की बातें अच्छी नहीं लगीं। बड़ी गर्वीली ज्ञात होती हैं। समाज का भूत इन लोगों को ऐसे पकड़े है जैसे जोंक किसी जानवर के नथूनें में अपना घर बना लेती है। ऐसी देवियों से भला भारत का उद्धार हो सकेगा?

कुसुम सोच रही थी—प्रमोद के विचार कुछ अच्छे नहीं। समाज की भी तो कोई मर्यादा है? उसके नियमों में बंधा रहने से ही आज भारत अपने को बचा सका है। मैंने माना कि उसमें कुछ दुर्गुण आ गये हैं, पर इसका यह अर्थ तो नहीं है कि इसके लिए उसकी भलाइयाँ देखी ही न जा सकें।

सुमन सोच रही थी—दीदी ने तो सब चौपट ही कर दिया।

प्रमोद बाबू से दो चार दिन बातें कर लेते—क्या अच्छा था। बेचारा छुट्टियों में घर न जाकर केवल मेरे ही लिए तो यहाँ आया था। दीदी को क्या मालूम कि वह क्यों आया। पर दीदी को समझा दूँ भी कैसे? और कहूँ तो क्या कहूँ? तीनों के हृदय अलग अलग संघर्ष कर रहे थे और निष्कर्ष पर कोई भी नहीं था।

❀ ❀ ❀

आज मास्टर जी को इन्दिरा देवी के यहाँ आए हुए तीन दिन पूरे हो चुके थे। उनका मन प्रसन्न होते हुए भी अप्रसन्न इसलिए था कि वे पढ़ाने न जा सके थे। आज उन्होंने शाम को यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि वे पढ़ाने अवश्य जायँगे। शाम को चाय पीने के पश्चात् जब वे ट्यूशन पर जाने के लिए उद्यत हुए तो इन्दिरा देवी बोलीं—मैं भी उधर ही चल रही हूँ। टेलर मास्टर से कपड़े भी तो लेने हैं। चलिए आपको भी नं० २ कोठी पर छोड़ दूँगी।

कितनी देर पढ़ायेंगे आप वहाँ?

कह नहीं सकता यों तो एक घण्टे पढ़ाना चाहिए, पर इधर तीन दिन से न जा सका अतः कुछ अधिक देर तक रुकना पड़ेगा।

दो घण्टे?

हाँ दो ढाई घण्टे तो लग ही जायेंगे।

तो फिर आप को लेने मैं वहीं चली आऊँगी। और आज मेकिंग्ड शो देख लिया जायगा।

आप व्यर्थ कष्ट करेंगी, मैं चला आऊँगा।

तो क्या आज आप सिनेमा देखने न चलेंगे ?

मेरी रुचि उस ओर नहीं है। दो चार महीने में कभी कोई अच्छी सी पिक्चर आ गई तो देख लेता हूँ अन्यथा जाता ही नहीं।

आज तो आप को मेरा आग्रह मानना ही पड़ेगा।

जैसा आप कहें—पर मैं मैं जरा·········

आप जरा सिनेमा के शौकीन नहीं हैं, जानती हूँ पर कभी कभी मनोञ्जन के लिए यदि सिनेमा देख लिया जाता है तो यह शौकीनीपन नहीं होता। चलिए आपको कहाँ तक छोड़ दूँ। दोनों तैयार हो गये।

जरा ही देर में मोटर नं० २ कोठी के फाटक पर जाकर रुकी। सुमन नित्य की भाँति आज भी फाटक पर खड़ी थी। इन्दिरा ने सुमन को और सुमन ने इन्दिरा को विस्फारित नेत्रों से देखा। मास्टर साहब उतर पड़े। इन्दिरा देवी बोलीं—तो ठीक सवा छः पर मेरी गाड़ी यहीं पर आपको मिलेगी, विलम्ब न हो। सुमन इन शब्दों को बड़े ध्यान से सुन रही थी। उसके चेहरे पर अकस्मात ईर्ष्या का भाव उभरने लगा। इन्दिरा देवी से छुटकारा पाकर मास्टर साहब सुमन के साथ सीधे उसके कक्ष में गये। सुमन मौन रही। मास्टर जी ने कहा—

सुमन दो तीन दिन तुम्हारा अनध्ययन हो गया क्या करूँ ? मुझे मेरी परिस्थितियों ने विवश कर दिया था।

ये महामाया कौन थीं जो आपको मोटर लेकर यहाँ तक छोड़ने आई थीं ? सुमन ने तुनक कर कहा—

आज कल मैं इन्हीं के यहाँ रहने लगा हूँ। ये मेरे मित्र धनेश बाबू की धर्मपत्नी हैं। क्यों सुमन ! तुम्हारा क्रोध अभी भी दूर नहीं हुआ ?

मेरे क्रोध की आपको चिन्ता ही क्या ? मेरा क्रोध तो आपके आने से ही दूर हो गया था—पर फिर अब—

अब वह फिर पराकाष्ठा को प्राप्त होने लगा यही न ?

मास्टर साहब ! आप न जाने सुमन को क्या समझ बैठे हैं ? पर मैं आप से सच कहती हूँ······

सुमन ! तुम्हें मैं जानता हूँ। और मेरा ध्येय यही रहा है और है कि मैं किसी भी भाँति तुम्हें परीक्षा दिलाकर उत्तीर्ण करवा दूँ।

मेरी परीक्षा तो हो चुकी मास्टर साहब !

यह तुम क्या कह रही हो सुमन ?

मास्टर साहब ! मैंने इस दुनिया में यदि किसी को अपना कुछ समझा है तो केवल आपको। आपने मुझ में जो तत्त्व उत्पन्न कर दिये मैं उनके लिए जीवन भर आपकी आभारी रहूँगी। पर मेरा मन आपकी अनुपस्थिति में व्यग्र क्यों हो उठता है यह मैं नहीं जानती।

तुम ठीक कहती हो सुमन मैं भी ऐसी ही अनुभूति करता हूँ।

मास्टर साहब के इन शब्दों को सुनकर सुमन का मुर्झाया मन मानो हरिया उठा। वह बोली—आप तो मेरी जरा सी गलती पर न जाने क्या-क्या सोच बैठे—

यह बात नहीं सुमन—मैंने तुम्हें जीवन का व्यावहारिक पहलू बताया था और मनुष्य की दुर्बलता।

खैर—आप यह तो बतावें इन देवी जी के साथ आप सिनेमा देखने जायेंगे न ?

मैं विवश हूँ सुमन।

क्यों ? क्योंकि आप उनके यहाँ रहते हैं इसलिए उन्होंने आपको मोल लिया।

यह बात नहीं। पर उनके यह रहने पर उनके विरुद्ध भी तो नहीं जा सकता।

ठीक है मास्टर साहब ! कल वह यह भी कह देंगी कि पढ़ाने भी न जाया करो तो आपको यह आज्ञा भी माननी पड़ेगी न ? हमने तो कई बार आग्रह किया पर आप हमारे साथ कभी भी सिनेमा नहीं गये।

मास्टर साहब का घोर अपराध मानो सुमन के सामने था। वे कुछ न बोले एक गहरी ठंढी साँस लेकर रह गये। वे सोचने लगे—सुमन जाने क्या-क्या समझने लगी। स्त्रियों को कितनी भी ज्ञान क्यों न हो जाय पर उनकी स्वाभाविक इर्ष्यालु प्रवृत्ति अवसर पाकर उखड़ ही जाती है। सुमन के क्रोध की मात्रा कुछ न्यून हुई तो ईर्ष्या का भाव उदित हो गया। इसे कैसे समझाऊँ कि कहीं तो व्यवहार निर्वाह के लिए बाहरी वातावरण की रक्षा करनी पड़ती है। जहाँ आत्मीयता का भाव पूर्ण रूप से अपनी सत्ता नहीं जमाता वहाँ बाहरी दिखावा भी करना ही पड़ता है। अभी इन्दिरा देवी से मेरी इतनी आत्मीयता तो नहीं हो गई कि मैं वहाँ भी यहाँ की भाँति ही निर्व्याज व्यवहार करने लगूँ। पर सुमन की इस प्रवृत्ति को भी दूर करना ही पड़ेगा।

उन्हें मौन देखकर सुमन कुछ सकपकाई बोली मास्टर साहब क्षमा चाहती हूँ।

क्षमा किस बात की ? तुम तो अब मेरे व्यक्तित्व पर भी शंका करने लगीहो। तुमने जो कुछ अभी-अभी कहा जानती हो उसका क्या प्रभाव है ?

इतना ही जानती तो आप मुझे महामूर्ख क्यों कहते ?

सुमन प्रत्येक बात को सोच विचार कर कहना चाहिये।

बिना सोची विचारी बात का प्रभाव कभी-कभी उल्टा हो जाता है। मैं कह नहीं सकता कि मैं क्यों तुम्हारे सामने इस प्रकार इन बातों को सुन सका ?

सुमन भयभीत हो उठी, अब उससे अपने आपको न दबाया जा सका। वह अपलक दृष्टि से मास्टर साहब की ओर देखकर बोली—यह मेरी दुर्बलतायें में हैं मास्टर साहब ! मैंने अपने मन को वज्र बना दिया था। पर मेरी वर्षों की संयम की भित्ति कुछ कम्पवती सी हो गई थी। आपकी

श्रद्धा, ममता, स्नेह और पाण्डित्य ने मेरे मन को अनायास जीत लिया और क्या कहूँ मैं······

उसकी बातों को सुनकर मास्टर साहब ने कहा—तुम जो कुछ कह रही हो यह स्वाभाविक है इसके सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा क्यों हुआ। इसमें न तुम्हारा दोष है और न किसी और का। आयु का प्रभाव भी अमिट है। पर बात इतनी सी है कि इन सब बातों पर यत्किञ्चित नियंत्रण रखना मनुष्य की सबसे बड़ी विजय है।

पर इस विजय को प्राप्त करना सभी के लिए सहज भी तो नहीं।

मानता हूँ सुमन कि यह काम अति कठिन है पर यदि स्नेहपात्रों की सीमा का भी ध्यान रख लिया जावे तो कुछ न कुछ आसानी हो ही जाती है। मैं तुम्हें बुरा नहीं कहता। तुमने जो कहा, जो सोचा, जो समझा सब ठीक है—पर मैं भी कुछ ऐसी विवशताओं के बीच चल रहा हूँ कि तुम्हारी प्रत्येक इस प्रकार की बात का मुझे विरोध करना पड़ रहा है, क्योंकि मैं तुम्हारी उन्नति के लिए कठोर बना रहना, कर्तव्य सा समझ रहा हूं।

ठीक है मास्टर साहब—पर विकारग्रस्त मन का और उपचार क्या हो सकता है ?

उसके उपचार के लिए श्रद्धा का विस्तार ही ठीक है। श्रद्धा और ममता का भाव तुम मेरे प्रति या किसी के भी प्रति रखोगी तो वह कल्याणकारी होगा। वासना का अन्त इसी से हो सकता है।

अब सुमन की आँखें खुल गईं। वह मन ही मन पश्चाताप करने लगी। उसने व्यर्थ ही दुखाया मास्टर साहब का जी ! वे कुछ और सोच रहे हैं, मैं कुछ और। आखिर मुझे यहाँ भी हार खानी पड़ी। पर मेरी इस हार में भी मेरी ही विजय है। मास्टर साहब मेरे मन में उतर चुके हैं। मैं उन्हें सदैव ही अपनी श्रद्धा का स्रोत समझा करूँगी। उनकी प्रति बात मेरे लिए हितकारी होगी। मैं उनके चरणों की शपथ खाकर कहूँगी— अब कभी ऐसी भूल न होगी। अब कभी भी सुमन का मन विकारग्रस्त

इस रूप में न होगा, सुमन उन्हीं की चेली है। वह भी तुम्हें कुछ बनकर दिखा देगी। जिस मन की चञ्चलता ने उसे वासना का द्वार दिखाया वही मन अब श्रद्धा से ओत प्रोत रहेगा। यदि कभी किसी प्रकार का भाव मन में आयेगा भी तो उसे इस प्रकार दबा दूँगी कि उसकी सत्ता भी किसी को लक्षित न हो सकेगी। इस महा कार्य के लिए मुझे पाषाण बनना पड़ेगा, बनूँगी, रोना पड़ेगा मन ही मन रोऊँगी। पर मास्टर साहब को कभी भी किसी प्रकार भी दुखी न होने दूँगी।

उसने सिर झुकाकर हाथ जोड़ कर गुरु चरणों में प्रणाम किया—मास्टर साहब यह मेरे हृदय की दुर्बलता थी, मोह था, स्वार्थ था, मुझे क्षमा करें। उसके मोती से आँसू ढरक-ढरककर उसके गालों पर बह चले।

शान्त रहो सुमन ऐसी अधीरता क्यों? तुम रो क्यों रही हो?

मैं रो नहीं रही हूँ मास्टर साहब मेरे भीतर से पश्चाताप रो रहा है।

सुमन! क्यों अपने हृदय को दग्ध कर रही हो? इससे मुझे भी कष्ट हो रहा है।

मास्टर साहब! आप असाधारण व्यक्ति हैं मैं आपको पहिचानने की पूर्ण चेष्टा कर रही हूँ पर अभी तक भली भाँति समझ भी नहीं पाई हूँ। आपका विशाल हृदय न जाने किस लोक की बात सोचता है।

मैं तो अपने को तुच्छ समझता हूँ। और न मैंने ऐसे कोई पुण्य कर्म ही किये हैं जिनके आधार पर मैं अपने को कुछ समझूँ।

अनुराग और सेवा यह भी तो महा पुण्य कर्म है मैंने अपने को आपके चरणों में न्योछावर कर दिया, आप ही मेरा उद्धार कीजिए।

सुमन के हार्दिक विचारों ने मास्टर साहब के हृदय पर बड़ा असर किया। बोले—तुमने मुझे पहचान लिया यह तो ठीक है।

तो क्या आपको मेरे वचनों पर प्रतीति नहीं?

मुझे प्रतीति ही नहीं दृढ़ विश्वास भी है। और यह भी सोचता हूँ कि तुम्हारा ईर्ष्यालु भाव भी विलुप्त हो जायगा।

घड़ी ने छः बजा दिये। मास्टर साहब विरत होकर बैठ गये। कुसुम आज विशेष कार्य में व्यस्त थी अतः मास्टर साहब से भेंट न हो सकी।

बाहर इन्दिरा देवी की कार खड़ी थी, ठीक सवा छः पर हॉर्न की आवाज हुई। सीताराम ने जाकर पूछा तो इन्दिरा देवी ने कहा—मास्टर साहब से कह दो गाड़ी आ गई।

सीताराम ने सूचना दी। मास्टर साहब उठ खड़े हुए। सुमन फाटक तक साथ आई। इन्दिरा देवी को देखकर उसने नमस्ते की। नमस्ते का उत्तर देते हुए इन्दिरा बोली। ये ही हैं आपकी शिष्या ?

मास्टर साहब ने स्वीकृति दी और जरा सी देर में मोटर अपने अभीष्ट स्थान की ओर चलदी।

❀ ❀ ❀

आज इन्दिरा देवी अत्याकर्षक ढंग से सालंकृत थी। सारे शरीर पर पाउडर, क्रीम और "इवनिंग ऑफ पेरिस" की सुवास व्याप्त थी। साड़ी और ब्लाउज का रंग चेहरे से मिलता जुलता था और उस रंग की माथे पर बिन्दी भी चमक रही थी। वह धीरे-धीरे मोटर ले जा रहीं थीं। विचारों में मग्न। हजरत गंज प्रिंस सिनेमा के सामने गाड़ी रोककर उन्होंने फस्ट क्लास के दो टिकट खरीदे। सिनेमा लगा था "देवदास"।

दोनों यथा स्थान पर बैठ गये। इन्दिरा देवी बोलीं—चित्र तो अच्छा मालूम होता है। पोस्टर तो इसी बात की साक्षी देते हैं।

जी हाँ ठीक ही होना चाहिए।

कुछ देर तक बातों के सिलसिले में वे बोलीं—मास्टर साहब ! जरा देखिए तो—मेरा सर कुछ गरम हो रहा है—सर दर्द सा जान पड़ रहा है।

मास्टर जी ने इन्दिरा देवी का माथा छूते हुए कहा—ऐसी तो कोई बात नहीं—पर यदि तबियत ठीक न हो तो घर चली चलिए।

नहीं ऐसी बात तो नहीं। अब यहाँ आकर लौटना ठीक न होगा।

चित्र प्रारम्भ हो गया। बीच-बीच में इन्दिरा जी योंही मास्टर जी से विशेष बात पूछ लेतीं और मास्टर साहब निरपेक्ष होकर उत्तर दे देते। कभी-कभी वे मास्टर साहब का हाथ अपने हाथों में लेकर पूछतीं—मेरा हाथ गरम तो नहीं लगता आपको? मास्टर साहब "न" कह कर टाल देते।

चित्र समाप्ति पर जब वे घर चलने को हुए तो इन्दिरा देवी ने अपने को पूर्ण अस्वस्थ सिद्ध करने की चेष्टा की।

घर पहुँच कर बिना पोशाक बदले ही वह अपने कमरे में चली गईं। नौकर नौकरानियों से कह दिया मास्टर साहब को भोजन करा देना, मेरी तबियत ठीक नहीं है। मुझसे कोई भी बोलना नहीं। वे लेट गईं और कराहने लगीं—नौकरानी ने जब जाकर कहा कि डा० साहब को फोन कर दिया जाय तो उसे मना कर दिया।

मास्टर साहब भोजन करके जब अपने प्रकोष्ठ में जाने लगे तो उन्हें इन्दिरा देवी के कराहने की आवाज स्पष्ट सुनाई दी। उन्होंने सोचा—बेचारी मुझे सिनेमा दिखाने के कारण ही बीमार हो गईं।

आज न जाते सिनेमा तो क्या था—उन्होंने सोचा—

इस समय मेरा इनके कमरे में जाना भी तो ठीक नहीं। पर न जाने यह क्या सोच बैठेंगी। जरा सी तबियत खराब हुई तो मास्टर जी ने पूछा भी नहीं। इससे तो अपनी कवि सहृदयता की न्यूनता द्योतित होती है। उन्होंने नौकर को बुलाकर कहा—बहू जी से पूछो मास्टर साहब कहते हैं—डाक्टर को बुला दो और देखो यदि वे ना कहें तो कहना मास्टर जी आपके पास आना चाहते हैं।

नौकर आदेश पाकर गया और इन्दिरा देवी का आदेश हुआ कि मास्टर साहब को यहाँ भेज दो।

आज्ञा पाकर मास्टर साहब वहाँ पहुँचे, इन्दिरा देवी अस्त व्यस्त रूप में इस प्रकार पड़ी थीं मानो कितने ही दिन की रोगिनी हों। धीरे-धीरे वे अपने सिर पर हाथ फेरती जा रहीं थीं।

मास्टर साहब ने पूछा कैसी तबियत है। पलंग का एक भाग रिक्त

करते हुए बोलीं—मास्टर साहब ! असह्य वेदना हो रही है। कभी-कभी ऐसे ही हो जाता है।

कुछ दवा मंगा दी जाय ?

जी नहीं "विक्स" रक्खा है जरा सा मल लूँगी। आपको नींद आ रही होगी आप आराम करें।

यह कैसे हो सकता है—संकोच न हो तो लाइए मैं मल दूँ विक्स आपके सर पर।

रहने दीजिए, हमारे तो यही दिन चलते रहते हैं। आप कब तक कष्ट झेलेंगे हमारे साथ।

इसमें कष्ट की क्या बात है ? कहाँ है विक्स ?

मास्टर साहब ! सामने वाली अलमारी के अगले वाले खाने पर रखा है। निकालने में कष्ट तो हो गाही पर............कह कर उसने चाभियों के गुच्छे पर से उस ताले की चाभी मास्टर जी के हाथ में पकड़ा दी।

मास्टर साहब ने विक्स की डिबिया निकाली और धीरे-धीरे इन्दिरा जी के सिर पर मलने लगे। इन्दिरा जी अनिर्वचनीय सुख की अनुभूति कर रहीं थीं। बीस मिनट बाद बोलीं मेरा सर दर्द अब अच्छा हो गया। आपको बड़ा कष्ट दिया मैंने। आप विश्राम करें।

जाता हूँ। पर यदि रात में तबियत अधिक खराब हो तो सूचित कीजिएगा।

धन्यवाद ! आपकी इस उदारता के लिए मास्टर साहब यदि संकोच न हो तो यहीं पलंग पड़ा है लेट जाइए। शायद रात को कोई आवश्यकता पड़े ? नौकरों से मैं अधिक कुछ बोलती ही नहीं।

बात तो ठीक है पर आप मुझे अपने प्रकोष्ट पर ही जाने दें। आवश्यकता होने पर आ जाऊँगा।

"मास्टर साहब ! आपको मेरे हाथ गरम नहीं मालूम होते," कह कर इन्दिरा ने उनके दोनों हाथों को कस कर अपने दोनों हाथों से दबा लिया।

मास्टर जी रोमाञ्चित हो उठे—इन्दिरा देवी के मुँह की ओर देखकर वे बोले सचमुच आपको ज्वर आ गया है। आपकी स्थिति इस समय स्वस्थ व्यक्ति की सी नहीं है। इन्दिरा देवी एक टक मास्टर जी को देखती रहीं।

हाथ हाथों में जकड़े थे और इन्दिरा देवी चेतना शून्य थीं। मास्टर साहब घबरा उठे। उनके हाथों में से अपने हाथों को हटाते हुए उन्हों ने नौकरानी को पुकारा, नौकरानी आई। बहू जी की इस दशा को देखकर उसने अपनी पूर्वानुभूति के आधार पर यह कहा कि कभी-कभी बहू जी को जब सिर दर्द होता है तो बाद को मूर्छा आ जाती है। अब आधे घण्टे बाद स्वयं ही अच्छी हो जायेंगी।

मास्टर साहब एवं नौकरानी दोनों ही देवताओं की भाँति मौन साधे बैठे रहे। जब आधा घण्टा से अधिक हो गया तो नौकरानी ने उन्हें होश दिलाने की चेष्टा की, पर वह विफल रही। मास्टर जी ने उसके मुख पर अपने हाथ का मधुर स्पर्श किया—उसे जरा होश आया—कौन ? मैं हूँ मास्टर। मास्टर साहब के इस कथन को सुनकर वह रोने लगीं। नौकरानी ने बताया अब यह होश आने के लक्षण हो रहे हैं। मास्टर साहब बराबर मुख का मधुर स्पर्श करते रहे। जब इन्दिरा को होश आया तो वह मास्टर साहब के समीप थीं।

करवट बदलते हुए बोलीं—मास्टर साहब आप अभी सोये नहीं, बड़ी पापिन हूँ, मैं अपने कारण औरों को भी कष्ट दे देती हूँ। पर इस समय मैं विवश थी। कभी-कभी मेरी ऐसी ही स्थिति न जाने क्यों हो जाती है ? उसने नौकरानी को भी आदेश दिया। वह चली गई। मास्टर साहब कुछ देर और बैठे रहे। जब इन्दिरा देवी पूर्ण सचेत हो गईं तब मास्टर साहब भी सोने चले गये।

इन्दिरा देवी को फिर नींद न आई। वह अपने मनो विकार के पश्चात् होने वाले रोग को कोशने लगीं। जब कभी भी उसकी भावनायें उत्तेजित हो उठती हैं उन्हें ऐसा ही हो जाता है। उन्होंने सोचा मास्टर साहब से कल इसका निदान पूछूँगी। रात उसने आँखों पर ही काट दी।

❀ ❀ ❀

प्रभात होने पर प्रकृति की समस्त वस्तुओं की भाँति इन्दिरा देवी के गृह का कार्य भी अपनी गतिविधि से चलने लगा। लगभग आठ बजे वह दैनिक कार्यों से निपट कर मास्टर साहब के कमरे में गईं।

मास्टर साहब लेख लिख रहे थे। इन्दिरा देवी को देखकर वे उठ खड़े हुए। इन्दिरा देवी पास ही पड़ी कुर्सी पर बैठ गईं। बैठते ही उन्हों ने मास्टर साहब से कहा कल का सिनेमा आपको कैसा लगा?

मास्टर साहब बोले—आपकी तबियत बिगड़ गई सारा आनन्द ही किरकिरा हो गया।

मुझे कभी-कभी ऐसे ही हो जाता है।

कारण आपको क्या ज्ञात नहीं?

मास्टर साहब ; जब कभी मानसिक चञ्चलता बढ़कर अबोध सुख की लालसा में परिणत हो जाती है तब भीतर से एक नशा सा बाहर आता हुआ ज्ञात होता है।

तो आपको सर्वसुख तो उपलब्ध हैं। कमी किस बात की है?

हाँ है तो ठीक ही। दुनिया भी यही कहती है आप भी यही कहेंगे। पर मेरे हृदय की ज्वालामुखी मुझे किस प्रकार जलाता रहता है इसे आप क्या जानें?

कैसे?

"नारी की क्षमता, सहिष्णुता और लज्जा के विषय में कुछ भी कह पिष्टपेषण करना है। वह जब तक प्राणान्त की स्थिति में नहीं आ जा अपने हृदयस्थ भाव को किसी को भी नहीं बता सकती। कोई उस कितना ही प्रिय क्यों न हो। पर जब उसके धैर्य का बाँध टूट जाता जब वह किसी कार्य को करने के लिए दृढ़ संकल्प कर लेती है तब उस तिरिया हठ के सामने कोई टिक भी नहीं सकता। क्या कहूँ आपसे अपने घर की बात है। मेरे पति मुझ पर प्राण देते हैं। प्राणों से मुझे प्रिय समझते हैं। मैं भी उनकी मर्यादा का पूरा ध्यान रखती पर पुरुष से नारी को जो सुख एवं सन्तोष मिलना चाहिये उसको भी

मुझे न दे सके। छः वर्ष हो गये मास्टर साहब" कह कर वह आँखों में आँसू भर लाई। बोलीं—मास्टर साहब आप इस समय भले ही मुझे नीच, घृणित निर्लज्जा चाहे जो कुछ कहलें। यह बात आपको भी नहीं बताना चाहती थी पर आवेश में जाने मैंने क्यों इतना भारी अपराध कर दिया ?

मैंने आपको कारण पूछकर अति दुखी कर दिया क्षमा चाहता हूँ।

यह आप क्या कह रहें हैं मास्टर साहब ? अब जब कह ही रही हूँ तो सुन लीजिए। पर आपको भगवान की कसम जो मेरे राज को किसी पर प्रकट करें। बात यह है कि –

मेरी शादी बड़ी उम्र में हुई। माँ बाप ने धनी परिवार देख कर इनके साथ मेरी शादी करदी, मैं सुख से रहने लगी। पर जब मुझे यह ज्ञात हुआ कि शादी करके मेरी बरबादी कर दी गई तो मुझे काठ मार गया। मैंने उनसे इलाज करवाने को कहा। बोले—इन्दिरा तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ। मैं शादी करना नहीं चाहता था पर बरबश मेरी शादी करदी गई। अब मेरी लाज तुम्हारे हाथ है—कहकर उन्होंने मेरे दोनों चरणों में अपना सर झुका दिया। मैं लज्जा से गड़ गई। जीवन आनन्द की प्रथम बेला में मुझ पर वज्रपात हो गया। क्रोध, घृणा, दया, और मर्यादा की भावनाओं ने मुझे व्याकुल कर दिया। मैंने श्वास भी न ली—उन्हें उठाते हुए मैंने कहा—जो भाग्य में था हो गया—मेरे भाग्य का दोष ? पर विश्वास रखो ! यह भेद किसी को ज्ञात न होगा। आह ! मैं पापिन हूँ—मास्टर साहब मैंने आपसे यह बात क्यों कह दी—कहकर वह मास्टर जी के पैरों में पड़ गई।

यह क्या कर रही हैं आप—मास्टर जी ने कहा।

मैं अब विश्वास पात्र नहीं रह गई वर्षों से दबी ज्वाला को आज भभकने दीजिए मैं उसमें जलकर शान्त हो जाऊँ तो प्रायश्चित हो जायगा।

देवी ! मनुष्य के जीवन में ऐसे अवसर आते ही रहते हैं। मैं समझता हूँ आप इसलिए इस रोग की शिकार बन गईं, पर अब आँख मीचकर सब सहना ही पड़ेगा।

धिक्कार है मेरा ऐसा जीवन मास्टर साहब !

आप अधीर न हों—अभी भी उनके रोग की चिकित्सा करवाइए।

हम विदेशों तक घूम आये हैं।

जिनके भाग्य में अच्छा होना होता है वे यहीं अच्छे हो जाते हैं।

इस विषय में सोचकर आपको एक दवा बताऊँगा। आप उसका प्रयोग भी कर देखें।

मास्टर साहब! इस समय मुझ पर शैतान की सवारी आई है। वह कल से ही है, आप को मैं अपने समीप इसी लिए लाई हूँ कि आप मेरे इस दुख के दूर करने का उपाय सोचें। आप चाहें तो मेरा जीवन सुखी हो सकता है।

मेरे किसी भी कार्य से यदि आप सुखी रहें तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।

मुझे आपसे ऐसी ही आशा है।

कहने को दोनों कह सुन गये पर समझे दोनों ही गलत।

इन्दिरा देवी के चेहरे पर फिर से एक नई चमक आ गई थी। उसे अपने बिखरे स्वप्न सजे दिखाई दे रहे थे। दिन बीतते जा रहे थे।

मास्टर साहब की दिनचर्या भी पूर्ववत् अपनी धुरी की परिक्रमा लगा रही थी। आज कई दिन बाद वह अपने मित्र सुरेश बाबू के यहाँ पहुँचे। अभी तक न सुरेश ही आए थे न उनकी पत्नी ही। मास्टर साहब को क्षण भर उसकी चिन्ता ने व्यग्र कर दिया, वे होटल पहुँचे—मैनेजर को वहाँ न पाकर वे सीधे सुमन के यहाँ पहुँच गये।

❀ ❀ ❀

आज उन्हें सुमन फाटक पर नहीं मिली। सामने लॉन में कुर्सी डाले काका जी एवं काकी जी बैठे थे। मास्टर जी उधर ही बढ़े। नमस्ते के पश्चात् काकी जी ने मास्टर साहब को भी वहीं बिठा लिया। नौकर भुट्टे बना-बनाकर ला रहा था। मास्टर साहब के लिए भी भुट्टे आए। इसी बीच एक वायुयान चालक महोदय आकर उनसे बातें करने लगे। कुछ

समझा कर काका जी ने उन्हें विदा किया फिर मास्टर साहब से बोले—"आज छात्रों का अनध्ययन रहेगा। आज आपसे बातें करने का जी चाह रहा है। जी चाहता है आपको अपने जीवन भर की कथा सुना दूँ," कहकर वे अपनी कथा सुनाने लगे। बचपन के स्मरण, जवानी के रंगीन चित्र, प्रौढ़ावस्था के अनुभव और आजतक के कार्यों का उल्लेख कर वे विरत हो गये। काकी जी भी मौन रूप से सुन रहीं थीं। अपने नाते रिश्तेदारों की भी दो-दो चार-चार बातें सुनाकर वे बोले—मास्टर जी आज कल रह कहाँ रहे हो।

मेरे मित्र धनेश बाबू सराय माली खाँ में रहते हैं उन्हीं के यहाँ रह रहा हूँ।

काकी जी ने कहा—मास्टर साहब तो इतना कमाते हैं पर इनको अपनी व्यवस्था का कोई ध्यान ही नहीं रहता। मैंने कहा था एक छोटा मोटा मकान क्यों नहीं ले लेते लखनऊ में।

सरकार! मेरे पास इतने पैसे कहाँ से आए?

कुछ हम देंगे कुछ आप कर लें तो ठीक हो।

मास्टर साहब के लिए अवश्य एक छोटा-मोटा मकान ले लेना चाहिए। वे भी क्या समझेंगे कि किसी रईस से पाला पड़ा था। मास्टर साहब! आप मकान देख लीजिए, रुपये का प्रबन्ध हो जायगा।

जैसी सरकार की इच्छा हो।

अच्छा तो अब आप सुमन से मिलकर घर चले जाइए। समय अधिक हो गया है।

मास्टर साहब आदेश पाकर सुमन के कक्ष में गये। उसे ज्ञात था कि मास्टर जी को काका जी ने रोका है। अतः बोली मेरी शिकायत तो नहीं की आपने वहाँ और हँस पड़ी। मास्टर साहब ने भी हँसी-हँसी में कहा शिकायत करने का अवसर ही क्यों देती हो और एक सिगरेट जला कर वह चलने लगे। कुसुम ने आकर कहा—आज कल आपसे बातें करने का मौका ही नहीं मिलता—कहाँ रहते हैं आप?

सामने ही तो हूँ खड़ा। क्या बात करना चाहती हैं आप —कहती क्यों नहीं ?

होगी कोई बात—और जब इतनी शीघ्रता से कहने की न हो !

"न हो तो कल सही, इस समय जाने दो," कहके चल दिये।

❀ ❀ ❀

जैसे ही मास्टर साहब घर पहुँचे सामने ही उन्हें धनेश बाबू मिले। उन्होंने मास्टर साहब को गले से लगाया। कहो मित्र कैसे कटे ये दिन ?

'धनेश बाबू ! आपके बिना आनन्द कहाँ,' कहकर वे बोले—आप कब आए ? अभी-अभी आया हूँ। पर इन्दिरा की तबियत ठीक नहीं है। मालूम हुआ कल से ही उसकी तबियत ठीक नहीं है। आपको याद कर रही थी इन्दिरा।

क्या फिर उनकी तबियत खराब हो गई ? धनेश बाबू आप इनका इलाज क्यों नहीं करवा लेते।

मास्टर साहब ! डाक्टरों का कहना है यह बीमारी अपने आप ही अच्छी हो जाती है। इसकी कोई दवा नहीं। रोगी के समक्ष सदैव प्रसन्न वातावरण होना चाहिए। आपकी कविताओं से इनका जी बहला रहेगा यही सोचकर मैंने आपसे यहाँ रहने की प्रार्थना की थी।

मास्टर साहब को इन लोगों की भेद भरी बातों पर बड़ा आश्चर्य हो रहा था। पर वे यह भी सोच रहे थे कि ये मर्यादा में बँधे हैं, या अपनी अपनी विवशता का साथ दे रहे हैं। मेरी कविताओं से यदि इन्दिरा जी ठीक हो जायँ तो मैं कई नई-नई रचनाएँ उन्हें सुना सकता हूँ।

वे धनेश बाबू से बोले—चलिए कहाँ हैं इन्दिरा देवी ? मैंने कल एक कविता नई बनाई है उन्हें सुना दूँ, सम्भवतः उन्हें प्रिय लगे। दोनों व्यक्ति इन्दिरा देवी के समीप पहुँचे, वे मौन लेटी थीं। "मास्टर साहब आए हैं इन्दिरा !" धनेश बाबू बोले। वह उठकर खड़ी हो गई।

"कैसी तबियत है आपकी ?" मास्टर जी ने कहा।

"ठीक है"—उन्होंने उत्तर दिया।

"मास्टर साहब तुम्हें एक नई कविता सुनाना चाहते हैं, सुनोगी ?" धनेश बाबू ने इन्दिरा देवी की पीठ थपथपाते हुए कहा।

नेकी और पूछ पूछ कर ? मास्टर साहब ने इन दिनों एक भी कविता नहीं सुनाई, सुनाइए मास्टर साहब।

मास्टर साहब ने जेब से एक मुड़ा-मुड़ाया कागज निकाल कर पढ़ा—

मुझको एकाकी रहने दो।

मेरे जीवन में मत आओ तुम बसन्त, पतझड़ रहने दो।
दो क्षण मिले व्यथा के, आँसू बहते हैं उनको बहने दो।।
जीवन ज्वालामुखी, झुलसता अन्तर, ताप मुझे सहने दो।
मैं पतझड़ का नीरसतम, कोई कुछ भी कहता कहने दो॥

मास्टर साहब कविता को दोहरा-दोहरा कर छन्द से पढ़ते जा रहे थे। इन्दिरा देवी रोती जा रहीं थीं और धनेश बाबू मुग्ध से बैठे थे।

कविता की समाप्ति पर इन्दिरा देवी का मन उतना ही हल्का हो गया था जितना शरद कालीन घन। वे बोलीं—मास्टर साहब! आप तो चुभने वाली कविता लिखते हैं।

क्या लिखता हूँ देवी ? तुकबन्दी के अतिरिक्त मुझे आता ही क्या है ?

इन्दिरा देवी इतनी मुग्ध थीं कि उसे धनेश बाबू का भी ध्यान न रहा—उसने मास्टर साहब के हाथ को चूम लेना चाहा पर उसकी नारी-सुलभ लज्जा ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। उसका मन मास्टर साहब के प्रति अत्यधिक आसान हो चुका था। उसकी यह आसक्ति व्यथा, विवशता एवं मर्यादा का सम्मिश्रण का फल था।

धनेश बाबू इन्दिरा देवी को लेकर सिनेमा देखने चले गये।

मास्टर साहब अपनी कविता की पूर्ति में लीन हो गये।

कविता की समाप्ति पर उन्होंने अपने जेब में से एक सिगरेट निकाली और पीने लगे—विचारों की गहनता में वे कहाँ विचरण करने लगे यह कुछ दुर्बोध बात थी। पर थे वे सुमन और इन्दिरा के सन्तुलन लोक में।

❀ ❀ ❀

अभी शीत का पूर्ण प्रभाव नहीं जम पाया था। किन्तु उष्णता के पैर उखड़ गये थे। उसके स्थान पर शनैः शनैः दूसरों का आधिपत्य होने लगा था। एक के विदा की तैयारी थी, दूसरे की आने की। सामने एक बड़ा सा शहतूत का वृक्ष था। मास्टर जी ने देखा उस पर दो पक्षी बैठे हैं। थोड़ी देर वे चोंच लड़ा लड़ा कर लड़ते रहे या प्यार करते रहे, पर उनमें से एक के उड़कर चले जाने पर मास्टर साहब को ज्ञात हुआ कि कुछ अनबन हो गई पर फिर दूसरे ही क्षण, जब दूसरे ने आकर बैठे हुए के मुख में कुछ डाला तो ज्ञात हुआ प्रेम का प्रथमोपचार था। मास्टर साहब इन विचारों में उलझे उलझे संसार की भौतिक सत्ता पर विचार करने लगे। कोई आता है, कोई जाता है। यहाँ स्थिर कौन रहता है, जाना सभी को है। आगे पीछे का प्रश्न है। तो इस सृष्टि में आने का लाभ ? किसी न किसी उद्देश्य से तो यहाँ हमें भेजा ही गया है, पर जिनका उद्देश्य "ऋण कृत्वा घृतम पिबेत" हो और सुख से जिन्दा रहा जाय जिन्होंने यहाँ आने का तात्पर्य ही यही समझा हो। पर सुखी है कौन ? मन की कल्पना कोरी कल्पना। बेचारी इन्दिरा को ही देख लो, क्या उसने कभी यह कल्पना की होगी कि विवाह होने पर उसे सांसारिक सुख का मुख भी देखना नसीब न होगा ? यह दूसरी बात है कि अपनी मर्यादा को त्याग कर वह सब कुछ कर सकती है। पर इसमें शोभा तो नहीं, और जी की तपन बुझाने के लिए यदि उसको कोई मार्ग अपनाना ही पड़ा तो ? पर यही सुख सब कुछ तो नहीं; कुछ लोग भगवद्‌भक्ति को भी तो सुख ही मानते हैं। फिर इन्दिरा भक्ति का मार्ग क्यों नहीं अपनाती ? भोग योग्य अवस्था में विराग आये तो कैसे ? मनुष्य की सहज क्षुत पिपासा तो उसके संस्कारों के साथ लगी ही रहेगी। सुमन भी कुछ इसी प्रकार की भावना व्यक्त कर रही थी। मानसिक अशान्ति सर्वत्र फैली है। तो मैं क्या कर सकता हूँ ? मेरे पास ऐसा कौन सा यंत्र है जिसे पढ़ूँ और कार्य सिद्ध हो। दोनों की सहानुभूति और श्रद्धा मेरे साथ है। हाँ भेद इतना है—सुमन की श्रद्धा या स्नेह निर्व्याज है—किन्तु इन्दिरा देवी ! वह भी तो मेरी कविता पर मुग्ध हैं। फिर उन्हें भी क्या कहूँ।

मास्टर साहब सोच ही रहे थे कि—महादेव और सीताराम ने आकर

सूचना दी। कल रात अकस्मात् सरकार की तबियत खराब हो गई, उनकी हालत ठीक नहीं है। डाक्टर सब-के-सब बैठे हैं पर उनके रीढ़ के दर्द को कोई भी कम नहीं कर सका, राजा भैय्या ने और काकी जी ने आपको याद किया है। कहा है जिसी रूप में हों चले आवें। कहकर उन लोगों ने मास्टर साहब के उत्तर की भी प्रतीक्षा न की।

मास्टर साहब शीघ्र ही तैयार होकर बिना चाय पिये वे जब चलने लगे तो इन्दिरा ने टोकते हुए कहा—इतने प्रभात में और चुपके-चुपके बिना चाय पिये ही किधर खिसके मास्टर साहब ?

क्या कहूँ इन्दिरा जी—नं० २ कोठी जहाँ मैं पढ़ाने जाता हूँ, वहाँ काका जी की तबियत अकस्मात् ही बिगड़ गई। हालत खतरनाक है। मुझे बुलाया है सुमन ने और काकी जी ने।

"तो जरा एक घूँट चाय तो पी लीजिए। मैं छोड़ दूँगी मोटर से," कहकर उन्होंने स्वयं अपने हाथ से चाय बनाकर मास्टर जी को दी—मास्टर साहब चाय पी रहे थे और इन्दिरा उनकी आकृति पर दुख कातरता के भावों को पढ़रही थी। बोली—आपके हृदय में कितनों के दुख के लिए स्थान है। सबके लिए आपने सहानुभूति दाब रखी है। धन्य हैं मास्टर साहब आप ! आइए आपको वहाँ तक छोड़ आऊँ। नौकर से बोली—साहब उठ खड़े हों तो बेड टी देकर कह देना मैं जरा मास्टर साहब को छोड़ने गई हूँ।

मोटर चल दी।

धनेश बाबू ने उठते ही इन्दिरा को न देख कर पूछा कहाँ गई हैं मालकिन ?

हुजूर ! मास्टर जी को पहुँचाने। "चाय लाओ" कहकर उन्होंने सोचा क्या करूँ कुछ कर भी तो नहीं सकता। ये सब मेरे अत्यावरोध रूपी वृक्ष के कटु फल हैं। जैसे बोया काटना भी पड़ेगा। पर मास्टर जी इतना सवेरे कहाँ चले गये ? हो सकता है घूमने गये हों।

नं० दो कोठी के फाटक पर जाकर कार खड़ी हो गई। मास्टर साहब उतर पड़े, बोले—"सम्भवतः मैं आज रात्रि में भी घर न आ सकूँ तो कोई

चिन्ता न करें," कहकर वे जैसे ही भीतर जाने को उद्यत हुए - सुमन उन्हें अपने प्रकोष्ठ में ले गई। वहाँ कुसुम भी बैठी-बैठी रो रही थी। दोनों बहिनों की आँखें सूजी-सूजी थीं। सुमन ने कहा—मास्टर साहब ! बड़ा अनर्थ हो गया। काका जी कल से चिल्ला रहे हैं पर उनका दर्द कम नहीं होता। डा० ने मोर्फिया भी दिया, कारोमीन दिया, सब कुछ दिया जा रहा है पर कोई लाभ नहीं होता। हा ! राम ! न जाने क्या होने वाला है ? मास्टर साहब प्रश्न करके बता दें काका जी ठीक तो हो जायेंगे।

कहाँ हैं काका जी ?

"वहाँ डाक्टरों ने हम सब लोगों का जाना बन्द कर दिया है। केवल काकी जी ही उनके पास हैं," कुसुम बोली। वे आपको बहुत याद कर रहे थे मास्टर साहब ! अब तो अधिक बोल भी नहीं सकते।

चलो मैं उनके पास चलूँगा।

डा० न जाने देंगे—पर मैं आपको भीतरी मार्ग से ले जाऊँगी। काकी जी फिर आपको बुला लेंगी। कुसुम मास्टर जी को लेकर वहाँ पहुँची। काकी जी ने संकेत से उन्हें बुलाया। मास्टर जी को देखते ही काका जी की आँखें भर आईं। बोलने की भरसक चेष्टा करने पर भी वे "मास्टर साहब" के अतिरिक्त और कुछ न बोल सके। संकेत से ही कमर दबाने का आदेश दिया। मास्टर साहब बैठकर कमर दबाने लगे। काका जी न जाने किन-किन पूर्व घटनाओं की स्मृति करके आँसू बहाते चले जा रहे थे। फिर उन्होंने काकी जी की ओर देखकर "मीनाक्षी" कहा और उसी प्रकार अश्रु बहाते रहे। दर्द जब उठ जाता था वे पलंग पर से उठ उठ जाते थे। कभी करवटें बदलते, कभी नीचे उतर कर सहारे से बैठते, कभी चिल्ला पड़ते। भीतर काकी जी, मास्टर जी और कुसुम शुश्रुषा में रत थे। बाहर धीरे-धीरे उनकी बीमारी की सूचना पाकर नाते रिश्तेदार, सगे सम्बन्धी, इष्ट मित्र सभी एक हो रहे थे। कोई आ रहा था—कोई जा रहा था। एक मेला सा लग गया था।

सुमन अपनी कोठरी में बैठी रो रही थी, उसके पास अरिमर्दन और

रूपो बैठी थीं। भीतर से मे जोर की आवाज आई—"आह मर गया।" डाक्टर गोयल भीतर पहुँचे—देखा कुछ बेहोशी सी आ रही है। एक डोज कोरामीन का देकर उन्होंने डा० चौधरी, डा० शर्मा, डा० भाटिया और डा० भाल को बुलाकर उपचार बदलने की चर्चा की। सब की राय हुई कि शक्ति संचार के लिए नस द्वारा औषधि अन्दर पहुँचाई जाय। अन्त में सब की राय से यही निर्णय हुआ। जो लोग शहर के बाहर थे उनको तार दे दिये गये थे। बाहर से भी डाक्टरों को बुलाने की व्यवस्था की गई थी। दो घण्टे बाद जब काका जी कुछ स्वस्थ हुए तो उन्होंने मास्टर साहब को सम्बोधित करके कहा—मास्टर साहब! सारा खेल ही समाप्त हो रहा है—

जीती बाजी हार रहा हूँ। मीनाक्षी! घबराओ नहीं, ज्ञात होता है अब समय समीप है।

"आप ऐसी बातें न किया करो औषधि हो रही है—भगवती की दया होगी तो सब ठीक होगा," वे कह तो गईं पर उनका गला भर आया और सिसकने लगीं। कुसुम भी रो पड़ी मास्टर साहब की आँखें भी गीली हो गईं।

काका जी! धैर्य रखिए—आप तो सबको घबरा देते हैं।

मास्टर साहब! अब क्या होगा? मेरे कोई भी काम पूरे न हो सके। आह! जरा जोर से दबाओ कमर। आवाज सुनकर और लोग भी भीतर पहुँचे, काका जी अचेतनावस्था में पड़े थे। मास्टर साहब कुसुम और काकी जी को लेकर वहीं आ गये जहाँ सुमन बैठी थी। वहाँ आते ही वे फूट-फूटकर रोने लगीं—हाय भगवान्! मुझे तो पहिले ही ज्ञात हो गया था कि कुछ होने वाला है। कितने-कितने अपशकुन हुए। उनका क्या फल होगा? अरे कोई पूजा पाठ, जप अनुष्ठान तो करवाओ। मास्टर साहब! आप किसी पण्डित को क्यों नहीं बुलाते? रूपो की माँ कहाँ है जरा उसे तो बुला सुमन! हाय-हाय! न जाने क्या होने वाला है? सुमन गई और रूपो की मा को बुला लाई।

अरे रूपो की माँ ! अब क्या करें ? तुम्हीं बताओ क्या करें ? अनुष्ठान क्यों न करवा दें ?

मेरे विचार से यहाँ मृत्युञ्जय जप करवा दिया जाय मास्टर साहब ! अब आपको ही दौड़-धूप करनी होगी, जाइए ऊपर शंकर महाराज को सूचना दे दें।

अच्छी बात रही पर इस समय ठीक नहीं। अनुष्ठान का समय नहीं है यह—मेरे विचार से "रोगानशेषानदहँसि" इस दुर्गा मंत्र से कुछ जप कर दिया जाय।

तो ऐसा ही कर लीजिए।

इधर ऐसे विचार हो रहे थे और उधर काका जी की तबियत और खराब होती जा रही थी। सहसा सीताराम रोता हुआ आया और बोला—सरकार आपको वहाँ बैठना चाहिए डाक्टर साबह कह रहे हैं। हालत ठीक नहीं सरकार की।

हाय राम ! क्या कह रहा है तू सीताराम ?

आह ! आह ! अरे कोई है मीनाक्षी—सुमन ! आह !

शब्द सुनते ही उपस्थित व्यक्तियों की घबराहट बढ़ती चली गई। सुमन, काकी जी और मास्टर साहब ने उनके कमरे में प्रवेश किया।

वहाँ का दृश्य देखकर सभी अपना-अपना माथा पकड़ कर रह गये थे। शून्य, निरावरण लेटे थे काका जी। काकी जी के हृदय की धड़कन बढ़ने लगी—डाक्टर ने धैर्य दिया, बोला इन्जेक्शन दिया है अभी ठीक हो जायेंगे, तब सब के प्राणों में प्राण आए।

शाम तक आने जाने वालों का मेला लगा रहा। और काका जी के प्राण चेतनावस्था के बीच अपनी राह ढूँढते रहे।

रात होते ही उनके समस्त कुत्ते एक साथ रो उठे। सामने वाले नीम की एक डाल अकस्मात् टूट गई। बिल्लियाँ एकत्र होकर फाटक के बाहर रोने लगीं। "समय अच्छा नहीं, अब कुशल की कामना छोड़ देनी चाहिए," काका जी के एक सम्बन्धी महोदय ने कहा। काका जी के भाइयों का

हृदय भी टूट रहा था और हुआ वही जिसकी कल्पना अभी नहीं की गई थी। काका जी बाजी हार गये। मैदान छोड़ दिया—खिलाड़ियों को रोने कलपने के लिए छोड़कर उनकी आत्मा विराट पूतात्मा के साथ क्रीड़ा करने चली गई।

भयकर हाहाकार ! जहाँ कभी वेद मंत्रों की पवित्र ध्वनि से भवन गूँज उठता था आज वहाँ क्रन्दन ध्वनि व्याप्त हो रही थी। जहाँ चहल-पहल थी वहाँ दुख का साम्राज्य हो गया था। सब-के-सब एक साथ बोल उठे "खेल खतम !"

क्या हृदय विदारक दृश्य था वह ! सबकी आँखें जल वर्षा रहीं थीं। कोई कहीं, कोई कहीं बैठकर रो रहा था काकी जी न रो रहीं थीं न बैठ रहीं थीं न आँखें बन्द कर रहीं थीं और न हिलडुल रहीं थीं। महा वज्राघात !

उनकी शोक की भीषण ज्वाला ने अन्तर के जलस्रोत को सुखा दिया था। दुख की उष्णता ने मस्तिष्क को निष्क्रिय कर दिया था। हाँ वह पागल सी हो गई थीं, बोलीं—क्या हो गया ? कहाँ गये काका जी ? नहीं नहीं वे मुझे छोड़कर कहीं नहीं जा सकते, आप लोग झूठ बोलते हैं—मैं उन्हें उठाती हूँ वे उठ बैठेंगे।

आह ! लोगों ने कहा—इन्हें रोना चाहिए नहीं तो इनका मस्तिष्क विकृत हो जायगा, पर वे उसी भाँति बड़-बड़ाती रहीं। रूपो, कुसुम, सुमन और रूपो की माँ बेहोश पड़ी थीं। मास्टर साहब ने डाक्टर साहब से कोई दवा लेकर उन्हें सुंघाया तो उन लोगों को होश आया। कुछ देर बाद फिर वही बेहोशी। सुमन होश आने पर कहती थी—हाय मास्टर साहब ! मेरे भाग्य का दोष देख लिया आपने ? मैं अभागिनी यहाँ न आती तो यह दिन देखने को न मिलता। हाय राम ! मास्टर साहब ! काका जी हमें छोड़ कर चले गये। हम उन्हीं के साथ जाएँगे।

मास्टर जी बेचारे सभी को सान्त्वना देते जा रहे थे। काकी जी दो घण्टे बाद रो सकीं। पर उनके करुण क्रन्दन ने विधाता के हृदय को भी

कंधा दिया। फिर वे मूर्छित हो गईं। कभी होश आता कभी फिर वैसे ही रात भर यही क्रम चलता रहा।

❀ ❀ ❀

प्रभात होते ही अर्थी अपने स्थायी स्थान पर पहुँचा दी गई। महिलायें गाँव को भेज दी गईं। सूर्य के प्रकाश को काले मेघ आच्छादित कर चुके थे। चन्द्र की मधुर कान्ति-सुधा का पान राहु कर चुका था। उद्यान उजड़ चुका था। नीड़ भग्न हो चुके थे। पत्नी कुछ उड़ गये थे और कुछ उड़ने के लिए पंख समेट रहे थे। मास्टर जी ने सोचा एक के भाग्य पर थे इतने सब निर्भर—आह! कितनी निर्बल है मनुष्य की छत्रछाया। "बैठण लागे काग" वाली उक्ति चरितार्थ हो गई—अभागी सुमन का जीवन सचमुच ही दुरग्रहग्रस्त हो गया। क्या वह अब यहाँ रह सकेगी? किसके सहारे पर रहेगी वह यहाँ? कैसी सुन्दर हैं ये पंक्तियाँ?

रात बिताई यहाँ हमने, कहीं और बितायेंगे जाके सवेरा।

जीवन मुक्त की बात ही क्या, जब टूट गया दृढ़ मृत्यु का घेरा॥

दोपहर तक, जब तक काका जी का संस्कार करने वाले लौटे तब तक कोठी आधी खाली हो चुकी थी। केवल नौकर-चाकर रह गये थे। सुमन और कुसुम भी काकी जी के साथ गाँव चली गईं थीं। मास्टर साहब की स्थिति उन लक्ष्यहीनों की भाँति थी जो सफल होते-होते असफल हो जाते हैं। क्योंकि जाते समय वे भी अर्थी के साथ गये थे, अत: किसी से भेंट भी न कर सके। सुमन उनसे न जाने क्या-क्या कहने को थी? उनके मुख से अनायास निकल पड़ा "प्रभु तेरी इच्छा।" वहाँ से लौटकर वे शाम को अपने निवास स्थान पर पहुँचे।

आज धनेश बाबू का जन्म दिवस था। उत्सव मनाया जा रहा था। मास्टर साहब की भी प्रतीक्षा थी। लोग उनकी कविता सुनने के लिए उत्सुक थे। मास्टर साहब के आते ही उल्लासित होकर इन्दिरा जी बोलीं-आइए आइए मास्टर साहब! लोग आपकी कविता सुनने के लिए बड़ी देर से उत्सुक हैं।

क्षमा चाहता हूँ इन्दिरा देवी ! मैं कविता न सुना सकूँगा।

क्या हो गया कुशल तो है ?

सुमन के काका जी अपने घर चले गये।

इन्दिरा देवी को धक्का सा लगा। बोलीं—बड़ा बुरा हुआ ! अच्छा ! बैठकर चाय तो पीजिए।

मास्टर साहब बैठ गये पर उनका मन अशान्त था कि अब सुमन का क्या होगा। उससे मिल भी न सका, पक्षी उड़ गया, पिंजरा खाली पड़ा रह गया।

चाय पार्टी की समाप्ति पर वे अपने कमरे में जाकर विश्राम करने का अभिनय करने लगे।

इन्दिरा देवी उन्हें दुखी जान कर उन्हें सान्त्वना देने के लिए वहाँ पहुँचीं। बोलीं—जी ठीक नहीं तो चलिए चलकर जरा बाहर घूम लिया जाय। एकान्त में बैठकर आप न जाने क्या-क्या सोचेंगे। मनुष्य का मन एकान्त में ही अधिक चिन्तन किया करता है।

धन्यवाद ! पर मैं कुछ नहीं सोच पा रहा हूँ कि क्या करूँ। जिस पौधे को मैंने लगाया वह अब सूख जायगा। मुझे यही चिन्ता व्यथित कर रही है।

तो आप सुमन के विषय में सोच रहे हैं ? हाँ है भी ठीक, आपका परिश्रम फलित हो जाता तो यश मिलता पर मास्टर साहब ! मन चाही होती नहीं, प्रभु चाही तत्काल; आप तो स्वयं शास्त्री हैं। गत की चिन्ता ही क्या ? और भविष्य की चिन्ता अपने हाथ की बात नहीं।

उठिये बाहर चलिए, साहब भी आपकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। रूमाल के एक कोने से इन्दिरा देवी की नजर बचाकर आँसू पोंछकर मास्टर साहब उनके साथ चल पड़े।

बनारसी बाग पहुँच कर तीनों इधर-उधर टहलने लगे। एक सुन्दर रंगीन फूल की ओर मास्टर साहब का ध्यान खींचते हुए इन्दिरा देवी बोलीं—देखा आपने इस फूल को ? आह ! कितना विचित्र है यह !

पर जिस रूप में आप इसे देख रही हैं कल यह ऐसा न रह जायगा। आज इसे कोई भी अपने जूड़े की शोभा बना सकता है, पर कल यह मसल कर पैरों से रौंदा भी जा सकता है। इन्दिरा देवी विचलित हो उठीं। उन्हें ध्यान आया यौवन का। यौवन भी बहती गंगा का पानी है कब तक बाँध में रुका रहेगा।

मास्टर साहब की ओर देखकर बोलीं—समय का उपयोग जो नहीं कर सकता उसे फिर पश्चाताप करना ही पड़ता है। खोई हुई वस्तुएँ उपलब्ध हो जाती हैं पर खोया हुआ समय हाथ नहीं आता। और आप प्राय: समय पर कम दृष्टि रखते हैं।

इन्दिरा देवी! सब शक्तियाँ किसी अदृश्य शक्ति से संचालित हो रही हैं—वह जो कुछ सोचे, करे वही ठीक है—हम लोग विराट विश्व के डाइरेक्टर के बनाये हुए पात्र हैं। इस संसार रूपी रंग मंच पर ड्रामा करने भेजे गये हैं। हमारे शरीर हमारे भिन्न-भिन्न वेश भूषा हैं। कर्तव्य का पाठ खेलने हम यहाँ आए हैं। जो अपना पाठ जितनी अच्छी तरह खेल सकेगा वह उतना ही सफल होगा। इसलिए मेरा तो विचार है हमें अपने अपने पाठ का ध्यान रखना होगा। धनेश बाबू भी भाग ले रहे थे।

अंधेरा हो गया था। नगर का विशाल वक्षस्थल विद्युत् प्रकाश से प्रकाशित हो गया था। मास्टर साहब ने आग्रह किया, जरा सुरेश बाबू से मिल कर चलें तो अच्छा रहे। उनकी बात स्वीकृत करली गई।

तीनों व्यक्ति सुरेश बाबू के यहाँ पहुँचे। वे आ चुके थे पर उनकी धर्मपत्नी अभी वहीं थीं ससुर की मृत्यु का प्रभाव सुरेश बाबू पर भी था। मास्टर जी बोले—क्या समाचार हैं रोगी के ?

वे इस लोक का त्याग कर चुके हैं।

दु:ख और शोक को व्यक्त करते हुए मास्टर जी ने सुमन के घर की घटना का भी जिक्र किया, वातावरण में उदासी छा गई।

तो सावित्री जी अभी कुछ दिन वहीं रहेंगे ?

हाँ दो मास पश्चात् ही अब उनका आना होगा—

तो आपकी भोजन व्यवस्था ?

होटल तो है ही निपट ही जायगा—थोड़ी देर और बातें हुईं। बाद को ये लोग उठ कर चल दिये।

मास्टर साहब की बढ़ती हुई अशान्ति को मिटाने का इन्दिरा देवी ने भरसक प्रयास किया पर वे सफल न हो सकीं।

उन्होंने सोचा ऐसी कौन सी युक्ति है जिससे मास्टर साहब को वशीभूत किया जा सके। हैं तो ये बड़े ही सहृदय, सरस और भावुक; पर इनके अन्तःकरण में या तो जवानी की रंगीनी न छा सकी या ये इतने विवश हैं कि किसी वातावरण को सहने की, उसमें घुल मिलने की इनमें क्षमता ही नहीं। पर इनकी कविता से तो यही ज्ञात होता है, ये दुखी हैं। तो फिर अपने दुख को बताते क्यों नहीं ? मैं तो इन्हें प्रसन्न रखने के लिए सर्वस्व भी अर्पण कर सकती हूँ। जाने क्यों मेरा मन डिग सा रहा है ? मेरी बलवती साधना पंगु हो रही है। कौन सा ऐसा पूर्व जन्म का संस्कार है जो मुझे इनके प्रति आसक्त कर रहा है। जाने कैसे कैसों ने इधर लालच भरी निगाहों से देखा, पर मैंने सबको ठोकर मार दी। मैं कुछ बुरे विचार से नहीं, पर हाँ इन्हें चाहने लगी हूँ। अब सुमन भी चली गई। ट्यूशन भी छूट गई। दिन भर ये करेंगे भी क्या ? स्कूल में तो इनके तीन घण्टे ही कटते हैं। मैं चेष्टा करूँगी मास्टर साहब को प्रसन्न करने की। इसी तरह एक सप्ताह कट गया।

❀ ❀ ❀

सुमन कुछ दिन तो काकी जी के साथ रही, पर फिर उसे अपने गाँव चला जाना पड़ा। दीदी अपनी ससुराल गई। सुमन रह गई अकेली। घर पर वह सब कार्य करती थी पर उसका मन नहीं लगता था। वह सप्ताह में एक पत्र मास्टर साहब को अवश्य लिखती थी। ऐसा करने में उसे शान्ति मिलती थी। वह अपनी पढ़ाई का रोना रोया करती थी और लिखा करती थी "मास्टर साहब ! मैं आपके लिए कुछ न कर सकी।"

इधर दो सप्ताह से उसका कोई पत्र नहीं आया। वह अपने पिता जी के साथ बनारस चली गई थी। एक दिन गंगा स्नान करते ही उसके मन में आया क्यों न जीवन लीला ही समाप्त कर दूँ। सोचकर वह आखें बन्द करके पानी में घुस गई। गंगा की लहर उसे बहाकर ले जाने लगी इतने में उसके पिता जी ने पीछे घूमकर देखा तो सुमन की धोती का पल्ला पानी के ऊपर तैर रहा था। वे चिल्लाये "पकड़ो-पकड़ो बचाओ-बचाओ!" पास में ही मल्लाह थे, दौड़ पड़े। सुमन दो चार गोते खा चुकी थी। मृत्यु जन्य कष्ट की अनुभूति कर चुकी थी पर बचा ली गई। रोते-रोते उसके पिता जी ने कहा—मेरी बेटी आज न जाने कहाँ होती? वे बड़ी देर तक रोते रहे। फिर उन्होंने घर आने की तैयारी कर दी।

मास्टर साहब का मन अत्यन्त दुखी हो चुका था—मृत्यु विजय, बुद्ध भगवान एवं बड़े बड़े ऋषि महर्षि न कर सके। मृत्यु अवश्यंभावी है। वे इसी प्रकार की बातें सोचा करते थे। कुछ ही दिन पश्चात् उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और एक दिन वे इतने अस्वस्थ हो गये कि उन्हें अस्पताल जाने की नौबत आ गई। इन्दिरा देवी भी अपने भाग्य को कोश रही थीं। उसने मास्टर साहब के सभी परिचितों को पत्र डाल दिये। अस्पताल में उनकी चिकित्सा का पूर्ण प्रबन्ध करवा दिया। वे स्वयं रात दिन उन्हें देखने अस्पताल पहुँचती थीं। रुपये पैसे की मदद धनेश बाबू कर रहे थे।

सुरेश बाबू भी इस समाचार को पाकर व्यथित थे। मास्टर साहब की बीमारी भयंकर हैं सोचकर वे व्याकुल हो जाते। एक दिन वे मास्टर साहब को देखने गये, बोले—धीरेन्द्र! तू घबराना नहीं भाई! और फिर दोनों मित्रों की आँखों से गंगा यमुना की धारायें बहने लगीं। इन्दिरा यह देख कर चकित थीं, सुरेश बाबू के चले जाने पर उन्होंने मास्टर जी के बालों पर हाथ फेरते हुए कहा—मास्टर जी! और दो गरम-गरम आँसू उनके गालों पर गिरा दिये। आँसुओं के स्पर्श से मास्टर जी चौंक पड़े। इन्दिरा देवी की ओर देखकर उनका हाथ अपने हाथ में लेकर बोले—"इन्दिरा देवी अब जीने की आशा नहीं—क्षमा करना, यदि कोई कटु व्यवहार हो गया

हो तो। और देखो एक पत्र सुमन को लिख देना कि मास्टर जी जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं। तुम से भेंट न हो सकी इसका दुख जी में ले जा रहा हूँ," वे कह रहे थे, इन्दिरा रो रही थीं। वे फिर बोले—इन्दिरा देवी! आपने मेरे लिए कष्ट उठाया पर संसार में आप ही जैसी देवियों पर दया और उपकार का भार रहता है।

मास्टर साहब! आप लज्जित क्यों करते हैं? निराश न होइए, मैं आप के लिए अपने प्राणों को भी दे सकती हूँ।

मास्टर जी उसे देखते रहे। मानो दृष्टि गड़ाकर कुछ पहिचानने की चेष्टा कर रहे हों।

अस्पताल की घण्टी बजी और अनिच्छा होने पर भी इन्दिरा देवी को जाना पड़ा। उसने घर आकर सुमन को एक पत्र लिखा—

प्रिय सुमन बहिन!

मेरा पत्र पाकर तुम्हें आश्चर्य होगा कि यह कौन है जो मुझे पहिली बार जीवन में पत्र लिख रही है। मैं इन्दिरा हूँ, जिसके यहाँ तुम्हारे मास्टर जी रहने लगे थे।

बहिन! यदि मास्टर जी का जीवन चाहती हो तो पत्र पाते ही चली आओ। इस पत्र को तार समझना। मास्टर साहब बीमार हो गये बीमारी भयंकर है। जीने की आशा कम है। उन्हें दुख है कि वे तुम्हें न देख सके। वे जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं। तुम्हीं को विशेष याद करते हैं। कहते हैं—जिस पौधे को मैंने लगाया था, वह अब सूख जायगा। तुम तुरन्त चली आओ।

तुम्हारी ही कोई
इन्दिरा।

पत्र पढ़कर सुमन को मूर्छा आ गई। कुछ देर बाद जब कुछ सजग हुई तो सोचने लगी—काका जी गये जिनका कुछ सहारा था, और अब—उसने अपने कान दोनों हथेलियों से बन्द कर लिए; आह! ऐसी

कल्पना भी मैं क्यों कर रही हूँ ? मैंने जिन्हें सब कुछ समझा मेरे वही मास्टर साहब सचमुच मुझ से रूठ जायेंगे।

नहीं-नहीं मैं जाऊँगी—अभी जाऊँगी—अवश्य जाऊँगी। उसने पत्र पिता जी को दिखाया। उसके पिता जी को भी दुख हुआ। एक घाव तो अभी हरा ही न हो पाया था, अब दूसरा दुख भी उपस्थित हो गया।

सुमन बोली—पिता जी ! दीदी को भी तार दे दीजिए हम लोग साथ ही साथ चलेंगे। आप पहुँचा देंगे न ?

बेटा मुझे तो कचहरी का काम है पर तेरे भैय्या चले जावेंगे। एक दो दिन में मास्टर साहब की तबियत देखकर चली आना।

तार दे दिया गया। सुमन ने तैयारी कर ली, दीदी भी कल सबेरे आही जायगी—दोनों चल देंगी। वह मास्टर साहब के विषय में भाँति-भाँति की कल्पना करने लगी। वह जब तक मास्टर साहब से न मिली तब तक उसकी आँखें नहीं सूखीं।

दूसरे दिन वह भी अन्य लोगों की भाँति चार बजे अस्पताल पहुँची। आज भी मास्टर साहब की दशा पूर्ववत् रही। कभी-कभी मूर्छा आ जाती थी। जिस समय सुमन और कुसुम अपने भाई के साथ वहाँ गईं, मास्टर जी मूर्छावस्था में थे। इन्दिरा देवी उनके पास बैठी आखों के मोतियों की न्योछावर लुटा रही थी। अन्य मिलने वाले भी मौन खड़े थे। सभी मास्टर साहब की सज्जनता की सराहना कर रहे थे और उनकी बीमारी पर दुख प्रकट कर रहे थे। सुमन जड़वत् खड़ी रही। कुसुम रो पड़ी। जब पन्द्रह मिनट बाद उन्हें चेतना आई तो उन्होंने इन्दिरा देवी की ओर देखा। आप रो रही हैं इन्दिरा जी ? मैं अब ठीक हूँ। सुमन को पत्र लिख दिया ?

पर वे तो आपके सामने खड़ी हैं देखिए न। सुमन ने आगे बढ़कर चरण स्पर्श किया—अब वह रो पड़ी मास्टर साहब के दोनों पैर पकड़ कर बोली—मैं अभागी आ गई हूँ मास्टर साहब ! मुझे अपनी आँखों से आप को इस रूप में देखना था और वह उन्हीं पर गिर पड़ी।

कुछ देर बाद मास्टर जी ने उसे समीप बुलाकर कहा—मैं तुम्हें कुछ न बना सका, मैं तुम्हारे लिए कुछ न कर सका। सुमन ! मेरी कल्पनाएँ शायद मेरे ही साथ चली जायँगी।

सुमन मौन अश्रु बहा रही थी, कुसुम की भी यही दशा थी और इन्दिरा देवी न जाने किस लोक में थीं। सुमन के आगमन से मास्टर साहब की मुखाकृति कुछ प्रसन्न हो गई। इन्दिरा देवी देखकर प्रसन्न हो उठीं। सुमन से बोलीं—अब तुम्हें दो चार दिन यहीं रहना होगा। कल से मास्टर साहब को घर ले चलेंगे। डाक्टरों का कहना है अब खतरे की कोई बात नहीं। पर सुमन मैं चाहती हूँ तुम दोनों बहनें कुछ दिन यहाँ रह जाओ तो मेरा विचार है मास्टर साहब शीघ्र स्वास्थ्य लाभ कर लेंगे।

मेरे रहने से यदि मास्टर जी के स्वास्थ्य में सुधार हो सके तो मैं दीदी को भी रोक लूँगी।

भैय्या ऐसा हो सकेगा न ?

हाँ हाँ रुक जायेंगे दो चार दिन।

तो फिर आप लोग दो चार दिन के लिए हमारे ही अतिथि रहें।

सबने स्वीकृति दे दी।

अब नित्य ही तीन दिन तक अस्पताल में सब लोग मास्टर साहब से मिलने के लिए जाते रहे। चौथे दिन इन्दिरा जी उन्हें घर ले आईं। मास्टर जी का स्वास्थ्य कुछ-कुछ सुधरने लगा पर मानसिक व्यथा का कोई भी उपचार न हो सका।

❀ ❀ ❀

एक सप्ताह पश्चात् मास्टर जी से विदा लेकर सुमन, कुसुम और उसके भाई चले गये। सुमन की मानसिक स्थिति ठीक नहीं थी—सोचने लगी अभागों को मौत भी नहीं। बनारस में बह गई थी, न जाने क्यों बच गई। मास्टर जी इस दशा में भी मेरे भविष्य की सोच रहे हैं—धन्य है इनकी उदारता ! वह सोचने लगी मैं अधिक क्यों न रह गई हूँगी

लखनऊ ? पर विवशता भी तो परम दुख है। "स्वतंत्र तो हूँ नहीं," दीदी से बोली—दीदी तुम क्या समझती हो ठीक हो जायेंगे मास्टर साहब ?

हाँ मैं तो यही सोचती हूँ। पर मैंने यह भी अनुमान लगाया कि उन्हें रोग से भी भयंकर रोग है मानसिक व्यथा का। जाने कौन सी ऐसी दुर्घटना है जो इनके मन पर अङ्कित हो गई है ? मास्टर साहब सोचते भी तो बहुत रहते थे। और सुमन ! इनका सबसे प्रबल शत्रु रहा है सिगरेट जिसे इन्होंने कभी भी नहीं त्यागा।

हाँ दीदी ! देखा नहीं तुमने इस दशा में भी पी रहे थे। इन्दिरा जी ने मना किया था तो नाराज हो गये थे—इन्दिरा ही हमसे सौभाग्यशालिनी रहीं, मास्टर जी की सेवा का भार तो मिला उसको ! हम तो इतना भी न कर सके।

पर यदि हमारे यहाँ मास्टर जी होते तो हमें भी तो सेवा करनी ही पड़ती।

हाँ यह तो ठीक है—पर दीदी ! मास्टर साहब को कुछ हो गया तो ? उसके भाई ने कहा—ऐसी अशुद्ध कल्पना नहीं करनी चाहिए—और प्रसंग छेड़ो—बार बार एक ही बात की चर्चा करने से जी दुखी हो जाता है।

सुमन ने भाई का मन रखने के लिए काकी जी का प्रसंग छेड़ दिया। सुना है काकी जी अब गाँव में नहीं रहतीं।

कहाँ रहती हैं वे ?

बनारस चली गई हैं, वहाँ गंगा तीर पर भजन-भाव करने में उन्होंने अपने को लगा दिया है।

मैं तो इसे अच्छा नहीं समझता, कर्म करने के लिए ही मनुष्य चोला मिला है। उसका इस प्रकार दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। कर्तव्य के साथ ही साथ भजन-भाव भी शोभा देता है। सुमन अपने गाँव पहुँच गई। और इन्दिरा देवी अहर्निश तन मन धन से मास्टर साहब की सेवा में लगी रही। धनेश बाबू ने उसे पूर्ण सहयोग दे रखा था। मास्टर साहब जब कुछ हल्का खाना खाने लगे तो वहस्वयं अपने हाथों से बनाकर देती

थी। उन्हें हाथ पकड़ कर टहलाती थी। मास्टर साहब उनकी सेवा के भार से दबे जा रहे थे।

एक रात्रि में जब वह मास्टर साहब को दवा पिला कर निवृत्त हुई तो मास्टर साहब ने कहा—मुझे आपके सामने रहने में भी लज्जा आती है।

"क्यों ?" उत्सुकता से इन्दिरा देवी ने पूछा।

आप पूर्व जन्म की मेरी न जाने कौन थीं। आप न होतीं तो सम्भवतः मैं जीवित न रह सकता।

हृदय से अत्यन्त प्रसन्न होते हुए भी अपनी मुद्रा को उदासीन बनाकर उसने कहा—यह तो मनुष्य का मनुष्य के प्रति कर्तव्य है मास्टर साहब ! कोई उसे भली भाँति निबाह लेता है, कोई उसकी अवहेलना कर जाता है। उसका सीधा व्यंग्य मास्टर साहब पर था।

वे भी संभल कर बोले—"मैं अपने कर्तव्य में अवहेलना कर रहा हूँ यही कहना चाहती हैं न आप ?

यह तो आप स्वयं ही समझ सकते हैं।

इन्दिरा देवी अधिक विवश न करो, मैं स्वयं ही झुक गया हूं। आपकी सेवा ने मुझे जीवन दिया इस पर आपका अधिकार है। जिस कार्य का भार सौंपेंगी पूर्ण होगा।

मास्टर साहब के इन शब्दों को सुनते ही इन्दिरा देवी रोमांचित हो उठी। उसे अपनी साधना सिद्धि के लक्षण शुभ दिखाई देने लगे। उसने मास्टर जी को जोर से दबा दिया। होश आने पर वह कुछ लज्जित सी हो गई।

"क्षमा चाहती हूँ। अब आपके विश्राम का समय हो गया है, आराम कीजिए। मैं भी साहब को भोजन करवाती हूं," कह कर वह सतृष्ण नेत्रों से मास्टर साहब की ओर देखकर चुपचाप चली गई।

कुछ दिन बाद मास्टर साहब को सुमन का पत्र मिला । लिखा था
आदरणीय मास्टर साहब !

आशा है आप स्वास्थ्य लाभ कर रहे होंगे। आज कल न जाने क्यों नित्य ही दुस्वप्न देखा करती हूँ । भय लगा रहता है आपके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में । यों तो इन्दिरा दीदी के पास रह आपको आराम होगा फिर भी मैं आपसे दूर हूँ और चिन्ता करती रहती हूँ । जब दूरस्थ होने के नाते कुछ करही नहीं सकती तो लिखूँ क्यों ? पर जी मानता नहीं । मेरी दशा का अनुमान न आप तब लगा सके थे और न अब ही लगा सकेंगे । पर इस समय तो आपके स्वास्थ्य का ही ध्यान है औषधि का सेवन निरन्तर करते रहें । कुशल शीघ्र ही भेजें ।

आपकी ही
सुमन

पत्र मास्टर साहब को उस समय मिला ये जब पुनः रुग्ण पड़ गये थे। न जाने क्या हुआ—औषधि होते रहने पर भी बीमारी फिर उभर आई। इधर इन्दिरा देवी को अपने पति के साथ दो मास के लिए सीलोन जाना था। वह नहीं जाना चाहती थी। मास्टर साहब की दशा चिन्तनीय थी, डाक्टरों ने जवाब दे दिया था। वह ऐसे समय में उन्हें छोड़कर जाना नहीं चाहती थी; पर इस समय पतिदेव ने कुछ ऐसा आग्रह और कटाक्ष किया कि उसका नारीत्व विक्षुब्ध हो उठा, उसे जाने के लिए बाध्य होना पड़ा। दो दिन शेष थे जाने में।

❀ ❀ ❀

मास्टर साहब को अपनी सही स्थिति का अनुमान होने लगा था। पराश्रित व्यक्ति का अस्तित्व ही क्या ? उसे दूसरों की इच्छा पर चलना पड़ता है। जिसका अपना ठिकाना नहीं उसका कहीं भी ठिकाना नहीं। मैंने इतनी आयु तक अपने विषय में कुछ भी नहीं सोचा। पर अब क्या सोचूँ, अब तो यह रोग अन्त करके ही पिण्ड छोड़ेगा। आह ! मास्टर साहब कराह रहे थे। इन्दिरा देवी ने उन्हें सहारा देकर उठाना चाहा। वे लेटे ही रहे। इन्दिरा देवी ने नारीसुलभ कोमलता और स्नेह से कहा—

"'आपकी स्थिति ठीक नहीं है, और मैं ऐसे समय में आपको छोड़कर जा रही हूँ। यह जघन्य कृत्य है, पर मास्टर साहब ! विवशताओं ने मुझे बाध्य कर दिया है। जाना ही पड़ेगा। नौकर हैं उनसे सब काम करवाते रहिएगा" कहकर उसने दस-दस के बीस नोट मास्टर जी की ओर बढ़ाते हुए कहा—"दो मास के लिए हो ही जायेंगे। दवा की विशेष आवश्यकता पड़ी तो ए० जेम्स कम्पनी से मँगवा लीजिएगा। वहाँ हमारा हिसाब चलता है। पर आप मन में अन्यथा न सोचें। आप अच्छे हो जायेंगे।" कहकर वह चल दीं।

मास्टर साहब फिर सुमन का पत्र निकाल कर पढ़ने लगे। उन्हें उसे पढ़ते-पढ़ते एक अनिर्वचनीय सुख सा मिल रहा था। दिन भर कट गया।

रात्रि में दुख का भार अधिक असह्य हो उठता है। मास्टर साहब अकेले पड़े-पड़े करवटें बदलते रहे पर नींद न आई। जागरण हो जाने के कारण उन्हें ज्वर अधिक हो गया था। खाँसी का प्रकोप भी था। कल डाक्टर बता गया था निमोनिया बिगड़ चुका है। प्रयत्न किया जा सकता है। कहाँ तक सफलता मिलेगी कहा नहीं जाता। इन्हीं शब्दों की गूँज इन्दिरा देवी के भी और मास्टर साहब के कानों में हो रही थी। खाँसी बढ़ी, मास्टर साहब किसी को पुकार भी न सके। बड़ी परेशानी रही। सवेरे उठते ही इन्दिरा देवी ने जब उन्हें देखा तो उसके पैरों के नीचे से धरती खिसकने लगी—वह धर्म-संकट में पड़ गयी। क्या करें अब ? यदि मास्टर साहब की भली भाँति देख रेख न हुई तो ये जीवित न रह सकेंगे। यदि सीलोन नहीं जाती हूँ तो साहब के मन को बड़ा आघात पहुँचेगा। उससे मास्टर साहब की दशा देखी न गई। दोनों घुटनों के बल छाती को टिकाये बैठे थे वे। उस कष्टावस्था में भी तेजस्विता की उनकी आकृति पर न्यूनता न थी। कुछ जाड़े का सा अनुमान हो रहा था। वह साहस करके एक बार फिर उनके पास तक पहुँच ही गई। बोली—क्या रात भर आप ऐसे ही बैठे रहे ?

हाँ आज कुछ अजीब परेशानी हो रही है। हड्डियों के जोड़-जोड़ में दर्द हो रहा है।

आपने मुझे क्यों नहीं पुकारा ?

मुझ में इतनी शक्ति शेष न थी उस समय कि मैं आवाज दे सकता। इन्दिरा देवी ! अब तो इस कष्ट से मुक्ति ही चाहता हूँ। आप भी जा रही हैं। मैं भी बनारस चला जाना चाहता हूँ। वहाँ अपने चचेरे भाई हैं उन्हीं के पास रहूँगा—आप सौ रुपये वापस ले लीजिए। सौ में मेरा काम चल जायगा। मुझे यहाँ अब अच्छा नहीं लग रहा है।

यह कैसे हो सकता है। इस दशा में आप नहीं जा सकते, मैं शीघ्र लौट आऊँगी। तब तक नौकर नौकरानी को आदेश दे जाऊँगी कि वे आप की देख भाल करते रहें। क्या करूँ, मेरा दुर्भाग्य है जो इस प्रकार मैं जा रही हूँ।

मास्टर साहब को समझा बुझाकर वह चली गई।

इन्दिरा देवी सीलोन के लिए प्रस्थान तो कर चुकी पर उसे अपने पर आत्मग्लानि हो रही थी। मास्टर जी ही उसके चिन्तन के विषय बने थे। न जाने कैसे रहते हैं ? वे जब सीलोन पहुँची तो पहुँचते ही मास्टर साहब को एक पत्र लिखकर डाल दिया।

❀ ❀ ❀

इधर पाँच ही दिन बाद मास्टर साहब इन्दिरा देवी के निवास स्थान को त्याग कर चले गये। नौकरों ने बहुत समझाया, पर वे उनसे कह गये कि मैं अपने इलाज के लिए कानपुर जा रहा हूँ। दो चार दिन में आ जाऊँगा। केवल ओढ़ने के लिए एक चद्दर लेकर और शरीर पर के वस्त्रों के अतिरिक्त वे सारा सामान वहीं छोड़ गये थे।

रास्ते की भीषण यातनाओं का सामना करके मास्टर साहब बनारस चले गये। वहाँ कोई अपना न पराया। किन्तु मारवाड़ी अस्पताल में उन्हों ने अपनी चिकित्सा प्रारम्भ कर दी। वहाँ उन्हें दो मास लग गये। अब डाक्टरों को और स्वयं रोगी को भी यह विश्वास होने लगा था कि बीमारी कट गई। धीरे-धीरे दुर्बलता भी दूर हो जायगी। डा० सरन साहब ने जब मास्टर जी की कथा उन्हीं के मुख से सुनी थी तो वे बड़ी लगन एवं तत्परता के साथ उनकी चिकित्सा करने लगे थे। उनमें लोभ से अधिक

मनुष्यता थी। वे मनुष्य को वास्तव में विश्वात्मा का प्रतीक और मनुष्यता को विश्वमूर्ति का वरदान समझते थे। मास्टर साहब के प्रति उनका वात्सल्य प्रबल होता जा रहा था।

सुमन को जब दो-तीन पत्रों का उत्तर न मिला तो वह व्यग्र हो उठी। उसे यह सोचते देर न लगी कि मास्टर जी की तबियत फिर गड़बड़ा गई। पर इन्दिरा देवी तो देती उत्तर—उसने भी कोई उत्तर नहीं दिया—तब क्या कारण हो सकता है ? वह मास्टर साहब के समाचार पाने के लिए व्यग्र हो उठी, पर कहीं से भी किसी समाचार के मिलने की कोई आशा न रह गई। उसका मन भीतर ही भीतर रोता रहता। वह अर्ध विक्षिप्त सी हो गई।

इन्दिरा जी को भी मास्टर जी का कोई पत्र न मिला। आठ पत्रों के उत्तर न मिलने से उन्हें शंका हो गई। हाय ! कहीं अनर्थ न हो गया हो। उसने अपने नौकर को एक पत्र भेजा कि मास्टर साहब का कुशल भेजो ! नौकर ने उनके यहाँ से चले जाने का समाचार लिख दिया। पत्र पाकर इन्दिरा देवी स्तब्ध रह गई—पत्नी उड़ गया। पिंजरा खाली पड़ा रह गया। सारा बना बनाया खेल समाप्त। वैसी दशा में कहाँ गये होंगे वे ? वे अपने पति पर बिगड़ पड़ीं। मैं आपकी हर बात को मानती चली आई। आपकी मर्यादा की रक्षा की, अपने आपको नष्ट कर दिया। अपने सुनहले संसार में आपके आदेशानुसार आग लगादी। आप के साथ रहकर मैंने कभी अपने को दुखी न समझा, पर आपने अन्त में मेरे हृदय को तोड़ दिया। मेरा गौरव मिट्टी में मिला दिया। मुझे नीच स्वार्थिनी सिद्ध कर दिया, मास्टर साहब के सामने मैं अपराधिनी हूँ। मैं यहाँ न आती तो क्या हानि थी ? पर आपकी पुरुष ईर्ष्या की भावना ने, आपके मिथ्या पुरुष दम्भ ने मुझे लाञ्छित करने से छोड़ा नहीं। मैं चाहती तो आपकी दौलत को ठोकर मार सकती थी। किसी के साथ भी अपनी गृहस्थी बसा सकती थी। पर मैंने हिन्दू धर्म की मर्यादा का ध्यान रख कर समस्त काल कूट को अमृत समझकर पिया, और आपने अन्त में मुझे कहीं का भी न छोड़ा। आपको सन्देह हो गया था मास्टर जी

के प्रति, तो यह आपकी कलुषित वृत्ति का फल था। आपको यह ज्ञात नहीं कि नारी जिसे चाहती है उसके लिए आकाश के फूल तोड़ कर भी ला सकती है। जिससे घृणा करती है उसके लिए विषधर सर्पिणी भी बन जाती है। मैंने कौन सा पाप किया था आपकी दृष्टि से जिसका आपने मुझे इतना भयंकर दण्ड दिया।

धनेश बाबू चुप सुनते जा रहे थे। इन्दिरा देवी के शरीर में कराला काली का प्रवेश हो गया था। "मास्टर साहब जब हमारे घर को छोड़ कर गये होंगे तब उन्होंने यही सोचा होगा कि इन बड़े-बड़े हत्यागृहों में मनुष्य नहीं नरपिशाच रहते है। यहाँ मनुष्य का गला अपने स्वार्थ के लिए घोटा जाता है," वह कहते-कहते बेहोश हो गई।

धनेश बाबू ने डाक्टर बुला कर तुरन्त उपचार करवा लिया। दो घण्टे पश्चात् कुछ शान्त होने पर उन्होंने इन्दिरा देवी से क्षमा माँगी। उन्हें अपनी त्रुटियों ने सदा के लिए दास बना दिया था। इन्दिरा के बल पर ही उनकी शान बनी थी। वे जानते थे कि इन्दिरा देवी का चरित्र बल उच्च है। पर होनहार बलवान्। उन्हें इन्दिरा को साथ लाने की धुन सवार थी जिसके कारण वे असहाय अवस्था में छोड़ आये थे मास्टर जी को।

मास्टर जी कहाँ होंगे ? मरे या जिये यह चिन्ता उन्हें भी व्याप्त हो गई। इन्दिरा देवी का क्रोध शान्ति पर था। उसे भी अपनी भूल ज्ञात होने लगी कि आवेश में वह न जाने क्या-क्या कह गई। उसे अपनी मर्यादा का भी ध्यान नहीं रहा था। बोली—आप क्षमा करें मैं जाने क्या क्या बक गई। पर मास्टर साहब का क्या हुआ होगा ? यह कैसे ज्ञात होगा कि वे इस संसार में हैं कि नहीं।

धनेश बाबू ने कहा यहाँ से लौट चलने पर कहीं न कहीं उनका पता लगवा ही लूँगा।

उन्हें ध्यान आया, बोले—कहीं सुमन के यहाँ तो न चले गये हों ? एक पत्र वहाँ भी भेजकर देख लेना चाहिए। इन्दिरा देवी ने तुरन्त ही सुमन के लिए पत्र लिख दिया और उत्तर लखनऊ के पते से ही मँगाया।

❀ ❀ ❀

चार दिन बाद सीलोन का कार्य समाप्त कर उन्होंने लखनऊ के लिए प्रस्थान किया। लखनऊ आने पर जब उन्होंने नौकरों से समाचार पूछे तो ज्ञात हुआ वे कानपुर गये हैं। उनके कमरे में प्रवेश करते ही इन्दिरा देवी रो पड़ीं। सामान यथावत् पड़ा था, उन्हें उस दिन की याद आई जब वे बड़े चाव से मास्टर साहब को इस कमरे में लाईं थीं। जब उन्होंने कमरे को अपने हाथों से सजाकर मास्टर साहब को कहा था—आपके यहाँ रहने पर जी लगा रहा करेगा।

वे निस्तेज होकर कुछ क्षणों तक वहीं बैठी रह गईं। धनेश बाबू ने कहा—सोचता हूँ कानपुर में पता लगवालूँ। उन्होंने दूसरे ही दिन कानपुर के सभी अस्पतालों को छनवा डाला पर कहीं भी मास्टर जी का पता न चला। सुरेश बाबू भी मास्टर साहब के इस प्रकार चले जाने से आश्चर्य में पड़े हुए थे। उन्हें भी वे कुछ न बता गये। उन्हें सुमन का पत्र मिला कि वे यहाँ नहीं आए। मैं समझती थी आपके घर होंगे, पर अब मेरी चिन्ता अधिक बढ़ गई है। दीदी तुम शीघ्र सूचना दो कि मास्टर साहब का पता लगा कि नहीं। मेरे सामने स्वयं एक बड़ी समस्या उपस्थित हो गई है। इन्दिरा ने सुमन को पत्र लिख दिया कि कोशिश की जा रही है। कुछ पता नहीं चला। तुम्हें कुछ समाचार मिले तो लिखना।

इन्दिरा देवी ने सोचा मास्टर साहब के कोई सम्बन्धी बनारस भी रहते हैं पर उनका भी तो कुछ पता नहीं कौन हैं और कहाँ रहते हैं। भगवन्! क्या समस्या आ गई? मेरी जरा सी नासमझी ने इस प्रकार का दुर्दिन उपस्थित कर दिया। जहाँ कहीं भी हों, पर मास्टर साहब सकुशल हों, यही भगवान् से प्रार्थना करती हूँ। वह नित्य ही मास्टर साहब की कुशल की प्रार्थना किया करती।

छः मास बीत गये। मास्टर साहब का स्वास्थ्य अब पहले से भी अच्छा हो गया था। वे डाक्टर की कृपा के अनन्य पात्र हो गये थे। डाक्टरसाहब की सहायता से उन्हें एक पाठशाला में कार्य भी मिल गया था। वहाँ उनका यश बढ़ने लगा था। पर इधर इन्दिरा देवी को एवं सुमन को उनके

विषय में कुछ भी ज्ञात न था। इन्दिरा देवी का स्वास्थ्य भी बिगड़ने लगा, धनेश बाबू चिन्तित हो उठे थे। सुमन अस्वस्थ पड़ी थी उसे दो मास हो चुके थे।

एक दिन धनेश बाबू ने इन्दिरा देवी से कहा अब के माघ में कुम्भ का मेला है—इच्छा हो तो चला जाय। इन्दिरा देवी भी भ्रमण करना चाहती थी। सोचा कुछ दिन कुम्भ मेले की शोभा क्यों न देख ली जाय। उसने अपनी स्वीकृति दे दी। कुम्भ मेले की तैयारी होने लगी। प्रयाग में झूँसी के समीप ही अपना कैम्प डालने का विचार कर वे प्रयाग के लिए चल पड़े।

प्रयाग की कुम्भ मेले की भीड़ के सम्बन्ध में सभी जानते हैं, उसका वर्णन कर पाठकों का समय व्यर्थ बरबाद नहीं करना चाहता। पर इतना कहना आवश्यक है कि धनेश बाबू का मूल उद्देश्य कुम्भ मेले में जाने का यही था कि हो न हो ऐसे स्थानों पर कभी-कभी सबसे भेंट हो जाती है—क्या जाने यदि मास्टर जी इस संसार में हुए तो आही जायँ मेला देखने।

उन्होंने झूँसी पर अपना कैम्प लगवा दिया। वे जब कभी बाहर जाते मास्टर साहब पर अवश्य दृष्टि रखते। मेले में आये हुए एक सप्ताह हो चुका था पर अभी तक मास्टर जी का कहीं भी दर्शन न हो सका। इन्दिरा देवी ऊब चुकी थीं। बोलीं—कल घर के लिए तैयारी कर लीजिए मेरा जी अब यहाँ भी घबराने लगा है। धनेश बाबू उनकी इच्छा पूर्ति के लिए सभी बातों में हामी भरते चले जा रहे थे। वे देख चुके थे कि एक बार इन्दिरा की बात न मानने से कितना कष्ट उठाना पड़ रहा है। उसका स्वास्थ्य ही बिगड़ता चला जा रहा है। वे बोले—तो कल और रुकलें परसों चल देंगे। कल त्रिवेणी स्नान करने का मोह मन में समा गया है। इन्दिरा देवी राजी हो गई।

दूसरे दिन सबेरे वे त्रिवेणी स्नान के लिए चल दिये। बीच धारा में

नाव द्वारा स्नान कर भगवान् को अर्घ्य चढ़ाकर जैसे ही इन्दिरा देवी लौटकर किनारे पर आईं। उन्हें सामने ही कोई परिचित सा जाते हुए जान पड़ा। वे अपने पति से बोलीं—जरा लपक कर देखिए तो मास्टर साहब की ही तरह का कोई व्यक्ति सामने जा रहा है—कन्धे पर बनारसी अँगोछा रक्खे है।

धनेश बाबू ने आगे बढ़कर प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए पुकारा "मास्टर साहब! मास्टर साहब!" सम्भावित व्यक्ति रुक पड़ा—क्या आपका मतलब मुझ से है?

हाँ—मैं आपको ही पुकार रहा हूँ—मास्टर साहब! आप मुझे नहीं पहिचान रहे हैं?

पहिचान रहा हूँ पर आप यहाँ कहाँ?

यह सब तो बाद को बताऊँगा। इन्दिरा जी आई हैं चल कर उनसे भेंट तो कर लें।

क्षमा कीजिए मैं डा० सरन साहब के साथ हूँ वे आगे बढ़ गये हैं, मुझे साथ न आया देखकर वे आपत्ति में पड़ जायेंगे।

चलिए तो फिर डा० साहब को भी साथ ले लीजिए।

हाँ यह हो सकता है।

वे आगे बढ़ गये। वयोवृद्ध डा० साहब से चलते ही चलते मास्टर जी ने धनेश बाबू का परिचय करवा दिया—फिर धनेश बाबू की प्रार्थना पर डा० साहब भी वहाँ तक साथ-साथ आए जहाँ पर इन्दिरा देवी खड़ी थीं।

मास्टर साहब को देखकर उनके चेहरे पर तेज आ गया। बोलीं—धन्य है उस प्रभु को जिसने फिर से आप से भेंट करवादी। मास्टर साहब! अब अपने कैम्प तक चले चलिए। सब लोग धनेश बाबू के साथ भूँसी कैम्प पहुँचे।

❀ ❀ ❀

पहिले इन्दिरा देवी ने सब के चाय नाश्ते की व्यवस्था की फिर बातों का सिलसिला प्रारम्भ हो गया। इन्दिरा देवी बोलीं—मास्टर साहब ! आप तो हम लोगों को छोड़कर आ गये थे पर प्रभु ने आप को मिला ही दिया।

डा० सरन साहब बोले—ये तो आज न जाने किस लोक में होते—पर यूँ कहिए कि इनकी आयु शेष थी अतः बच गये। फिर उन्हों ने मास्टर जी की बीमारी का सारा किस्सा कह सुनाया।

इन्दिरा देवी मन ही मन लज्जित होती जा रही थी। उसने मास्टर जी से क्षमा याचना की। धनेश बाबू ने भी अपनी गलती बताई और फिर वहाँ पर एक स्वस्थ वातावरण उत्पन्न हो गया।

धनेश बाबू बोले—अब हम लोगों का विचार कल यहाँ से चले जाने का है। आप लोग कब तक यहाँ रहेंगे ?

इन्दिरा देवी बोलीं—अब तो चार छः दिन मास्टर साहब के साथ यहाँ रह कर यहाँ का आनन्द प्राप्त किया जायगा। डा० साहब को भी प्रार्थना स्वीकार करनी ही पड़ेगी। पर एक बात यह है वह धनेश बाबू से बोलीं—बेचारी सुमन का भी बुरा हाल है। उन्हें मास्टर साहब के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं। आप सुमन को तार दे दें।

धनेश बाबू तार देने चले गये। डा० साहब ने इन्दिरा देवी से प्रश्न किया—आप मास्टर जी को कैसे जानती हैं ? इन्दिरा देवी कहती जा रहीं थीं और आँसू बहा कर अपना प्रायश्चित् भी करती जा रहीं थीं। उनकी बात की समाप्ति पर डा० साहब बोले बेटी ! धन्य हो तुम जैसी देवी ! तुम्हारे हृदय में मनुष्यता का वास तो है। आज के युग में रोना ही किस बात का था ? यदि मनुष्य में मनुष्यता रह जाती तो ? तुम जैसी देवियों पर ही हमें गर्व है। तुम्हारी सहानुभूति सराहनीय है।

इन्दिरा जी सुनती जा रही थीं। मास्टर जी का ध्यान कहीं अन्यत्र था। फिर वे बोले—डा० साहब ! इन देवी के उपकारों का बदला तो मैं जीवन भर न चुका सकूँगा। इन्होंने मेरे लिए क्या नहीं किया ? डाक्टर

साहब बोले—अरे भाई ये सब संसारी लोगों के "स्नेह के बन्धन" हैं जब तक ये बन्धन हैं तभी तक मनुष्यता जीवित है।

धनेश बाबू भी लौट आये थे। अब एक सप्ताह यहीं और रुकने का विचार दृढ़ हो गया।

इन्दिरा देवी के स्वास्थ्य में भी सुधार होने लगा, मास्टर जी नित्य झूँसी आ जाते और दिन भर आनन्दमयी वार्ता में कट जाता। अब इनका सामीप्य आत्मीयता का रूप धारण करने लगा था।

तार पाते ही सुमन भी अपने पिता जी के साथ घर से प्रयाग के लिए चल पड़ी। निर्दिष्ट पते पर पहुँच कर वह इन्दिरा देवी से मिली। इन्दिरा देवी ने गले लगाकर उसका स्वागत किया। वह बहुत दुर्बल हो गई थी—बोलीं—अरी सुमन तू तो आधी भी नहीं रह गई है क्या हो गया है तुझे?

दीदी तुम तो सब कुछ जानती ही हो। मास्टर साहब के विषय के अशुद्ध कल्पनाजन्य विचारों ने मुझे इस अवस्था को पहुंचा दिया। दीदी मैं चाहती हूँ वे जहाँ कहीं भी रहें स्वस्थ और सानन्द रहें- मेरी और कोई कामना नहीं।

सुमन! तेरे ही मन की भाँति मेरे मन की स्थिति भी थी—पर भगवत की दया है कि उसने मास्टर साहब के दर्शन करा दिये।

आते ही होंगे वे—तुम तब तक मुँह हाथ धोकर कपड़े बदल लो। पिता जी को भी कह दो। मैं चाय तैयार करती हूँ। सुमन कपड़े बदलने चली गई।

मास्टर साहब आ गये। धनेश बाबू ने सूचना दी। चाय तैयार करके इन्दिरा देवी ने सबके सामने एक-एक प्याली रख दी। सुमन को देखते ही मास्टर साहब सहम से गये—क्या दशा हो गई इसकी। सुमन ने प्रणाम किया। उसके पिता जी ने आशीर्वाद दिया। सुमन एक टक से जैसे तृषित चकोरी चाँद को देखती है मास्टर साहब को देखती रही। कुछ देर तक इधर उधर की बातें हुईं। मास्टर साहब सुमन से बोले—अब तुम्हारी पढ़ाई का क्या होगा?

गाँव में क्या होगा मास्टर साहब ! अब तो इसके हाथ पीले करने की चिन्ता में हूँ । सुमन के पिता बोले ।

ठीक कहते हैं आप पर--हार तो मैंने खाई । भगवत् इच्छा, काका जी जो कह गये थे उसे भी पूर्ण न कर सका ।

तो फिर जब ऐसी ही बात है तो आप हमारे ही यहाँ चलकर क्यों नहीं रहते ?

यह हो सकता था पर अब तो मैंने बहुत छात्रों के कल्याण का भार उठा लिया है । और वहाँ की सर्विस में मैंने अपने को आठ वर्ष के लिए बाध्य कर लिया है ।

"तो क्या आप अब लखनऊ भी न चलेंगे मास्टर साहब ?" इन्दिरा जी बोलीं।

मेरा दोनों ही स्थानों के लिए एक ही उत्तर है देवी ! यहाँ रहकर मैं अधिकों की सेवा कर सकूँगा ऐसा मेरा विश्वास है ।

यह बात इन्दिरा देवी को और सुमन को भी वज्र की भाँति लगी । पर इसके लिए सभी विवश थे । मास्टर जी की बात को काटना सम्भव भी न था । धनेश बाबू बोले—मैं आप लोगों के सामने एक प्रस्ताव रखना चाहता हूँ—यदि स्वीकृत हो तो कहूँ । मास्टर साहब बोले आपका प्रस्ताव बिना सामने आये ही स्वीकृत है कहें आप ।

मैं चाहता हूँ—मैंने अब तक जीवन में पर्याप्त जो धनोपार्जन कर लिया है उसका सदुपयोग इस प्रकार किया जा सकता है कि एक "असहाय नारी शिक्षण केन्द्र" की स्थापना की जाय, उसके लिए मैं अपनी समस्त सम्पत्ति अर्पित कर दूँगा ।

विचार उत्तम था सभी की समझ में आ गया । निर्णय हुआ कि डाक्टर सरन साहब से पूछ कर इस ओर कदम उठाया जायगा । बात समाप्ती पर सब के सब घूमने निकल गये ।

प्रयाग मेले के ये दिन सभी के लिए मंगल मय दिन थे क्योंकि यहीं पर सबकी भावनाओं का संगम हुआ था । सुमन इस दिन को जीवन का

धन्य दिन समझ रहीथी क्योंकि शिथिल स्नेह के बन्धनों में फिर से कुछ स्वस्थता आ गई थी।

दूसरे दिन डाक्टर सरन साहब के आ जाने पर कल का प्रस्ताव उनके सामने भी रखा गया। वे सहमत हो गये। बोले—चार मास बाद मैं भी अवकाश प्राप्त कर रहा हूँ। मैं भी अपनी सेवाओं को अर्पित करता हूँ। प्रश्न मास्टर साहब का था। उन्हें उसके प्रबन्धक रूप में रखने की सबकी इच्छा थी। पर उनका आठ वर्ष का करार जो था। डाक्टर सरन साहब बोले-इसकी चिन्ता नहीं—मैं सब ठीक कर लूँगा। पर यह संस्था कहाँ खोली जाय इस पर भी विचार कर लेना चाहिए। किसी ने कहीं और किसी ने कहीं का नाम बताया। अन्त में यह निर्णय हुआ कि बनारस में ही संस्था को जन्म दिया जाय। धनेश बाबू भी राजी हो गये। पूरी रूप रेखा तैयार करदी गई। और चार मास बाद संस्था के उद्घाटन की योजना तय की गई।

इन्दिरा देवी हतप्रभ सी हो गईं। सुमन का मन उदास था। वह सोच रही थी—मेरी पढ़ाई तो हो न सकेगी पर उसी समय उसके पिता जी ने कहा—संस्था के खुल जाने पर मैं सुमन को भी वहीं भेज दूँगा। सुमन प्रसन्न हो गई। वार्तालाप की समाप्ति पर सब अपने अपने निवास स्थान पर चले गये।

प्रयाग छोड़ने का दिन भी उपस्थित हो गया। इन्दिरा और सुमन को जितना दुख था उतना ही या उससे भी अधिक दुख था मास्टर साहब को—सब विदा हुए। वे सोचने लगे समुद्र की लहरें उठती हैं, तिनके तिनके इधर-उधर से आकर एक साथ मिल जाते हैं, दूसरी लहर उठती है तिनके बिखर जाते हैं। फिर शिथिल हुए स्नेह के बन्धन कब दृढ़ होंगे इसका निर्णय मास्टर जी ने भविष्य पर छोड़ दिया।